ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि

वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ 06 08 1977 पुष्प 38 साधना क्या है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन करते चले जा रहे थे। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा जितना भी मानो यह परमाणुवाद है, अथवा यह जो जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, इसके एक एक कण में वह व्याप्त है।

वह इस संसार का एक सूत्रमयी बना हुआ है, जैसे सूत्र में ही मानो सर्वत्र ओत प्रोत रहता है। तो हमें इस सूत्र के ऊपर पुत्र! हमें विचार विनिमय करना चाहिए। प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है, कि वह उस सूत्र के ऊपर विचार विनिमय करे, जिस सूत्र में यह ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है, जिस सूत्र में यह जगत ओत प्रोत हो रहा है। मेरे पुत्रो! वह हमारे जीवन का साथी है। जीवन का निरीक्षण करने वाला है। तो उसी की आभा में रमण करते चले जाएं। उसी का हम चिन्तन करतें चले जांए। प्रातःकाल हो, सायं काल हो, मध्य काल हो, कोई भी काल हो परन्तु उसका स्मरण सदैव रहना चाहिए। यह मानव की एक साधना कहलाती है। प्रत्येक मानव यह कहता रहता है। मेरे प्यारे! महानन्द जी नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं परन्तु यह साधना के सम्बन्ध में, भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचना करते रहते हैं। उनके ऊपर नाना प्रकार की टिप्पणियाँ भी होती रहती हैं।

शुभ कर्म की साधना

तो आज मैं तुम्हें पुत्रो! टिप्पणियों में तो ले जाना नहीं चाहूँगा, केवल विचार कि मानव साधना में रमण करना चाहता है साधना के क्षेत्र में। हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था, कि मानव जब एकान्त स्थली पर विद्यमान होता है, **तो जो इस शरीर से हम शुभ कर्म करते हैं, उनका सबसे प्रथम चित्रण आने लगता है। तो**

मानव इस पर विचार विनिमय नहीं करता कि वह चित्रण क्यों आता है? जब मनस्तव एक सूत्र में आता है, तो वह मनस्तव की एक उसे प्रेरणा प्राप्त होती है। वह कहता है कि सबसे प्रथम हे मानव! तू साधना में जाने से पूर्व उस चित्रण को जान। यह जो नाना अशुद्ध चित्र तेरे समीप, जो तेरे क्रिया कलाप जीवन में हुए हैं उनके तेरे समीप चित्र आ रहे हैं।

बेटा! साधना उस काल में सिद्ध हो जाती है, जब सदैव चित्रों में मुनिवरों! प्रभु की कृपा दृष्टिपात आने लगे लगती है और प्रभु की महिमा का वर्णन आने लगता है, मानो उसका व्यापक जीवन बन जाता है। वह परमाणुवाद को एक सूत्र में पिरोया हुआ दृष्टिपात करता है। तो वह मानव की साधना है। एक मानव याग करता है।

हमने बहुत पुरातन काल में कहा था, कि किसी वस्तु की रूढ़ि बन जाना ही, उसका हृदय से चला जाना है। एक मानव याग कर रहा है और वह याग करता हुआ, अपने जीवन को यदि यागमयी नहीं बनाता, तो अपने जीवन को नही बनाता, तो जानो कि बेटा! वह मानव याज्ञिक नहीं होता। हम नित्यप्रति पुरातन काल में जब पूज्यपाद गुरुदेव गुरुओं के समीप जाते थे तो सबसे प्रथम उन्होंने हूत करने की क्रिया को निर्णित किया और बेटा! प्रातःकाल, सायं काल को जब याग करते थे, तो उसके पश्चात आचार्य यह कहा करते थे, पूज्यपाद गुरुदेव! कि यह याग हमें क्या वर्णन करा रहा है? याग हमें किस स्थली पर ले जा रहा है? तो हम यह कहा करते थे कि पूज्यपाद हम इसको नहीं जानते। परन्तु पूज्यपाद उस पर निर्णय कराते रहते। धीमी धीमी शिक्षा देते रहते। मधु विद्या का वर्णन करते हुए यह कहा करते कि यह जो याग कर्म है। यह सर्वत्र कर्मों में एक महान श्रेष्ठ कर्म कहलाता है। यह मानव को त्याग के क्षेत्र में ले जाता है, यह मानव को उस त्याग में ले जाता है जहाँ मानव के द्रव्य का सदुपयोग होता है, और उसी के अनुसार हम अपने विचारों को बनाते हैं। हम नाना साकल्य को लेते हैं जलों को लेते हैं। मानो देखो, जब अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। अग्नि में हम घृत देते हैं। अग्नि में हम मानो देखो, साकल्य प्रदान कर देते हैं। वह अग्नि प्रचण्ड हो करके उनको निगल जाती है। अपने में धारण कर लेती है। इसी प्रकार मेरे प्यारे! जैसे बाह्य जगत्

में, यह अग्नि प्रचण्ड हो करके, अग्नि प्रदीप्त हो करके मेरे प्यारे! यह बाह्य जगत को शोधन करती है।

उसी प्रकार हे मानव! तू अपनी ज्ञान रूपी अग्नि को प्रदीप्त कर है और जब तेरी ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी, तेरा जो हृदय है, तेरे मनों का जो क्रियाकलाप है, जो क्रीड़ा हो रही है, उसमें जितना भी अशुद्धवाद है, **मानो देखो, आन्तरिक जगत् में जब ज्ञान रूपी अग्नि प्रचण्ड हो जाती है, मानो जब वह प्रकाशित हो जाती है तो बेटा! देखो, जो भी अवगुण उसको छूता है वह नष्ट हो जाता है। स्पर्श करने मात्र से ही मेरे प्यारे! वह नष्ट होने लगता है।** परिणाम क्या है? मुनिवरों! ऋषि मुनियों ने, आचार्यों ने यह कहा है कि सबसे प्रथम ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान का प्रकाश मानव के आन्तरिक जगत में होना चाहिए और जब आन्तरिक जगत् में ज्ञान हो जाता है, व्यापक ज्ञान हो जाता है, व्यापय बन जाता है तो मुनिवरों! वह मानव जब ध्यानावस्थित होता है, साधना के क्षेत्र में जाता है तो बेटा! वह स्वच्छ बन जाता है।

अब ऋषि मुनियों ने एक वाक् बहुत ऊँचा कहा है उन्होंने कहा है कि इस मन को पवित्र बनाने के लिए, इस मानो देखो, क्रिया कलाप को ऊँचा बनाने के लिए, सबसे प्रथम आहार और व्यवहार की आवश्यकता होती है। हमारा आहार किस प्रकार का होना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब माता अरुणधति और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, बेटा! भयंकर बन में तप करते थे मानो जब वह तप करते थे, तो वनस्पतियों का पान करते थे, मानो देखो, उन्हें वनस्पतियों का ज्ञान था, उसे जब वह पान करते थे और सायं काल को वायु का आहार करते थे। **एक समय वह नाना वनस्पतियों का वह पान करते उसके पश्चात वह वायु को सेवन करते थे, वायु को आहार करते थे, तो मेरे प्यारे! देखो, प्राण शक्ति उनकी प्रबल रहती** और मेरे प्यारे! देखो, उनकी साधना में एक महानता रहती।

मेरे पुत्रो! देखो, यह जो साधना के क्षेत्र हैं वह ब्रह्मवेत्ता कहलाए जाते हैं। वह तपस्वी बनते ही मेरे पुत्रों! वह उनका लाखों वर्षो पूर्व की गाथा, उनकी, हमारे समीप आ रही हैं। परिणाम क्या है कि हम बेटा! देखो, ज्ञान के क्षेत्र में जा करके, हम साधना में

परणित हो जाएं। साधना में हम प्रवेश हो जाएं, यह जो संसार का व्यापार है। यह जो संसार में मानो देखो, मोह ममता इत्यादि है, यह मानव को कहाँ ले जाती है। यह मानव को उन योनियों को प्राप्त करा देती है, जहाँ अन्धकार ही अन्धकार रहता है। प्रकाश नहीं रह पाता। मैं इन वृत्तों की चर्चा नहीं, केवल यह क्या उन योनियों में जहाँ अन्धकार ही अन्धकार रहता है। तो मेरे पुत्रो! हमें संसार में त्यागमयी अपने जीवन को बनाना है। त्याग के क्षेत्र में जाना है। बिना त्याग के बेटा! यह संसार कदापि ऊँचा नहीं बनता। बिना त्याग के यह महानता नहीं आती संसार में।

तो विचार विनिमय क्या? मेरे प्यारे! देखो, हम कई समय से, तुम्हें आत्म लोक की चर्चाएँ, पितर लोकों की चर्चाएँ करते चले जा रहे थे। बेटा! पितर लोकों की चर्चाओं में मानो देखो, त्याग और तपस्या की प्रतिभा आती रही हैं। मैंने एक समय अपने आचार्यों से पूज्यपाद गुरुजनों से यह कहा कि यह संसार यदि तपस्वी बन जाएं, तो इसे दुःखद अथवा अस्वात् नहीं होगा। इसे अस्वात् नही होगा मानो देखो, इस संसार में मेरे प्यारे! महानन्द जी ने कई काल में, प्रगट कराया, कि आज का संसार देखो, दुःखित है, माता अपने पुत्र से व्याकुल है। वह क्यों है? क्योंकि मेरा पुत्र मेरे समीप नहीं रहा, चला गया। पति दुःखित है, पत्नी के लिए और पत्नी पति के लिए दुःखित हो रही है। यह परिणाम यह क्यों हो रहा है? इसका मूल कारण है कि मानव में तप की सूक्ष्मता जब आ जाती है, तप नहीं रहता, माता पिता तपस्वी नहीं रहते, तो देखो, पिता से पूर्व ही पुत्र का निधन हो जाता है। माता से पूर्व हो जाता है। वह दुःख का कारण बन जाता है। उसमें मानव व्याकुल होता रहता है। तो यह नहीं होना चाहिए।

विज्ञान के बाह्य रूप से पतन

मुझे मेरे प्यारे! महानन्द जी ने क्या, मुझे वह काल दृष्टिपात आता रहता है। महाराजा मनु के काल में, उस से अवृत काल में मानो देखो, राम के काल में, पिता से पूर्व पुत्र का निधन नहीं होता था। क्यों नहीं होता था? क्योंकि प्रत्येक माता पिता प्राण की क्रियाओं को जानते थे। संयम को अपने में धारण करते रहते थे। और जिस काल में

मानो देखो, विज्ञान जब बाह्य जगत् को धारणा कर लिया है। उस पुरातन काल में मुझे स्मरण है पुत्रों! क्या विज्ञान बाह्य जगत् में नहीं था। बाह्य जगत् में जिस काल में नहीं रहता वह काल श्रेष्ठ होता है। और जिस काल में इस विज्ञान का बाह्य जगत बन जाता है राष्ट्र की परम्परा समाप्त हो जाती है। राष्ट्र में स्वार्थवाद आ जाता हैं बाह्य विज्ञान का जब बाह्य होने से ही तो मुनिवरों! देखो, मानव अप्रहा कहलाता है बाह्य जगत के आते ही देखो, ब्रह्मचर्यस्ताम मानव के जीवन में देखो, जीवन जब धीरज प्रहा उसमें शान्ति नहीं रह पाती, संयम नहीं रह पाता। तो उसका परिणाम यह होता है कि उसका परमाणुवाद बिखर जाता है।

तो मेरे पुत्रो! देखो, मैं इस सम्बन्ध में यह चर्चा करने आया कि यह विज्ञान बुद्धिमानों के मस्तिष्कों में रहता है। यह क्रियाकलापों में रहता है। परन्तु रहता है बुद्धिमानों के द्वारा जो गम्भीर बुद्धिमान होते हैं। ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में यह विद्या परम्परागतों से रही है। कौन सी विद्या? वैज्ञानिक विद्याएं, परमाणुवाद की विद्याएं, अणुवाद को विद्याएं। मेरे प्यारे! जितना भी भौतिक यन्त्रवाद है यह सब था परन्तु देखो, उसका क्रिया कलाप उन ऋषि मुनियों के द्वारा पर था। मेरे प्यारे! मैं आज यह पुरातन वार्त्ता का प्रगट करना नहीं चाहता हूँ।

गन्धर्व लोक

विचार विनिमय यह मैं बेटा! तुम्हें गन्धर्व लोकों में ले जाना चाहता हूँ कि गन्धर्व किसे कहते हैं? बेटा! जब मानव पितर लोकों से उपराम हो जाता है, मानो महापिता इत्यादियों की आज्ञा का पालन करके, मानव के हृदय में शान्ति हो जाती है, मानव सान्त्वना को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि वह, माता पिता के ऋण से अवऋण हो गया है जो मानव माता पिता के ऋणों से अवऋण हो गया है वही तो मानव बेटा! सुखद कहलाता है। जो आत्म लोक के उद्देश्यों से पूर्ण हो गया है, वही तो बेटा! आनन्द को प्राप्त कर सकता है। तो मुनिवरों! देखो, जब वह माता पिता के ऋणों से अवऋण हो जाता है। उस मानव की अन्तरात्मा में प्रसन्नता होती है, उस मानव की अन्तर्रात्मा में

मानो एक प्रतिभा जागरूक हो जाती है। बेटा! परिणाम यह है, क्या मानो हमें विचारना है, कि हम उससे उपराम हो गए हैं? अब गन्धर्व लोक के लिए गमन कर रहे हैं? गन्धर्व लोक किसे कहते हैं? बेटा! दो प्रकार के आचार्य इस संसार में कहलाते हैं। एक आचार्य गन्धर्व बुद्धिमान वह होते हैं तो बेटा! सामान्य शिक्षा प्रदान करते हैं सामान्य उसे विद्या प्रदान कर देते हैं एक वह आचार्य वह होते हैं जो बेटा! विशेष आत्मा का पवित्र भोजन है जिससे आत्मा तृप्त होता है मेरे पुत्रो! देखो, उस विद्या को वह प्रदान करते हैं। वह गन्धर्व नाम बुद्धि का कहलाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय दिया कि गन्धर्व नाम बुद्धि का है क्योंकि गन्धर्व नाम बेटा! उन आचार्यों का है जिनकी बुद्धि प्रखर होती है जिनकी बुद्धि में महानता होती है, मेघावी होती है, प्रज्ञावी और ऋतम्भरावी होती है। चारों प्रकार की बुद्धियों से जो तारतम्य मानो जीवन होते हैं, वही मेरे पुत्रों! देखो, हमारे यहाँ गन्धर्व कहलाते हैं। गन्धर्व बेटा! देखो, बुद्धिमानों का लोक है।

बुद्धिमान कौन है बेटा! जो अपने में प्रभु के आँगन में कोई अन्तर्द्वन्द्व जिनके हृदय में नहीं होता। बुद्धिमान उन्हें नहीं कहते हैं। जिनका संकीर्ण विचार होता है। जिनमें संकीर्णता आ गई है, उनको बुद्धिमान नहीं कहा जाता। बुद्धिमान वह होते हैं, मानो जो बुद्धि भी अप्रहा देवतवां मानो देखो, बुद्धि ही, जो बुद्धि को अपने में धारण कर लेता है। मानो देखो, धी को अपने में धारण कर लेता है। मेरे प्यारे! धी कहते हैं धापति ब्रहा लोका वह बुद्धि कहलाती है मानो जो पराविद्या के ऊपर चिन्तन करने वाली है। परा विद्या को धारण कर रही है और पराविद्या को ले करके मननशील जब मनन करता रहता है। मनन करता रहता है मनन करता हुआ मेरे प्यारे! देखो, गन्धर्व अब्रहात् कहलाता है जिस समय गन्धर्व गान गाता है उस काल में मुनिवरों! देखो, आत्म लोक पवित्रतव में और विष्णु के द्वार पर जाता है तो यह मानो देखो, बुद्धिअप्रहाः यह कौन धी अमृता यह गन्धर्व मुनिवरों! गान गाता है। नारद वीणा को ले करके समीप आता है, एक समय ऋषि मुनियों ने कहा, यह गन्धर्व गान गाता है वह गान क्यों गाता है? और नारद वीणा क्यों ले रहा है? तो उस समय यह कहा गया, वीणा कहते हैं चंचलता

को और गन्धर्व कहते हैं मेरे प्यारे! देखो, गान को। जब चंचलता समाप्त हो जाती है तो गन्धर्व गान गाता है बुद्धि गान गाता है वह धी गान गा रहा है, उस गान को जो श्रवण करता है बेटा! वह मानो देखो, आत्मवेत्ता बन जाता है। तो मुनिवरों! देखो, वह नारद अपनी वीणा को ले करके नारद नाम पर्यायवाची शब्दों में मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया था। नारद नाम परम पिता परमात्मा का है वास्तव में तो, परन्तु यहाँ प्रकरण कहता है कि नारद नाम मन को कहते हैं। यह मन नारद है और इसमें चंचलता है यह चंचलता जब मानव अपनी साधना में स्थिर हो जाता है, गन्धर्वों के द्वार पर चला जाता है तो उस समय यह नारद रूपी मन बेटा! स्थिर हो जाता है और स्थिर हो करके यह नारद अपनी वीणा को लेकर के इसके समीप वीणा वादन करता है और कहता है प्रभु! मैं चंचलता को त्याग रहा हूँ। यह चंचलता को त्याग देता है त्याग करके वह मुनिवरों! देखो, इसमें रसता आ जाती है यह एक रस बन जाता हैं। एक रस बन कर के ही मेरे प्यारे! देखो, वह गन्धर्व गान गाता है। उस काल में। नारद वीणा को लेकर के उसकी ध्वनि करता है। इसी प्रकार मेरे प्यारे! देखो, यह जो महा हम जब गन्धर्व लोकों के समीप जाते हैं तो गन्धर्व मेरे प्यारे! गान गाते हैं। गमन कर रहे हैं और ब्रह्मचारी उसको श्रवण कर रहा है। उसको अपने में धारण कर रहा है। तो मेरे पुत्रो! देखो, यह गन्धर्व लोक कहलाता है जहाँ बुद्धिमान बेटा! मानव के कल्याण की चर्चा करते हैं। मानव के जीवन की आभा की चर्चाएँ कर रहे हैं।

मेरे पुत्रो! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जहाँ ऋषि मुनियों की गोष्ठियां, ऋषि मुनियों का विचार विनिमय होता रहता है। जहाँ बेटा! देखो, ऋषि मुनियों के मध्य में यह अप्रहा यह गन्धर्व विद्यमान होते हैं। गन्धर्व जब गान गाते हैं तो मुनिवरों! देखो, उसको साधारण, सामान्य मानो देखो, सर्वत्र उसको ग्रहण करते हैं। वह कौन सी विद्या को प्रदान करता है आचार्य? जैसे बेटा! महर्षि सोम और आदि ऋषियों जैसे पिप्लाद ऋषि महाराज थे। पिप्पलाद ऋषि जब शिक्षा ब्रह्मचारियों को प्रदान करते थे। गन्धर्व स्वयं बनकर मानो देखो, वह उसके द्वारा ब्रह्मवेत्ता वहाँ आते रहते थे। ब्रह्मवेत्ता कौन? ब्रह्म के जिज्ञासु और ब्रह्म के जिज्ञासुओं से जब पिप्लाद ऋषि से कहते हैं कि महाराज!

मैं ब्रह्म विद्या को पान करने के लिए आए हैं हम, हम छह जिज्ञासु हैं। वह कहते हैं आओ! परन्तु मेरे यहाँ तुम ब्रह्मचारी रहो। ब्रह्मचारी रहो और इसका पालन करो। जब यह कहते हैं तब मुनिवरों! देखो, वह ब्रह्मचारी अपने मन में विचारते हैं कि आज्ञा का पालन करना है। एक वर्ष तक गऊओ का पालन करना है तो मुनिवरों! देखो, वह गन्धर्व कहलाते हैं यह विचारते हैं कि यह बुद्धिमान यह कैसा ब्रह्मचारी है कैसा जिज्ञासु है? मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचर्य का उपदेश देता है। आचार्य वह बाल्य ऋषि कहते हैं। वह कहते हैं कथमां ब्रीहि ब्रह्मचरिष्यामि मानो देखो, हे ऋषिवर! हम तो ब्रह्मचारी हैं। उन्होंने कहा मेरे यहाँ ब्रह्मचारी रहो मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचर्य का अभिप्रायः तुमने जाना नहीं। ब्रह्मचर्य के बहुत नाना अर्थात माने जाते हैं। नाना रूपों में ब्रह्मचर्य ही मानो देखो, एक (पुस्तक से) दृष्टिपात करते हैं बेटा! ब्रह्मचर्य एक सूत्र है, एक मनका है। उस समय गार्गी कवन्धी बोले कि महाराज! हम जब निद्रा की गोद में चले जाते हैं तो उस समय हम ब्रह्मचारी कैसे रह सकते हैं? हम उस चरि को जानना चाहते हैं। तो उस समय पिप्पलाद ऋषि कहते हैं ब्रह्माणि चक्राति देवष्याम् लोकः अर्थात् जब मनकों का सूत्र बन जाता है, माला पिरोई जाती है माला में मनके पिरोए जाते हैं तो वह स्वतः ही गति करने लगते हैं। जिस प्रकार हे ब्रह्मचारियों! परमपिता परमात्मा के सन्निधान मात्र से यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। सन्निधान मात्र से ही प्रकृति अपने स्वभाव को प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार ऋषि कहता है। हे ब्रह्मचारियों! तुम भी स्वतः अपने स्वभाव को जानो। ब्रह्मचर्य का यथार्थ रूप क्या है? इन वाक्यों का? ऋषि कहता है कि जब ब्रह्मचारी पूर्ण कहलाता है तो वह अपने एक सूत्र को बना करके और अपने मनके नवीन बनाना बना करके उस सूत्र में पिरो देता है। पुत्रो! जब ऋषि यह कहता रहता है तो आश्चर्य का वाक्य है। मुनिवरों! पिप्पलाद ऋषि कहते हैं कि एक एक श्वास जो गति कर रहा है वह जो प्राण स्वरूप है उसके स्वरूप में पिरोते चले जाओ। यह जो श्वास आता है, यह गमन कर रहा है श्वास आता है ऊर्ध्वा दोनों को विचारने से ही दोनों का विचार हो जाएगा तो उस समय देखो, तुम ब्रह्मचारी बन जाओगे। तुम्हारा उसी सूत्र में मनका पिरोया जाता है। वह जो मनके पिरो रहे हो निद्रा उसमें व्याप्त नहीं

होती। परन्तु वह मनके पिरोएं जा रहे हैं। जैसे मानव अपने आभूषणों को प्राप्त करता हुआ, शृङ्गारित होता हुआ अपने शृङ्गार में लिप्त रहता है, इसी प्रकार वह जो श्वास की कड़ी है, वह जो श्वास का एक मनका है वह प्राण है। वह चेतना में पिरोया हुआ है। उस श्वास के ऊपर जैसे हमारे यहाँ ऋषियों ने, पिप्पलाद महर्षि ने कहा है।

तुम्हें प्रतीत है, चाक्राणी गार्गी कहती है याज्ञवलक्य से कि महाराज! मेरे भुजाओं में कमान आकृति है और उसमें तरकश है, उसका लक्ष्य क्या है? भगवन! मैं उसको नहीं जान पायी। तो पिप्पलाद महर्षि कहता है ब्रह्मचारियों से, हे ब्रह्मचारियो! गार्गी से महर्षि याज्ञवल्क्य ने यही निर्णय कराया था। तुहारा वह जो तरकश है, वह प्राण है, और मन रूपी जो कमान है, अर्थात् तरकश उस पर नियुक्त हो रहा है, और मन का जब समन्वय होता है प्राण से। तो जीवात्मा का एक ही लक्ष्य है और वह लक्ष्य ब्रह्म है। वह ब्रह्म को अपना लक्ष्य बनाकर के गति करता है। इसी प्रकार मेरे पुत्रो! पिप्लाद ऋषि कहते हैं, हे ब्रह्मचारियों! तुम ब्रह्मचारी रहो और ब्रह्मचारी क्या है? चरि कहते हैं जो प्राण में परमाणु होते हैं वह चरि को एक सूत्र में पिरो देता है। चरि को मनुष्य में धारण करा करके ब्रह्मःचरिष्यामि देवः चरि नाम प्रकृति का है और ब्रह्म नाम परमपिता परमात्मा का है जो परमात्मा की चरि को जानता हुआ चरि के अस्तित्व को जानता हुआ ब्रह्म में समाधिष्ट हो जाता है। वह ब्रह्मचारी है। ऋषि कहता है जाओ ब्रह्मचारी रहो। गो का पालन करो। वह गो रूपी इन्द्रियों का पालन कर रहा है। मेरे पुत्रो! वह एक सूत्र में अपने जीवन को पिरो रहा है अपने एक एक श्वास को पिरो रहा है। एक एक आभा को पिरो रहा है पुत्रो! इस प्रकार वह अपनी एक माला बना लेता है। उस माला को जब वह धारण करता है तो बेटा! वह ब्रह्म में ही समाधिष्ट हो जाता है वह ब्रह्म में लीन हो जाता है। ब्रह्ममयी आभा में युक्तायुक्त प्रगट करने लगता है।

तो मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या? गन्धर्व कौन है? बेटा! गन्धर्व वह है जो हमें व्यापक ज्ञान देते हैं। हमें व्यापक ज्ञान वेद देते हैं जिस वेद की छाया में मानव रमण करता हुआ विवेकी बन करके इस सागर से पार हो जाता है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें आज विशेष क्षेत्र में ले जाना नहीं चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें

ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। जहाँ ब्रह्मचारियों को, जिज्ञासुओं को आचार्य कहता है, ब्रह्मचारी रहो। तो मुनिवरों! वह क्यों कह रहा है? वह इसीलिए कह रहा है क्योंकि इन्द्रियों का पालन नहीं किया गया वहाँ इन्द्रियों को भी, चित्त की प्रवृत्तियों को एकाग्र नहीं किया गया। जब वह चित्त की प्रवृत्तियों को एकाग्र कर लेता है वही मेरे पुत्रो! उसका तरकश है, वही तो ब्रह्मचर्य है। वही उसका ब्रह्म है।

मुनिवरों! यह कौन शिक्षा दे रहा है? यह गन्धर्व लोकों में हमें जाने से प्राप्त होती हैं। जो गन्धर्व हमें शिक्षा देते हैं, वह ऐसे हमें करा देते हैं जैसे सूर्य की धूप है, छाया है। छाया और सूर्य दो वस्तु नहीं हैं। छाया आ रही है क्या उनके मध्य में दर्पण आ गया है? मुनिवरों! वही तो ब्रह्म से कुछ सूक्ष्मता, दूरी कर देता है। जैसे आत्म लोक दर्पण है, पितर लोक को मेरे प्यारे! हम स्वप्न कहते हैं और इसको हम छाया के रूप में दृष्टिपात करते हैं। जैसे छाया आ रही है और वह छाया सूर्य के साथ साथ रहने वाली है, प्रकाश के साथ साथ रहने वाली है। प्रकाश है तो छाया है। छाया है तो प्रकाश है। दोनों एक सूत्र के मनके माने जाते हैं। परन्तु विचार विनिमय क्या कि वह एक छाया में ही रमण करने वाला ब्रह्म में अपने को स्वीकार करता रहता है।

ब्रह्म में पिरोया हुआ संसार

बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब नाना बुद्धिमान विद्यमान हो करके चिन्तन करते हैं अथवा मनन करते हैं। मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है एक समय बेटा! महर्षि लोमश मुनि अपने आसन पर विद्यमान थे। महर्षि लोमश मुनि के द्वार पर कागभुषुण्ड जी आ गए। महर्षि कागभुषुण्ड जी आ गएं तो दोनों का विवेचन प्रारम्भ होने लगा। महर्षि लोमश मुनि कहते है कागभुषुण्ड जी, यह जो संसार कैसा सतो विचरण करने वाला संसार है? उस समय काग भषुण्ड जी कहते हैं कि हे भगवन! हे ऋषिवर! हे ब्रह्मवेत्ता! आप तो ब्रह्म के मर्म को जानते हैं। आप तो चित्त की प्रवृत्तियों को जानते हैं। उसके पश्चात् भी आप संसार की वार्त्ता प्रगट कर रहे हैं। परन्तु मैं यह उच्चारण अवश्य कर रहा हूँ कि मानव को अपने जीवन में मनुष्यत्व की प्रक्रियाओं को

जान लेना चाहिए और जान करके ही हम अपने जीवन को सार्थक करते हैं।
मुझे ऋषिवर! कागभुषुण्ड जी कहते हैं काग कहते हैं जो सांसारिक व्यापार में चंचल और कुशल हो। भुषुण्ड कहते हैं, उन चंचलताओं को जो त्याग देता है तो भषण्ड अभ्रः वृत लोकम ब्रही अर्थात् वृत्तियों में प्रवेश कर जाता है उसे कागभुषुण्ड कहते हैं। मैं कागभुषुण्ड बन गया हूँ। मुझे आप कागभुषुण्ड कहते हैं, और ऋषि भी कहते हैं, परन्तु उसके मूल में क्या है? तपस्या है, उसके मूल में शिक्षा है। जब आचार्यों की शिक्षा हमें प्राप्त हो गई तो मानो चंचल प्रवृत्ति हमारी स्थिर बन गई। स्थिर प्रवृत्ति का बन जाना ही ज्ञान और विवेक कहलाता है।
ऋषिवर लोमश जी बोले मेरे वाक्य से तुम कागभुषुण्ड जी दूरी चले गएं हो। मेरा तारतम्य क्या है? यह संसार कैसा विचित्र है? इस संसार को जाना जाएं। कागभुषुण्ड जी बोले महाराज कि इस संसार को जानने के लिए ऋषि मुनियों ने बहुत प्रयास किया है। परन्तु जानते हुए अन्त में वह मौन हो गये। इसीलिए आप भी मोन होना चाहते हैं। अन्त में एक ही मार्ग मानव को प्राप्त हुआ है। कि जिस मार्ग पर तपस्वी पुरुष चले हैं उस मार्ग को अपनाना हमारा परम कर्तव्य है। उसमें मानव को भ्रमित नहीं होना चाहिए।
अहा मेरे पुत्रो! जब उस समय कागभुषुण्ड जी ने कहा तो उस समय लोमश मुनि बोले कि कागभुषुण्ड जी तुम्हारा वाक्य महान प्रिय है तुम्हारा वाक्य यथार्थ है। परन्तु मेरे विचार में तो यह संसार जो आया है यह संसार क्या है? यह प्रसंग हमारे समीप है। मेरे समीप संसार में जो कुछ वार्त्तायें आयी हैं, यह संसार ऐसा है, जैसे छायावाद हो रहा है। संसार के क्षेत्र में जो मानव गति करता रहता है, कृतियों में रमण करता रहता है वह इस संसार को जान लेता है। इस संसार को जानने का प्रश्न भी बहुत अनिवार्य है। जो इस संसार को नहीं जानता वह मानव परलोक को भी नहीं जानता। जो इस संसार के तथ्यों को नहीं जानता, वह ब्रह्म को भी नहीं जानता। क्योंकि यह संसार कागभुषुण्ड जी! ब्रह्म में पिरोया हुआ है। परन्तु देखो, जब हम ब्रह्म को जान लेते हैं, ब्रह्म हमारे आँगन में आ जाता है हम उस गन्धर्व लोकों में रमण करते हुए, उसकी

आभा को प्राप्त करते रहते हैं।

गन्धर्व

जब लोमश जी ने कहा तो कागभुषुण्ड जी के चिन्तन में वह वाक्य आ गया। दोनों ऋषि चिन्तन करते थे। कहीं सूर्य के ऊपर चिन्तन हो रहा है। कहीं जल के ऊपर हो रहा है, कहीं अग्नि के ऊपर हो रहा है। कहीं अन्तरिक्ष में शब्दों के ऊपर चिन्तन हो रहा है। कहीं गन्धर्व और पितर लोकों के सम्बन्ध में चिन्तन हो रहा है। गन्धर्व लोकों का चिन्तन जब दोनों का प्रारम्भ होता था तो वह गन्धर्व उन्हें कहा करते थे जो इस पृथ्वी से उड़ान उड़कर के दूसरे लोकों में गति करते रहते थे। जो ऋषि मुनि समाधिष्ट हो करके सर्वत्र ब्रह्माण्ड को क्रिया में लाना जानते थे। उन्हें सब गन्धर्व कहा जाता है और उन्हीं के चरणों में ओत प्रोत हो करके मानव अपनी आभा को प्राप्त करता है और अपने मानवीयता को ऊँचा बनाता है। अपनी महत्ता में रमण करता हुआ इस सागर से पार होने का प्रयास करता है।

तो परिणाम क्या? मुनिवरों! गन्धर्व किसे कहते हैं? यह विचार हमारे समीप बारम्बार आता रहता है। गन्धर्व उन्हें कहते हैं बेटा! जो आध्यात्मिकवेत्ता होते हैं। आध्यात्मिकवाद की शिक्षा देते हैं। वह भौतिकवाद को आध्यात्मिकवाद के ऊपर न्यौछावर कर देते हैं। जैसे मुझे स्मरण है बेटा! एक समय महर्षि गोकलित ऋषि महाराज जो हरित वंश में उत्पन्न हुए थे। गोकलित ऋषि महाराज एक समय भयंकर वनों में विराजमान थे। और अकाल पड़ गया। जब अकाल पड़ने लगा तो संसार में त्राहि त्राहि होने लगी। उस समय गोकलित ऋषि महाराज ने यह विचारा कि मैं इसको कैसे समाप्त करूं? यह अकाल कैसे समाप्त हो? गोकलित ऋषि महाराज ने भयंकर वन में, हिमालय की कन्दराओं में मेरे पुत्रो! उन्होंने कुछ साकल्य एकत्रित किया और साकल्य एकत्रित करके अपने मन को तपस्वी बना करके संकलन मात्र से वृष्टि याज्ञ बनाया। वृष्टि याग की रचना की। जब रचना की तो जैसे ही याग होने लगा तो वृष्टि भी प्रारम्भ होने लगी।

तो वह जो ऋषिवर होते हैं वह परमाणुवाद पर अपनी वाणी को संयम में करते हुए,

भौतिकवाद को भी आध्यात्मिकवाद पर न्यौछावर कर देते हैं। वह कहते हैं कि यह सब आध्यात्मिकवाद है। सर्वत्र आध्यात्मिकवाद है। जो भी मानव भयंकर वन में जाना चाहता है, आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहता है वह भौतिकवाद के संसार में तन्मात्राओं को प्राप्त करके ही आगे आध्यात्मिकवाद को प्राप्त करता है। आध्यात्मिकवादी पुरुष भौतिकवाद में रमण करता हुआ आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है। वही परमज्ञानी है। वह परम प्रकाश को जानने के लिए तत्पर हो गया है। उन महापुरुषां को गन्धर्व कहते हैं।

अरे, गन्धर्व कौन है? जो आध्यात्मिकवेत्ता होते हैं, जो ब्रह्म की शिक्षा देते हैं, जो ब्रह्मज्ञान देते हैं, वह सर्वत्र दानी होते है। द्रव्यपति है जो द्रव्य का दान दे रहा हैं वह द्रव्य को सदुपयोग में लगा रहा है। एक वह मानव है जो मेरे प्यारे! विद्या को निगलता है। वह ऐसे द्रव्य को एकत्रित करता है जिसका संसार में अभाव नहीं होता। एक द्रव्य है उसका रूपान्तर करके अभाव हो जाता है। परन्तु यह जो ब्रह्मविद्या है यह ऐसा उपार्जन, ऐसा द्रव्य है, ऐसा महान कर्म है बेटा! जितना भी द्रव्य को दे दो, वह समाप्त नहीं हो सकता। यह जो विद्या है, यह जो ब्रह्मज्ञान है, ब्रह्म का उपदेश है मुनिवरों! जितना तुम दूसरों को प्रदान करोगे उतना बलवती होता जाएगा। उतना ही प्रबल होता चला जाएगा।

ब्रह्म विद्या

इसीलिए मुनिवरों! यहाँ ब्रह्मचारियों को सबसे प्रथम यही कहा जाता है, हे ब्रह्मचारियो! तुम उस विद्या को ग्रहण करो जिसका कोई भी संसार में बंटवारा नहीं कर सकता। तो यह ब्रह्म विद्या ऐसी विद्या है बेटा! जिसका संसार में कोई बंटवारा नहीं कर सकता। इसका जितना तुम बंटवारा करते रहोगे, उतना तुम सूक्ष्म, तीव्र बुद्धि बनते चले जाओगे, उतने ही गन्धर्व बनते रहोगे। गन्धर्व लोकों में रमण करते रहोगे तो मेरे पुत्रो! हमें विचार विनिमय करना है कि हम गन्धर्व लोकों को प्राप्त होना चाहिए। गन्धर्व बनना चाहते हैं। बेटा! गन्धर्व कौन है? जो ब्रह्म विद्या को प्रदान करते हैं। जो इस लोक से दूसरे लोकों

का निर्णय कराते हैं।

वह जो ब्रह्मसूत्र है इस ब्रह्म सूत्र में यह संसार ओत प्रोत हो रहा है। यह ब्रह्म सूत्र कहलाता है। हमारे यहाँ यज्ञोपवीत को भी ब्रह्मसूत्र कहते हैं क्योंकि वह त्रि विद्या को प्रदान कराता है। त्रि विद्या की प्रेरणा देता है। तो इसीलिए पुत्रो! उसे ब्रह्म सूत्र अथवा ब्रह्मपाश कहते हैं। जिस प्रकार मेरे प्यारे! त्रेता के काल में अंजनापुत्र महाराजा हनुमान जब रावण की वाटिका में पहुंचे तो रावण ने उस ब्रह्मसूत्र में ही हनुमान जी को कटिबद्ध कर लिया। ब्रह्मसूत्र को नष्ट नहीं कर सके। क्योंकि ब्रह्मसूत्र यज्ञोपवीत कहलाता है। जो यज्ञ के कवच को धारण कर लेता है उसको संसार में कोई मृत्यु को प्राप्त नहीं करा सकता। यज्ञोपवीत एक कवच कहलाता है बेटा! जैसे देवी का पूजन करने वाला देवी के कवच को धारण कर लेता है और सन्ध्या करने वाला सन्धि के कवच को धारण कर लेता है। जो इन कवचों को धारण करता है मेरे प्यारे! दूषितता उनके समीप नहीं आती।

मैं कवचों की चर्चा तो वेद का पठन पाठन आएगा तो करूंगा किसी काल में। आज तो केवल तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आए हैं कि हमें कवच को धारण करना है। कवच को अपनाना है और वह कवच क्या है? जिसको अपनाना है। मुनिवरों! कई प्रकार के कवच होते हैं जैसे क्षत्रिय जो संग्राम करने वाला होता है वह कवच को धारण करता है और वह कैसा कवच है? वह उस कवच को धारण करके शत्रु की सेना से संग्राम करता है इसी प्रकार राजा जब प्रजा रूपी कवच को धारण कर लेता है तब वह राजा कहलाता है। योगी जब चित्त की प्रवृत्तियों रूपी कवच को धारण कर लेता है तो वह योगी बन जाता है। इसी प्रकार चित्त की प्रवृत्तियों रूपी कवच को धारण करने वाले बनो। यही है बेटा! हमारा महः अप्रः लोकः, वेदाम् ब्रीही लोकः रुद्र लोकः। नाना प्रकार के लोकों की चर्चाएँ आती रहती है। बेटा! जब विज्ञान रूपी कवच को मानव धारण कर लेता है वह अपने यानों पर विद्यमान हो करके दूसरे लोकों को प्राप्त होता है। परिणाम क्या? यहाँ यह संसार एक कवच के आँगन में विद्यमान है। मेरे पुत्रो!

आत्मा भी यज्ञ रूपी कवच को धारण किए हुए रहती है।

धर्म में प्राण

मैं इस क्षेत्र में विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय क्या है? विचार यह चल रहा था ऋषिवर जब याग करने लगा तो वृष्टि प्रारम्भ हो गई। मेरे प्यारे! हनुमान को जब रावण ने ब्रह्मसूत्र में बांध लिया तो उसको वह नष्ट नहीं कर सके। क्योंकि वह सूत्र होता है उसको कोई भी मानव नष्ट नहीं कर सकता। मेरे प्यारे! ब्रह्मपाश रूपी एक यन्त्र भी उनके द्वारा था, जिस यन्त्र में से हनुमान निकल नहीं सकते थे। ब्रह्म सूत्र एक धर्म का प्रतीक कहलाया जाता है। वह अपने से दूरी धर्म को नहीं कर सकता। आज कोई मानव यह कहे मैं धर्म को नहीं मानता हूँ। मैं धर्म को नहीं स्वीकार कर रहा हूँ। अरे, धर्म से कोई मानव दूरी नहीं है। धर्म के कवच को सबने धारण किया हुआ है। मुनिवरों! वह परमात्मा को स्वीकार करने वाला हो या न हो, परन्तु वह धर्म को अपने से दूरी नहीं कर सकता धर्म ही मानव का प्राण है। वही कवच है। मेरे पुत्रो! धर्म ही ईश्वर है धर्म ही सत्य हैं सत्य को धारण करने वाला इस संसार से पार हो जाता है।

आज का विचार विनिमय क्या? मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ। महाराजा हनुमान उस ब्रह्म पाश को, जिसको हम यज्ञोपवीत कहते हैं। यज्ञ के समीप विद्यमान हो जाते हैं यज्ञ का हमें अधिकार प्राप्त हो जाता है। ब्रह्म सूत्र को धारण करने वाला मानव राष्ट्रीय ध्वज कहलाता है और वह जो उसको धारण करता है उसके फांस में फंस जाता है। जब कवच को लेकर राष्ट्रीय धारा में जाता है तो राष्ट्र भी उस कवच को धारण करके राष्ट्रीयता वाला कहलाने लगता है।

मुनिवरों! ब्रह्मपाश क्या है? ब्रह्म पाश रूपी एक यन्त्र भी होता है। जो ब्रह्म का हमें ज्ञान कराता है ब्रह्मवेत्ता बना देता है। उस विद्या का नाम ब्रह्म पाश कहा जाता है। जिससे मानव निकल नहीं सकता। ब्रह्म विद्या से दूरी कहाँ जाओगे? ब्रह्मविद्या ही तो मानव को मानव बनाती है। विवेकी बना देती है। और मेरे प्यारे! गन्धर्व देवता वह कहलाते हैं

जो ब्रह्म में हमें जिज्ञासु बना देते हैं। बेटा! गन्धर्व लोकों के पश्चात् ब्रह्म लोकों की चर्चाएँ आती हैं। समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ मैं कल प्रगट करूंगा।

आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि प्रत्येक मानव अपने धर्म रूपी कवच को धारण करके, सन्ध्या रूपी कवच को धारण करके, देवी सूत्रों का कवच बना करके अपने कर्त्तव्य का पालन करते चले जाओ और गन्धर्व लोकों को अपनाते चले जाओ। गन्धर्व लोक ऐसा है जैसे छाया है, छाया का जो प्रकाश है वह ब्रह्म का है। ब्रह्म की चर्चाएँ इसके आगे चर्चाओं में वेद के पठन पाठन का समय प्राप्त होगा तो कल प्रगट करें। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। महाश्य कृष्ण हाल जोर बाग समय : रात्रि 8.30।

२ 13 03 1978 पुष्प 38 पुष्प उपलब्ध नही है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि इसका ज्ञान और विज्ञान इतना महान और अनन्त माना गया है जिसको कोई भी मानव सीमाबद्ध नहीं कर सकता क्योंकि वह सीमा से सदैव रहित है। तो मुनिवरों! उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान की आभाएं तुम्हें प्रायः प्रकट हम कराते रहते हैं। वेद पाठ आता रहता है और ज्ञान और विज्ञान की विवेचनाएं आती रहती हैं। हमारा प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है अथवा उसका वर्णन कर रहा है।

जब हम उस परमात्मा को अपना वरणीय स्वीकार कर लेते हैं तो हमारे जीवन में, हमारी क्रियाओं में एक महान आनन्द हमें प्रतीत होने लगता है। क्योंकि हमारे ऋषि मुनियों ने परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान के विषय में बहुत परिश्रम किया। उन्होंने बेटा! अपने मनस्तत्व, प्राणस्तत्व दोनों को एक सूत्र में

लाते हुए अपने को समाधिष्ट किया। और समाधिष्ट में संसार का जितना भी ज्ञान है अथवा तिना भी वह जान पाता है वह उतने में कुछ लेखनीबद्ध करके चला जाता है। क्योंकि ऐसे नाना ऋषि हुए हैं जिन्होंने भौतिक विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान दोनों के ऊपर नाना टिप्पणियां ही नहीं कीं, उन्हें जानने का प्रयास भी किया और उनके जीवन का एक रहस्य रहा है कि वह मनस्तत्व, प्राणस्तत्व दोनों का एक सूत्र में ला करके क्योंकि यह मन प्रकृति का प्रतिनिधित्व करने वाला है। और जो प्राणस्तत्व है इसको अन्तिम सूत्र में आचार्यों ने प्रणव कहा है, मानो यह ब्रह्म का वाचक, उसकी जो आभा निर्णित कराता है वह प्राणस्तत्व कहलाता है।
परन्तु आज मैं इस सम्बन्ध में भी इतनी गम्भीरता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय केवल यह कि हमारे ऋषि मुनियों ने बेटा! लोक लोकान्तरों की यह एक ही सूत्र में जो मालाएं हैं, लोक लोकान्तरों की जो माला है इसको ऋषियों ने अपने मस्तिष्क में धारण किया है और इसको जानने का प्रयास किया। उन्होंने समाष्ठि हो करके एक नहीं, दो नहीं, अरबों, खरबों, सूर्य की गणनाएं की हैं। इसी प्रकार चन्द्र लोकों की गणनाएं की हैं और भी नाना प्रकार के मण्डलों को जानने का प्रयास किया। एक समय का वाक्य मुझे स्मरण आ गया है। एक समय बेटा! हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत थे। कुछ अध्ययन कर रहे थे कुछ उनसे यौगिक चर्चाएं प्रारम्भ हो रही थीं तो पूज्यपाद गुरु से यह प्रश्न किया कि प्रभु! आपने यह कैसे जाना है? जो इतने ब्रह्माण्ड की आप चर्चाएं करते हैं, इतने गम्भीर! आप इस संसार को अनुभव भी नहीं होने देते कि यह संसार क्या है? परन्तु आपका ऐसा जो विचित्र यह अनुपम जगत है। यह जो विचारों का जगत है प्रभु! इसमें आप हमें ले जाते हैं। उन विचारों के जगत में कौन सी आभा है? और कैसे आपने इसे जाना है? परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि जतो भी मानव संसार में विचारक बनना चाहता है वह प्रातःकाल एक याग करता है उस याग का नाम हमारे यहाँ ब्रह्मयाग कहा जाता है अिवा ब्रह्म का चिन्तन किया जाता है। ऊषा काल में ऊषा देवी अपनी लालिमा ले करके आती है। संसार में प्रकाश को लेकर आती है। उस समय प्रत्येक मानव ब्रह्म का

चिन्तन करता है और जैसे रात्रि और दिवस दोनों का मिलान होता है उस काल में अपने मनस्तत्व जहाँ ऊषा काल आता है वहाँ जहाँ अन्धकार और प्रकाश का मिलान होता है ऐसा जो काल उसको हमारे यहाँ मुनिवरों! सन्ध्या का काल कहते हैं। उसे सन्ध्या का काल क्यों कहते हैं! क्योंकि उसमें प्रकाश और अन्धकार दोनों का मिलान होता है। प्रातःकाल को भी और सायंकाल को भी बेटा! विचारक जो ब्रह्मवेत्ता हैं अथवा जो ब्रह्म का चिन्तन करने वाला है वह ब्रह्म का चिन्तन करने के लिए तत्पर होता है और वह विचारता है इसी प्रातःकाल को और वह चिन्तन करता है लोक लोकान्तर की मालाओं को और मेरे प्यारे! वह गम्भीर एक अगाध समुद्र में चला जाता है इतनी अगाध आभाओं में रमण करने लगता है क्योंकि ब्रह्म ही एक चैतन्य है। ब्रह्म की जो चेतनता है, ब्रह्म का जो चैतन्यमयी स्वरूप माना गया है मेरे प्यारे! प्रातःकाल उसे ब्रह्मयाग कहते हैं अथवा ब्रह्म का चिन्तन कहते हैं। वह कहता है हे प्रभु! मैं आप को समर्पित हो गया हूँ। उस समर्पणता के आँगन में हमें धारण कराइये प्रभु।

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या आज मैं तुम्हें यह विचार देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को ब्रह्म का चिन्तन करना है, ब्रह्म में ही रमण करना है। उसे मुनिवरों! ब्रह्मयाग कहते हैं। ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? बेटा! जो ब्रह्म का जिज्ञासु है। ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? जो अपने को बनाना चाहता है। ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? जो स्वर्ग में जाना चाहता है। आनन्द को प्राप्त करना चाहता है। मेरे प्यारे! ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? ब्रह्मण करता है। ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? ब्रह्मचारी करता है। ब्रह्म का चिन्तन कौन करता है? मेरे प्यारे! जो समाधि लगाने वाले महापुरुष होते हैं। विचार विनिमय क्या मुनिवरों! जो माता पिता यह चाहते हैं कि हमारा गृह आनन्दमयी हो जाए। हमारे गृह में स्वर्ग भी हो, आनन्द भी हो, प्रकाश भी हो तो मेरे प्यारे! प्रत्येक माता पिता का यह कर्त्तव्य है कि अपने गृह में ब्रह्म का चिन्तन करने वाला हो। ब्रह्म का मनन करने वाला हो। जो माता पिता अपने में तो कुछ बनाना नहीं चाहते और अपने गृह में, जो बाल्य बालिकाएं हैं उनको स्वर्ग में ले जाना चाहते हैं तो

यह मिथ्या उनकी कल्पना रहती है।
आज का हमारा विचार क्या? मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जहाँ ऋषि और ऋषि पत्नियों ने चिन्तन किया है, ममन किया है। जिनके आश्रम में रहने वाले ब्रह्मचारी ब्रह्म की चरि को ही चरते रहते थे। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है एक ऋषि थे जिनका नाम सन्तोषी ऋषि महाराज था। सन्तोषी ऋषि महाराज, महाराजा अश्वपति के पुरोहित थे। जब वह प्रातःकाल पति पत्नी दोनों ब्रह्म का चिन्तन करते थे तो उनकी समाधि लग जाती थी। निर्विकल्प समाधि में अभ्यस्त हो जाते। उनके यहाँ कुछ ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे, कुछ ब्रह्मचारिणियां थीं तो उनको निर्विकल्प समाधि में मग्न करते हुए दृष्टिपात करते तो ब्रह्मचारी विद्यालय में जब उसी प्रकार का चिन्तन करते रहते तो विद्यालय स्वर्ग बन जाते। विद्यालयों में महत्ता का सदैव प्रदर्शन होता रहता। महानता में रहते मुनिवरों! वह विभोर हो जाते और समाधि में जा करके ब्रह्म की आभा में रमण करते रहते। महर्षि सन्तोषी मुनि महाराज अश्वपति के पुरोहित भी थे, विद्यालय में आचार्य भी थे। विद्यालय में ब्रह्मचारियों को अध्ययन भी कराते रहते। ब्रह्म के चिन्तन में अपने को महान बनाते हुए, ऊर्ध्वा बनाते हुए संसार की आभाओं में रमण करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें कहाँ ले गया हूँ। ब्रह्म का चिन्तन करने वाले पति पत्नी प्रातःकालीन, मध्यरात्रि होती तो प्रभु! के आँगन में जाने के लिए उनका आत्म विभोर होना स्वाभाविक था। क्योंकि वह कहा करते थे हे प्रभु! यह जो तेरा आनन्दमयी जगत है इसको हम कैसे जानें? इसको कैसे जान सकते हैं? आपकी जो अनन्त सृष्टि है, जो ब्रह्माण्ड है उसको जानने में प्रभु! मैं सदैव असमर्थ रहता हूँ। हे भगवन्! आप तो महान हैं। आप तो विचित्र कहलाते हैं। यह जो माता पिता हैं ब्रह्म का चिन्तन करते रहते हैं वहाँ रहने वाले बाल्य, बालिकाएं, वह जो श्रवण करते हैं तो उनका आश्रम, उनका गृह चाहे वह गृह आश्रम में प्रवेश होने वाले हों, चाहे वह विद्यालय में हों। चाहे वह राजा के यहाँ पुरोहित क्यों न हों परन्तु वह जहाँ भी जाते हैं वह स्वर्ग की कल्पना करते हैं। आनन्द की पुकार करते हैं।
तो मेरे प्यारे! आनन्द मानव के हृदय से सम्बन्धित है। मानव का हृदय ही उसका आनन्द

है। इस आनन्द को पान करना मानव का कर्त्तव्य कहलाया गया है। एक आनन्द को पान करना ही उस मनस्तत्व और प्राणस्तत्व दोनों को एक आभा में ले जाना है। परन्तु देखो, प्रातःकालीन जब वह ब्रह्म का चिन्तन करते उसे ब्रह्मयाग कहते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा इन यागों का अभिप्राय यह है यागम् ब्रह्म लोकाः प्रभु के विभोर में जो मानव जागरूक रहता है वह याग कर्म करता है। यागी कौन है? मेरे पुत्रो! यागी कहते हैं जो याग करता है और याग कौन करता है बेटा! जो ब्रह्म का चिन्तन करता है। ब्रह्म का मनन करता है। मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महाराजा अश्वपति के मस्तिष्क में एक वाक्य आया कि मुझे अपने राष्ट्र को स्वर्गमयी, आनन्दमयी बनाने के लिए एक याग करना है। मुनिवरों! उन्होंने ऋषि मुनियों की सभा एकत्रित की और उन ऋषियों में बेटा! एक ऋषि का नाम था महर्षि कुकरोटक ऋषि महाराज। कुकरोटक ऋषि महाराज ने कहा राजन्! हमें किस प्रकार तुम ने एकत्रित किया। उन्होंने कहा कि मैं अपने राष्ट्र में याग करना चाहता हूँ क्योंकि मेरा जीवन ही याग है। मैंने अपने में यह विचार लिया कि मेरे जीवन में याग ही होते रहते हैं। यदि मैं वास्तव में याग को करना चाहूँगा मेरा याग इतना महान हो सकता है कि मैं संसार का याज्ञिक बन करके प्रभु को समर्पित कर सकता हूँ। मेरे पुत्रो! जब उन्होंने यह कहा तो ऋषि कहते हैं महर्षि विभाण्डक और महर्षि कुकरोटक एक स्वर में बोले। हे अश्वपति! आप याग तो करना चाहते हैं, याग की आपको कल्पना है परन्तु आप ब्रह्मयाग भी जानते हैं अथवा नहीं? उन्होंने कहा प्रभु! ब्रह्मयाग तो मैं कुछ जानता हूँ कुछ नहीं जानता। ऋषियों ने कहा कितना जानते हो? उन्होंने कहा मैं इतना जानता हूँ कि प्रातःकाल, सायंकाल को मैं जब भी जागरूक होता हूँ। मैं जब भी अपने को जागरूक करना चाहता हूँ तो प्रभु! में ध्यानावस्थित हो जाता हूँ। प्रभु की महिमा पर विचार विनिमय करने लगता हूँ और प्रभु का विचार विनिमय करने से मेरा याग मेरे को आनन्दित कर देता है। मैं इतना याग करना जानता हूँ केवल।

परन्तु ऋषि विभाण्डक कहते हैं। हे राजन्! तुम वास्तव में याग के मार्ग को जानना चाहते हो। तुम्हारा यह जो याग है वह ब्रह्म जो याग है जो मानव करता है जिसमें

मानव की एक एक इन्द्रिय इसमें समर्पित होती है। प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जानना हो तुम्हारा याग कहलाता है क्योंकि प्रत्येक इन्द्रियों को जो विषय है जैसे, रूप, रस, गन्ध कहलाता है, इन विषयों में सर्वत्र मानव की आभा निहित रहती है और यही याग का साकल्य कहलाता है और यही ब्रह्मयागी बनने के लिए साकल्य कहलाता है। उन्होंने कहा प्रभु! कैसे? कहा जैसे नेत्र हैं, जैसे घ्राण इन्द्रियां हैं यह एक एक विषयों में ब्रह्म की गाथा गा रही हैं। सूर्य और चन्द्र हैं यह भी गाथा गा रहे हैं। एक अश्वनी है, घ्रति है, जमदाग्नि इत्यादि भी गाथा गा रही है विश्वामित्र भी ब्रह्म की गाथा गाते हुए विषयों को जानना हमहान प्रतिभाओं को जानना, तेजोमयी का इनमें रहस्य भरा हुआ है। साकल्य को जानना उनको जान करके अग्नाध्यान करना है। अग्नाध्यान करके जो उसमें आहुति देता है, स्वाहाः कहता है वह ब्रह्मयाग कर रहा है। वह देव याग नहीं वह ब्रह्मयाग कर रहा है। क्योंकि ब्रह्मयाग मानव अपनी इन्द्रियों से करता है वह इन्द्रियों में जो साकल्य है। इन्द्रियों का साकल्य क्या है? मेरे प्यारे! नेत्रों का साकल्य रूप है श्रोत्रों का शब्द है। त्वचा का वायु है इसी प्रकार मेरे प्यारे! अग्नि इत्यादि हैं। इस सर्वत्रता को जानना ब्रह्माण्ड का साकल्य कहलाता है। ऋषि मुनि इस साकल्य को एकत्रित करके ब्रह्मयाग करते हैं ब्रह्म आहुति देते हैं। ब्रह्म में आहुति क्या? प्रत्येक इन्द्रियों को ब्रह्म में, आत्म तत्त्व में समर्पित करके ब्रह्म की आभा में ले जाना ही मेरे प्यारे! ब्रह्मयाग कहलाता है।

आओ बेटा! मैं आज तुम्हें यह चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हमें ब्रह्मयाग करना है। हम ब्रह्म का चिन्तन करने वाले बनें। ब्रह्म का चिन्तन करने वाले स्वर्ग में जाते हैं। ब्रह्म लोक में जाते हैं। वह इस ब्रह्माण्ड को अच्छी प्रकार जानते रहते हैं। आओ मेरे प्यारे! सबसे प्रथम हमारे यहाँ ब्रह्म का चिन्तन हो। ब्रह्म के चिन्तन के साथ ही हमारा आत्म चिन्तन भी प्रारम्भ होता है। परन्तु आत्म चिन्तन और ब्रह्म चिन्तन दोनों एक ही सूत्र में पिरोने से ब्रह्मयाग बन जाता है। उसके पश्चात् द्वितीय जो याग है हमारे यहाँ देवयाग कहलाता है। देवयाग करने वाला बेटा! मैं अश्वपति की चर्चाएं कर रहा था। महाराजा अश्वपति को जब विभाण्डक आदि ऋषियों

ने यह निर्णय कराया तो राजा ने कहा प्रभु! मैं ऐसा ही प्रयत्न कर रहा हूँ। भगवान मनु ने जब राष्ट्र का निर्माण किया था। मैंने इस विद्या को श्रवण किया है और अध्ययन किया है। मैंने यह जाना है कि जब तक राजा स्वयं याज्ञिक नहीं होगा। मांगलिक नहीं होगा वह प्रजा को सुन्दर कदापि नहीं बन सकेगा। क्योंकि कर्तव्य में लाने के लिए मानव को मानव बनाने के लिए मानवीयता, राष्ट्रीयता हो क्योंकि दोनों का सम्बन्ध, दोनों एक ही सूत्र के मनके कहलाते हैं। तो मेरे प्यारे! इसीलिए ऋषि मुनियों ने यह कहा है कि राष्ट्र को राजा ऊचा बनाना चाहता है तो स्वयं ऊचा बनने का प्रयास करे। प्रजा को सुखद बनाना चाहता है तो याग कर्म करने वाला हो। क्योंकि जिस कर्म को महापुरुष करते हैं उसी कर्म में प्रजा लग जाती है और जिस कर्म में प्रजा लग जाती है वह उसका कर्म और कर्त्तव्य बन जाता है और वही स्वर्ग और नरक कहलाता है। स्वर्ग तो इसलिए है कि जो राजा याग करता है और कहता है कि ऋण से उऋण होना है। प्रत्येक मानवप प्रत्येक देव कन्या से यह कहा जाता है कि तुम्हें ऋण से उऋण होना है।

ऋणों की विवेचना तो मैं कल के काल में दूंगा। केवल अब तो परिचय दे रहा हूँ। परिचय क्या है कि ऋणों से उऋण होना है। जब ऋणों से उऋण होने के लिए राजा प्रेरित होता है। प्रजा में कर्त्तव्य का पालन करता है तो जब राजा ऋणों से उऋण होने का प्रयास करता है तो प्रजा भी करती है। जब एक दूसरे का मानव ऋणी नहीं रहता है तो मानवप में सुखद और शान्ति की स्थापना हो जाती है। क्योंकि मानव जब तक ऋणी बना रहता है तो सुखद और शान्ति की स्थापना नहीं होती। सुखद और शान्ति वही मानव प्राप्त करता है जो कर्त्तव्यवादी होता है, महान होता है। तो इसीलिए ऋषि मुनियों ने कहा, हे राजन! यदि तू अपने को और प्रजा को महान बनाना चाहता है तो तुझे महान बनना ही होगा और महान तू कैसे बनेगा? महान उस काल में बनेगा जिस काल में तू याज्ञिक होगरा, मांगलिक होगा क्योंकि याग कर्म करना ही तेरा मुख्य उद्देश्य है जैसे राजा का एक एक श्वास, एक एक शब्द प्रजा के लिए होता है। जैसे राजा का एक एक कर्म, विचार ब्रह्म विचार होगा तो वह राष्ट्र के लिए होगा। देखो, यदि याग

कर्म होगा तो वह भी राष्ट्र के लिए होगा क्योंकि राजा जैसा बरतता है वैसा ही प्रजा बरतती है। जैसे प्रजा बरतने लगती है वैसा ही राज्य मण्डल होता है, वायु मण्डल होता है और जैसा ही वायु मण्डल होता है वैसे ही देवता होते हैं जैसे देवता होते हैं वैसे ही यह ब्रह्माण्ड, यह विचार एक सूत्र में पिरो करके बेटा! परम आनन्द को प्राप्त होता है।

आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ विचार यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को, प्रत्येक देवकन्या को ब्रह्म चिन्तन करना चाहिए, ब्रह्म मनन करना है। जब ऋषियों ने राजा को यह कहा तो राजा ने कहा मेरे राष्ट्र में आप भोजन करो। मेरे राष्ट्र में कोई ऋणी नहीं है, न मैं किसी का ऋणी हूँ। उन्होंने कहा कि कैसे स्वीकार करें? राजा ने कहा प्रभु! मैं प्रातःकाल ब्रह्म का चिन्तन करता हूँ। उसके पश्चात् देवपूजा करने लगता हूँ। उसके पश्चात जब देवपूजा समाप्त होती है तो अतिथि पूजा में लग जाता हूँ। देव याग करता हूँ, पितर याग करता हूँ। यह पञ्च याग सदैव मेरे राष्ट्र में होते हैं। जब मेरे गृह में होते हैं और जब मेरी प्रजा में होते हैं तो मेरे राष्ट्र में कोई ऋणी नहीं है। मैं भी ऋणी नहीं हूँ। मैं ऋषियों के द्वारा अपना याग कर्म करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! जब ऋषियों से यह निर्णीत कराया तो मुनिवरों! उन्होंने कहा याग किया जाए। तो याग करने के लिए यज्ञशाला का निर्माण करने लगे। उन्होंने एक यज्ञशाला का निर्माण किया। जब यज्ञशाला का निर्माण किया तो नाना ब्राह्मणों का निर्वाचन हुआ। यज्ञमान का निर्वाचन किया गया।

याग जब प्रारम्भ होने लगा तो एक ऋषि ने राजा से, प्रश्न किया और यज्ञमान से कहा हे यज्ञमान! यह जो अग्नि में आहुति दी जाती घृत की, साकल्य की यह आहुति कहाँ चली जाती है? तो मेरे प्यारे! उस समय यज्ञमान कहता है, हे ब्राह्मण! वह आहुति पृथ्वी में विश्राम करती हैं। वह तमोगुण में प्रवेश कर जाती है। यह भिन्न भिन्न आहुति जो प्रदान करता है वह पृथ्वी के अस्तित्व में चली जाती है। इसके पश्चात् वह मौन हो गये। मौन होने के पश्चात् उन्होंने कहा भगवन! मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि यह आहुति कहाँ जाती है? उन्होंने कहा यह तीन धारा वाली आहुति बनती है। यह पृथ्वी

में प्रवेश कर जाती है। यह एक आभा में प्रवेश कर जाती है। यह सतोगुणी आहुति कहलाती है और एक आहुति अग्नि तत्त्व कहलाती है तीन धारा वाली यह जो अग्नि में तीन धारा वाली आहुति आभा में प्रकट हो जाती है। इसके पश्चात् ऋषि कहता है एक आहुति में तीन तीन धाराएं स्थापित हो जाती हैं। तीन धाराएं प्रारम्भ होती हैं। उनमें से तीन तीन धाराएं प्रारम्भ हो करके वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है िकि जब तीन तीन धाराएं प्रारम्भ होती है। एक एक में से तो जब ब्रह्म तत्त्व में जाती हैं तो 72 72 तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं और वह जो 72 72 तरंगें उत्पन्न होती है। तीनों में से यदि इनके ऊपर अनुसन्धान किया जाता है तो एक एक में से 199 199 तरंगों का जन्म हो जाता है। और वह वायुमण्डल में प्रवेश कर जाती हैं। वायु मण्डल में जितनी गति परमाणुवाद की हो रही है। अणुवाद लोक लोकान्तर अपनी आभा में परणित हो रहे हैं मेरे प्यारे! इन्हीं तरंगों के आधार पर यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। अपनी आभा में रमण कर रहा है।

तो परिणाम क्या है बेटा! इन वाक्यों का कि यह सूक्ष्म तम एक यज्ञमयी स्वरूप माना है। यही विचार बन करके बेटा! वायु मण्डल में रहते हैं। हम श्वास लेते हैं, प्राण की गति कर रहे हैं। हम जीवन को ऊचा बना रहे हैं। मुनिवरों! देखो, राजा का राष्ट्र महान बन गया। राजा ने कहा धन्य हो भगवन्! याग कर्म करने के पश्चात् यज्ञमान उनको उत्तर दे करके मौन हो गया। ऋषि मुनि सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने कहा यज्ञमान तो महान और विशाल हैं। मुनिवरों! उसके पश्चात् उन्होंने एक प्रश्न और किया। पूर्व दिशा में तुम्हारा मुख है उन्होंने कहा इससे प्रकाश आता है। हम प्रभु से याचना करते हैं कि हमें प्रकाश प्रदान करो। मेरे पुत्रो! ऊर्ध्वा में अध्वर्यु रहता है। पूर्व दिशा में प्रकाश आता है। साकल्य का भण्डार पूर्वाअस्ति है यह वाक्य तो कल ही प्रकट करूंगा।

आज का विचार तो मैं केवल यह देने के लिए आया हूँ कि प्रातःकालीन मेरे पुत्रो! ब्रह्म का चिन्तन करना चाहिए। ब्रह्म का चिन्तन जो करते हैं वह आत्म तत्त्व को प्राप्त करते हैं और जो आत्म तत्त्व वेत्ता होते हैं वह ब्रह्म को पाकर के वह उस महा आभा में परणित हो जाते हैं। उस आभा में परणित होने के पश्चात् देवतव उन्हें प्राप्त हो जाता

है। वह देवता बन जाता है। वह ब्रह्म जिज्ञासु बन जाता है। ब्रह्म की आभा में रमण करने लगता है। आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें गम्भीरता में ले जाना नहीं चाहता हूँ। केवल विचार यह कि माता पिता हों, पति पत्नी हों, उनको आत्म चिन्तन करना चाहिए। ब्रह्मयाग करना चाहिए और याग कहते हैं चिन्तन को, मनन को और उन विचारों को ऊर्ध्वा में ले जाएं जैसे अग्नि साकल्य को ले करके, सूक्ष्म बना करके, अग्नि देवताओं का रूप बन करके सर्वत्र देवताओं को वितरण कर देता है, इसी प्रकार अपने विचारों को ले करके द्वितीय विचारों को देता चला जाए। देखो,! उन्हीं विचारों से यह संसार ऊचा बनता है। आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने के लिए नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या का कर्त्तव्य है कि हम परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सदैव जानते रहें और उस आभा को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। क्योंकि प्रत्येक मानवप यह चाहता है कि मेरा जीवन स्वर्गमय हो, मेरा जीवन आनन्दमय हो। आनन्द कैसे प्राप्त होता है? बेटा! जो राजा करता है वह प्रजा करती है। माता पिता करते हैं उसे बाल्य बालिकाएं करती हैं। आचार्य करता है उसको ब्रह्मचारी बरतता है। बेटा! जो इनको जानता रहता है, इन वाक्यों के ऊपर चिन्तन और मनन करता है वही इस संसार में महत्ता और स्वर्ग के लाने का प्रयास करता है।

आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा की आभा में रमण करते रहें और उसकी आभा को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम एक दूसरे के ऋणी न रहें। मानवता हमारे जीवन में हो और इस संसार सागर से पार हो जाएं। तो मान अपमान का सागर है। कल मुझे समय मिलेगा तो कल अतिथि के सम्बन्ध में, एक दूसरे का जो ऋणी बना हुआ मानव है वह एक दूसरे ऋण की चर्चाएं हम कल करेंगे। आज का वाक् अब हमारा समाप्त हो गया है।

आज के विचार विनिमय करने का अभिप्राय यह है कि आज हमने अपने विचारों की

भूमिका बनायी है इस भूमिका के सन्दर्भ की चर्चाएं हमें इससे पूर्व के कालों में करेंगे। आज का विचार अब यह समाप्त होने जा रहा है। आज का विचार यह क्या कह रहा है कि हमें एक दूसरे का ऋणी नहीं रहना चाहिए और वह मानव स्वर्गमय रहता है जो एक दूसरे का ऋणी नहीं रहता। ऋणों की चर्चाएं कल करेंगे कितने प्रकार के ऋण होते हैं? इन ऋणों की चर्चा करने के लिए हमें सदैव अपने में मनन करते रहते हैं। प्रत्येक मानव को भी मनन करना है। यह है मुनिवरों! आज का वाक्। समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं बेटा! हम कल प्रकट करेंगे। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। लाक्षागृह, बरनावा समय : दोपहर 3 बजे

३ 14 03 1978 पुष्प 39 ऋणों को उतारना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है।

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। परमपिता परमात्मा वरणीय माना जाता है। जो मानव उसे अपना वरणीय बना लेता है अथवा उसे वर लेता है वह मानव इस संसार सागर से पार हो जाता है। इसीलिए प्रत्येक मानव, प्रत्येक ऋषि मण्डल को उस महान् देव को अपना वरणाय बना लेना चाहिए। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि प्रत्येक मानव जो अपनी अपनी आभा में अपने को ही दृष्टिपात करने लगता है। तो वह मानव अपने देव को प्राप्त हो जाता है। क्योंकि जितना भी हमारा साधक मण्डल है चाहे वह देवलोक में रमण करने वाला हो, चाहे वह सूर्य लोक में रमण करने वाला हो, चाहे वह मंगल का प्राणी हो, चाहे वह पृथ्वी मण्डल का हो, किसी भी लोक लोकान्तरों में रहने वाला साधक हो, परन्तु प्रत्येक साधक का एक ही मन्तव्य है, एक ही विचार है, कि वह अपने अन्तरात्मा को अन्तरात्मा में दृष्टिपात करना चाहता है। क्योंकि बाहरीय जगत् में उस प्रभु का दिव्य दर्शन होता है और बाहरीय जगत् को जब आन्तरिक जगत् में ले जाते हैं तो जितना यह बाहरीय जगत्

है यह अन्तर्मुखी हो करके अन्तरात्मा में ही उसका दिग्दर्शन करता है। तो मेरे प्यारे! चाहे वह किसी भी मण्डल का प्राणी क्यों न हो, साधना तो प्रत्येक प्राणी करता है, चाहे वह सूर्य मण्डल का प्राणी ही क्यों न हो। मंगल का ही क्यों न हो। साधना तो मानव का एक आत्मीय भोजन है। आत्मीयत्व एक तरंग है जिस तरंग को अपने में दृष्टिपात करके वह तरंगित हो जाता है।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं साधना के सम्बन्ध में अपना विचार देने नहीं आया हूँ। केवल यह विचार विनिमय करने आए हैं कि हमारे यहाँ प्रत्येक मानव जो ऋषि बना हुआ है आज मैं उनकी कुछ चर्चाएं करने जा रहा हूँ। जो प्रत्येक मानव ऋणी बना हुआ है उनमें कौन कौन सी वस्तु का वह ऋणी है? आज हम इस पर विचरा विनिमय करते चले जांए। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में ऋषि मुनि विद्यमान होकर के ऋणों की चर्चाएं करते रहते थे। एक समय, मुझे स्मरण है, कि राजा ज्ञानश्रुति एक राजा के यहाँ सर्वत्र जितना भी राष्ट्र था उनकी एक सभा हुई और उस सभा में यह विचारा गया कि राजा के यहाँ कौन कौन सा ऋण परणित माना जाता है? और उस ऋण से अवऋण होने पर समाज कैसे पवित्र बनता है और राजा का कितना उसमें सहयोग रहना चाहिए? यह एक राष्ट्रीय विचारधारा हमारे यहाँ वास्तव में परम्परागतों से रही है। क्योंकि जितना भी राष्ट्र मण्डल है वह भगवान मनु से लेकर के इस वर्तमान के काल तक सभी राजाओं का यह मन्तव्य रहा है कि मानव को मानवता देनी चाहिए। यही विचार रहता है कि मानव मानव बने। क्योंकि मानव बनने के लिए ही निर्वाचन होता है। मानव बनने के लिए ही राष्ट्र की तरंगें बनती हैं। राष्ट्र का जितना भी क्रिया कलाप है, राष्ट्र की जितनी भी पद्धतियां हैं वह मानव को ऊचा बनाने के लिए ही तो निर्धारित की जाती हैं क्योंकि वह साधारण तपस्विओं की पद्धति नहीं है। वह पद्धति महापुरुषां की है। यह पद्धति उन महापुरुषां की है जिन्होंने एक नौका में सवार होकर के 101 वर्ष तक तपस्या की थी। वह कौन थे? वह भगवान मनु थे जिन्होंने नौका में विद्यमान होकर के जल पलायण को दृष्टिपात किया। 101 वर्ष तक तप करने के पश्चात् अनुभवी ऋषि मुनियों को एकत्रित करते हुए उन्होंने राष्ट्र का निर्माण किया। आज मैं

उस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ केवल विचार विनिमय यह कि हमारा प्रत्येक ऋषि, वेद का विचार कहता है कि मानव ऋण से उऋण होने के लिए सर्वत्र पद्धतियों का निर्माण करता है। चाहे वह राजा हो, चाहे वह ऋषि मुनि हो, गुरु शिष्य की परम्परा हो, माता पिता की आभा हो, मेरे पुत्रो! सर्वत्र यह एक ही सूत्र के मनके कहलाते हैं और वह विचार का सूत्र है, ऋणों का सूत्र है कि प्रत्येक मानव को एक दूसरे का ऋणी होना चाहिए। मेरे पुत्रों! देखो, यहाँ ऋण से उऋण होने वाला जो ब्रह्माण्ड है यह लोक लोकान्तरवाद है। यह प्रभु का केसा अमूल्य जगत है जहाँ एक दूसरा लोक एक दूसरे का ऋणी बना हुआ है और एक सूत्र में पिरोया हुआ लोक लोकान्तर एक दूसरे से अवऋण होने जा रहा है। अर्थात् एक दूसरे की परिक्रमा करता हुआ यह ब्रह्माण्ड, यह लोक लोकान्तर एक ही प्राण और सूत्र में पिरोए हुए यह एक दूसरे से अवऋण होने जा रहे हैं। एक दूसरे के सहायक बने हुए हैं। एक दूसरे की आभा में रमण कर रहे हैं।

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें ऐसे क्षेत्र में ले जा रहा हूँ कि जहाँ मानव अवऋण होने का प्रयास करता है। मानव के द्वारा पांच प्रकार के ऋण होते हैं। सबसे प्रथम ब्रह्म का ऋण होता है। वह जो ब्रह्म है, जिस ब्रह्म ने इस महान अनुपम जगत् को रचा है। जो ऋषि मुनि अनुसन्धान करने वाले, समाधि में प्रभु को दृष्टिपात करने वाले नेति नेति का प्रतिपादन करते हैं। नेति नेति ही उच्चारण करते हैं वह प्रभु के ज्ञान और विज्ञान के सन्दीं में विद्यमान होकर के अपनी आभा में सदैव परणित रहते हैं। प्रभु के ऋण से जो अवऋण होना चाहता है जिस प्रभु का धन्यवाद प्रत्येक प्राणी को करना चाहिए, श्वासों को श्वास आ रहा है। कोई मानव नहीं जानता कि यह श्वासों की गति कैसे चल रही है? कोई मानव नहीं जानता एक श्वास में कितना परमाणु जाता है? यह परमाणु द्यौ लोक में जाता है। अन्तरिक्ष लोक में जाता है। नाना भू लोक में प्रवेश करता है। यही तरंगें मानव को आवागमन के क्षेत्र में ले जाती हैं।

आओ मेरे पुत्रो! इनको कोई नहीं जानता, हम प्रभु का धन्यवाद करते चले जाएं जिस प्रभु ने इस मानव शरीर का निर्माण किया है। हमें प्रातःकाल, सायंकाल प्रभु के सम्मुख

होकर के विद्यमान होना चाहिए। हे प्रभु! मैं आपके समर्पित हूँ। हे प्रभु! मैं आपका एक पुत्र हूँ। मैं आपका अमृतमयी पुत्र हूँ। प्रभु! मुझे इस संसार में इस जगत को विचारने के लिए मेरे हृदय में सदबुद्धि भरण कर। मेरे में अनुपम बुद्धि आ जाए। मैं ऐसा चाहता रहता हूँ। यह बेटा! प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिकाल, कोई भी काल हो, प्रभु का धन्यवाद देना चाहिए। जब मानव कोई प्रभु का ऋणी नहीं है वह तो एक अाीा है उसको विचारना है इससे वह मानव, वह बालक अमृत पुत्र बन जाता है। जैसे माता का बालक, माता का पुत्र, माता की अनुपम सेवा करता हुआ आज्ञा का पालन करता है, माता की आभा में रमण करता है तो वह माता अपने पुत्र को हृदय से आलिंगन करती हुई उससे स्नेह करती है। उसको अपना अमृतमयी पुत्र बनाती हुई अपने कर्त्तव्य का पालन करती चली जाती है। हमें इसी प्रकार प्रभु की आज्ञा का पालन करना है। उसका जो विधान है, उसका जो निर्माण किया हुआ अमूल्य जगत् है उसी के ऊपर हमें बारम्बार विचार विनिमय करना, चिन्तन करना उसमें लिप्त रहना, क्योंकि यह संसार जितना भी प्राणी मात्र है इस ब्रह्माण्ड में वह सब उस प्रभु का अमृतमयी पुत्र कहलाता है। अमृतमयी जगत् कहलाता है। इसीलिए प्रभु की आज्ञा का पालन करना ऋण से अवऋण होना है।

मेरे पुत्रो! इसके पश्चात जहाँ ईश्वर का ऋण है, प्रभु का ऋण है, जहाँ परमपिता परमात्मा का ऋण है उससे अवऋण होकर के ब्रह्मऋण जिसको हम देवताओं का ऋण कहते हैं। वह ऋण है। देवता कौन है? मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय कराया कि देवता दो प्रकार के कहलाते हैं। एक जड़ देवता हैं, एक चैतन्य देवता हैं। जड़ देवता वह हैं जो पञ्चमहाभूत हैं जिन पञ्चमहाभूतों की तन्मात्रा से हमारा अमूल्य जगत् चल रहा है जिसमें हम श्वास लेते हैं, गति करते हैं जिसको हम अपने में ही धारण करते रहते हैं। वह क्या है? वह देवताओं का ऋण है। इसलिए प्रातःकाल जब हम ब्रह्मयाग करते हैं तो हमें देवयाग भी करना है। देवयाग का अभिप्राय क्या है? जिससे हम देवताओं को आहुति देते हैं, हम हुत करते हैं, अग्नि का शोधन करते हैं।

अग्नि के ऊपर यदि मैं वार्त्ता प्रकट करने लगूं तो बेटा! एक पोथी ऐसी तिर्मित हो जाती

है जिस पोथी के भार को अपनपे में धारण नहीं कर सकता। एक अग्नि इतनी सूक्ष्म है, एक अग्नि इतनी स्थूल है। अग्नि ही स संसार में देवताओं का दूत कहलाता है देवताओं का अवृत कहलाता है। हमें इससे अवऋण होना है। अवऋण कैसे होंगे? हमें अग्नि के द्वारा आहुति देनी है। अग्नि में साकल्य प्रदान करने हैं। सुगन्धि देनी है। क्योंकि अग्न ही बड़वानल अग्नि बन करके हमें एक आभा में कहीं का कहीं परिणत कर देती है। अग्नि ही है जो मेरे प्यारे! हमारे इस मानव शरीर में प्रदीप्त रहती है।

अग्नि ही है जो यज्ञशाला में प्रदीप्त हो रही है। अग्न ही है जो सूर्य की किरणों में आभायित हो रहीह ै। आज मैं बेटा! अग्नि की कल्पना पर अपने विचार प्रकट नहीं करूंगा। केवल विचार विनिमय यह है कि हमें उस अग्नि को देवताओं का दूत बना करके आहुति देनी है। साकल्य प्रदान करने हैं क्योंकि जल का शोधन होता है। वायु का शोधन होता है और वायु पवित्र गति करती है। अन्तरिक्ष में शुद्ध पवित्र परमाणु होते हैं। तरंगें तरंगित होती हैं तो इससे समय समय पर वृष्टि होती हैं और समय समय पर वृष्टि हो करके मानव के शुद्ध और पवित्र विचार होते हैं।

मुनिवरों! देखो,! गृहस्थ आरम में पति पत्नी का एक उद्देश्य रहता है कि हमें उत्तम सन्तान को जन्म देना है। प्रत्येक मानव के द्वारा एक लक्ष्य बना रहेगा। हमारा जो जीवन है हमें पूर्ण करना है यह लक्ष्य बना रहता है। लक्ष्य वाला जो प्राणी है वही प्रभु की आज्ञा का पालन करता है। वही देवपूजा करता है वह देवताओं के समीप विद्यमान हो करके देवता कहलाता है। और पञ्चमहाभूतों की यज्ञ की चर्चाएं, यज्ञ में तुम्हें प्रेरित करने वाले बुद्धिमान हों, प्रखर बुद्धिमान हों। अग्नि के द्वारा तुम्हें प्रेरित करते हों अग्नि के प्रदीप्त करने वाले हों। अग्नि से अग्नि को जो प्रदीप्त करते हैं वह देवता कहलाते हैं। आज मैं तुम्हें ऐसी वार्त्ता प्रकट कर रहा हूँ बेटा! जो बहुत सामान्य हैं अग्नि से अग्नि को प्रदीप्त कैसे करते हैं वह देवता कहलाते हैं। आज मैं तुम्हें ऐसी वार्त्ता प्रकट कर रहा हूँ बेटा! जो बहुत सामान्य है। अग्नि से अग्नि को प्रदीप्त कैसे करते हैं? अग्नि कहते हैं वाणी को, और अग्नि कहते हैं विचारों को। विचारों से दूसरे के विचारों को जो प्रभावित करता है वह देवता कहलाता है। और वह देवता बन करके धर्म और मानवता के क्षेत्र

में तुम्हें प्रेरित करता है। ऐसे जो पुरुष होते हैं वह देवता कहलाते हैं। ऐसे पुरुष महान् कहलाते हैं। इसलिए महान् पुरुषों की आज्ञा का पालन करना, इनकी अनुमति में रहना देवपूजा कहलाती है। वह देवताओं के ऋण से उऋण होना है। देवपूजा है यज्ञ करना और ऊचे ऊचे जो महान पुरुष हैं, महान बुद्धिमान हैं उनकी आज्ञा का और उनकी वाणी को श्रवण करके उस पर आचरण करने का नाम यह देवऋण से उऋण होना है। पुत्रो! देव ऋण से उऋण होने के लिए हमें याग कर्म करना है। हमें सुगन्धि देना है। जहाँ कहीं मानव विद्यमान होता है वहीं विचारों की सुगन्धि है, कहीं साकल्य की सुगन्धि है, कहीं परमाणुओं की सुगन्धि उत्पन्न हो रही है। सुगन्धियां को पान करने वाला जो प्राणी है वह सुगन्धित हो जाता है। वह महान बन जाता है।

हमारे यहाँ प्रत्येक मानव बनने के लिए देवपूजा करना चाहता है। प्रत्येक मेरी प्यारी माता प्रातःकालीन अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाती है। अपनी देवपूजा करती है। देवपूजा क्या है? सुगन्धि करना है। विचारों को सुगन्धि देना है। बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। त्रेता के काल में जब माता कौशल्या विद्यमान होती थी तो चारों पुत्रों! को एक पंक्ति में विद्यमान हो करके उनको शिक्षा देती। मानो वाल्य होते और यह शिक्षा कि प्रीति से रहना है, त्यागपूर्वक रहना है, इस संसार में लिप्त होना ही मृत्यु है। लिप्त नहीं होना चाहिए किसी प्राणी को। अर्थात् कर्त्तव्यवादी जो प्राणी होता है वह लिप्त नहीं होता। जो ममता में विशेष लिपायमान नहीं होता।

एक मेरी प्यारी माता अपने पुत्र को उत्पन्न करती है परन्तु उसको निर्माण करने वाला तो प्रभु! है परन्तु माता की भी उसमें सहकारिता है। माता माध्यम बनी हुई है। यदि माता इसमें मां की ममता करती है तो वह माता माता नहीं। यदि माता त्याग का उपदेश देती है तो प्रभु की आज्ञा का और देवताओं की आज्ञा का पालन कर रही है। देवपूजा कर रही है। माता जो अपने प्यारे पुत्र को यह कहती है हे बालक! तू मेरी लोरियों का पान कर रहा है, तुझे ऊचा बनना है। बालक तुझे महान बनना है। तुझे पवित्र बनना है। किसी के श्रृंगार को हनण करने वाला तू न बन। तू रक्षक बन। भक्षक न बन। वह माता कितनी सौभाग्यशाली है। जो माता अपने ऋण से अवऋण होती है,

जो माता यह कहती है हे बालक तू मेरी लोरियों का पान कर रहा है। तुझे इन लोरियों की रक्षा करनी है। लोरियों का तू भक्षण न कर। जो माता यह उपदेश देती है वह कितनी कर्त्तव्य परायण है। कितना कर्त्तव्य का पालन कर रही है।

पुत्रो! इसीलिए प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य पालन करना ही उसका धर्म है। यह उसकी मानवता है। यही उसकी मननशीलता कहलाती है। वह माता माता नहीं होती जो अपने पुत्र को यह शिक्षा बाल्यकाल में प्रदान न करे। वह युवा होने पर देना चाहती है। वह माता मानो पामर वाले कर्म कर रही है। क्योंकि युवा अवस्था में यह शिक्षा, शिक्षा नहीं रहती। शिक्षा तो मुनिवरों! जब चतुर्थ माह माता के गर्भाशय में होता है उससे लेकर के पांच वर्ष तक की आयु तक माता का उपदेश उस बाल्य को प्रदान किया जाना चाहिए। यह माता का कर्त्तव्य है उससे पूर्व विचारों को बना लेना चाहिए। आज मैं इस विद्या के लिए अपना विचार नहीं देना चाहता हूँ।

आओ मेरे प्यारे! विचार यह कि यह समाज एक दूसरे का जो ऋणी बना हुआ है माता पुत्र की ऋणी है और पुत्र माता का ऋणी कहलाता है। एक लोक दूसरे का ऋणी बना हुआ है। राजा प्रजा का ऋणी है और प्रजा राजा की ऋणी कहलाती है। मेरे प्यारे! ऋण से अवऋण होना है। देव पूजा करना ऋण से अवऋण होना है। तृतीय जो ऋण है वह ॠषि ऋण कहलाता है। ऋषि किसे कहते हैं? जो बेटा! । अपने जीवन में अनुसन्धान करता है। दर्शनों का अध्ययन करता है और दर्शनों का अध्ययन करके प्रजा को अपना उपदेश दे जाता है। ऋषियों की जो पोथी है, ऋषियों का जो विचार है उसका जो ब्रह्मचारी बाल्य विद्यालय में अध्ययन करता है वेद का अध्ययन करता है, वेद के ऊपर आचरण करता है तो ऋषि ऋण से अवऋण होने जा रहा है। वह मानव साधक बनता है। साधक बनकर के जो ऋषियों ने विचार दिए हैं, पातंजली इत्यादि ऋषियों का जो विचार और महर्षि अंगिरा इत्यादियां का जो विचार है।

महर्षि अंगिरा जी से एक समय किसी महापुरुष ने यह कहा हे महाराज! मानव ऋणी कैसे होता है ऋषि का? क्योंकि आप ऋषि हैं आप विद्या के ऋण उऋण होना चाहते हैं, उन्होंने कहा ऋषियों के ऋण से वह मानव अवऋण होता है जो समाधि में प्रवेश

करता है। ऋषि मुनियों ने इस समाधि के द्वारा जो अनुसन्धान किया है, विचारों को दिया है इन विचारों की जो उड़ान उड़ता रहता है। उड़ान उड़ करके समाधिष्ट होता है। लोक लोकान्तरों को दृष्टिपात करके इस माला को अपने कण्ठ में धारण करता है वह ऋषि के ऋण से अवऋण हो सकता है। ऋषि कहता है, अंगिरा ऋषि कहते हैं कि मानव के कण्ठ से शब्द की रचना होती है। रचना जो होती है शब्द की यह कण्ठ से उच्चारण करता चला जाता है। पुनः उच्चारण करता चला जाता है। यह जो शब्द हैं इनकी रचना मानव के कण्ठ से होती है। मानव के इस मस्तिष्क में ध्वनि होती है इस ध्वनि में जो रचना होती है वह रचना जो मानव के बाहरीय विचार है आन्तरिक जगत में जाते हैं वह आन्तरिक जगत से बाहरीय जगत में शब्दों के द्वारा उनकी रचना होकर के रचनित हो रहा हैं यह क्या है? इन शब्दों को जो मानव अपने में धारण करता है, शब्दों के ऊपर जो अनुसन्धान करता है, वह समाधि में प्रवेश करता हुआ नाना लोक लोकान्तरों की मालाओं को नाना आकाश गंगाओं को दृष्टिपात करता है तो जानो कि वह ऋषिओं के ऋण से अवऋण होने जा रहा है।

ऋषि का जो ऋण है वह कितना अनुपम है बेटा! । बहुत पुरातन काल की चर्चाएं। मेरे पुत्र महानन्द जी ने एक समय ऐसा कहा था। आधुनिक जगत का जो प्राणी है वह लोकों की चर्चाएं जानता है परन्तु कहता है कि यह विज्ञान है मैं यह कहा करता हूँ अपने पुत्र की वार्त्ताओं को पान करता हुआ कि यही लोक लोकान्तर नहीं है। योगी समाधि में इस संसार के लोक लोकान्तरों की माला को गणना में लाना चाहता है, वह अनुभव में लाना चाहता है, आकाश गंगा के लोकों की गणना करने के लिए हमें सौ सौ वर्षों की समाधि में प्रवेश करना होगा। जब हम एक ही आकाश गंगा के लोकों को हम गणित कर सकते हैं। हम गणना में ला सकते हैं। हम और आकाश गंगाओं को दृष्टिपात करेंगे तो मुनिवरों! एक ही आकाश गंगा में अंगिरा ऋषि ने कहा है कि मैं लगभग दस खरब पिचानवे अरब, पैंतालीस करोड़ और वाहन लाख, पांच सौ बावन, एक ही आकाश गंगा में मैं सूर्यों की गणना कर चुका हूँ। इतने लोकों की गणना की समाधि के द्वारा समाधि में और भी दृष्टिपात आ रहे थे जो गणना के अन्त में मैं विभोर

हो गया था। तो परिणाम क्या है? हमें उन ऋषियों के ऋण से अवऋण होना है जिन्होंने तुम्हें साधना का मार्ग दिया। विचार विनिमय करने का मार्ग दिया। यह चर्चाएं बहुत समय पूर्व मैंने तुम्हें प्रकट की थीं। आज भी मैं करता चला जा रहा हूँ। क्योंकि संसार का वैज्ञानिक युग में जो जाने वाला प्राणी है मैं ऋषि मुनियों की चर्चाएं तो तुम्हें कल ही प्रकट करूंगा। आज मैं ऋषि ऋण को अर्थात् इस आभा को पूर्ण रूपेण नहीं कर पाऊगा क्योंकि विवेचना चलती रहती है।

मेरे प्यारे! महानन्द जी भी लालायित रहते हैं कि मैं भी दो शब्दों की विवेचना करूं। परन्तु देखो, आज का हमारा विचार, आज के हमारे संकलन करने का जो विषय है वह यह कि प्रत्येक मानव अपने अपने चिन्तन में अपने को दृष्टिपात करता रहे। अपने में इतना आभायित हो जाए कि हम देवताओं के ऋण से अवऋण होना चाहते हैं। राष्ट्रीय समाज और राजा इस प्रजा को कर्त्तव्यवाद में लाना चाहते हैं। तो राजा प्रातः एवं सायंकाल याग करने वाला हो, याज्ञिक बनने वाला हो जो समाज इसको प्यारा लगे और सदाचार आ जाए, जिस सदाचार के लिए महानन्द जी ने मुझे कई काल में प्रकट कराया। हो सकता है कल इससे पूर्व महानन्द जी आधुनिक जगत् के ऊपर अपना विचार विनिमय देना चाहते हों। परन्तु इनका विचार भी प्रारम्भ होगा।

आज का विचार केवल यह हमारा, चिन्तन करने का जो हमारा विषय है वह यह कि हमें ऋणों से अवऋण होना चाहिए। जो मानव ऋणों से अवऋण होने के लिए तत्पर होता है वही इस संसार में सौभाग्यशाली है। मेरे प्यारे! वही मानव है, वही मननशील है। तो ऋणों से अवऋण होने के लिए मैं कल ऋषि ऋण के ऊपर अपने विचार दूंगा। इससे पूर्व मेरे प्यारे! महानन्द जी भी अपने विचार प्रकट करेंगे। आज का विचार केवल यह कि हम ऋणों से अवऋण होना चाहते हैं। प्रभु का चिन्तन करते हुए, प्रभु की बिना सहायता के मानव कोई भी ऋण से अवऋण नहीं हो सकता। इसीलिए हमें अपने को अपने में दृष्टिपात करना होगा। मानव को ऋण की अग्नि जागरूक करनी होगी। संसार रूपी अग्नि जब शान्त हो जाएगी उसके पश्चात् एक महान पवित्रता, समावेश मानव के

हृदय में होती रहेगी।

आज का विचार विनिमय करने का हमारा अभिप्राय यह कि प्रभु का यह जो विचार वेद में निहित रहता है बेटा! यह ज्ञान अनन्त है, केसा अनन्त है? विचार विनिमय करने वाला ऋषि इस विचार में जाता है तो वह भी मुनिवरों! अपने में अपने को दृष्टिपात करके मौन हो जाता है।

यह आज का विचार अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। आज के विचारों का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है बेटा! आज का वाक्। समय मिलेगा शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे कि अतिथियों का जो ऋण है, पुत्रों! का जो ऋण है, यह चर्चाएं बेटा! कल प्रकट करेंगे। अब वेदां का पाठ होगा इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। स्थान : लाक्षागृह, बरनावा समय : दोपहर 3 बजे।

४ 11 03 1979 पुष्प 39 महानन्द जी का प्रवचन व आशीर्वाद

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल। मेरे भद्र समाज! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अपने मार्मिक शब्दों में, अपनी विचारधाराओं में एक संक्षिप्त परिचय दिया। इसका विस्तार तो समय समय पर आता रहेगा। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रार्थना करता रहूँगा। परन्तु आज हम यह उच्चारण करने के लिए आए हैं मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यागों का कुछ वर्णन कर रहे थे। आज मैं यहाँ इसलिए याग के ऊपर अपने विचार देने के लिए आया हूँ कि जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ पारायण यागों का क रम परम्परागतों से रहा है। परम्परागतों से ही, यहाँ यागों का प्रचलन रहा है। आज यह कोई नवीन वाक्य नहीं है। नवीन प्रचलन नहीं है। यह बहुत परम्परागतों से है जैसा मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने निर्णय कराया और कई कालों में वर्णन होता रहा है।

आधुनिक जगत में कुछ ऐसे महानुभाव हैं जो चतुर्वेद पारायण यागों का उनके हृदय में खण्डनीय विचार रहता है और यह विचार बना रहता है कि ऐसे याग महावृत कहलाते हैं। परन्तु मैंने यह कहा है कि बृहद यागों में एक चतुर्थ याग भी माना गया है जैसे

सर्वत्र याग की कल्पना होती रहती है। जैसे त्रेता के काल में अन्तिम में यहाँ पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया, महाराजा जन्मेजय ने सर्प यागों का वर्णन कराया है। वह सर्प याग नहीं सर्वत्र याग कहलाया गया है जो सर्वत्र पृथ्वी के राष्ट्र को निमन्त्रण देकर के याग करता है वह सर्वत्र याग कहलाता है। हमारे यहाँ यागों के क्रम में कुछ रूढ़ियां आई तो उनमें यह कहा गया महाराजा जन्मेजय जब मन्त्रां का उच्चारण कर रहे थे तो आकाश मार्ग से सर्प आने लगे और वह सर्प अग्नि मुखारबिन्द में, यज्ञकुण्ड में, यज्ञ की वेदी पर विद्यमान होकर के वह भस्म होने लगे। ऐसा मुझे स्मरण है। आधुनिक काल का जगत यह कहता है कि उनके पिता परीक्षित को जब सर्प ने प्रहार कर दिया तो पुत्र ने इस प्रकार का याग किया। परन्तु हे भोले प्राणियों! प्रायः ऐसा नहीं है कि सर्वत्र सर्प आने लगे। वह याग नहीं है यह हिंसा कहलाती है। हिंसा का और याग का कोई सम्बन्ध नहीं है। याग हिंसा नहीं कहता। याग तो यह कहता है, हे मानव! तू श्रेष्ठ बन। तू अपने मार्ग को ऊचा बना।

मैंने पूज्यपाद गुरुदेव से बहुत पुरातन काल में यह कहा था कि यागों की परम्परा समाप्त होने लगी है। यहाँ यागों का चलन समाप्त हो गया। रूढ़ि वादी और वाममार्ग यह उल्टे मार्ग से गति करने वाले हैं उन्होंने ऐसी प्रथा बनायी उन्होंने ऐसे अपने विचार बनाए। परन्तु विद्याएं हैं। सर्प विद्या भी है। सर्प वाहनों से आ सकते हैं परन्तु याग का कोई सम्बन्ध नहीं है। हम सर्पों की पूजा करने वाले बनें। सर्पों की पूजा केवल इतनी है कि हम सर्पों को नष्ट न करें। क्योंकि सर्प भी बहुत सी योनियों को, बहुत से प्राणियों को और वायु मण्डल से विष को निगलता है जिससे प्राणी मात्र की रक्षा होती है। इसी प्रकार उसकी पूजा होनी चाहिए। पूजा का अभिप्राय यह है कि हम सर्प को नष्ट न करें। यदि सर्प नष्ट हो गए, राष्ट्र से सर्प चला गया तो सर्प के चले जाने से ही यह सर्वत्र प्राणी मात्र नष्ट होन लगेगा।

विचार विनिमय यह है कि पूजा के अर्थ को जानने का अभिप्राय याग है। जो शुभ कर्म में लगा हुआ है ओजस्वी वार्त्ताओं में अर्पित हो रहा है वह याग कर रहा है। परिणाम क्या? मैं यह आज उच्चारण करने के लिए अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर आया हूँ।

महाभारत के काल से पूर्व यागों की परम्परा सृष्टि के प्रारम्भ से चली आ रही है। यदि ब्रह्मा ने अपने चारों शिष्यों को याग कराने की प्रेरणा दी। इससे पूर्व भी वैदिक साहित्य में यज्ञ के नाना प्रकार के वर्णन आये। तो यागों की प्रतिभा से ही कर्म काण्ड को विचारा। जैसे सृष्टि का सृजन मेरे प्यारे! प्रभु ने किया उसी प्रकार मानव को भी याग की रचना करनी चाहिए।

यागों का चलन, यागों की प्रतिभा मानवों के हृदय में रही है और ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में रही है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में यहाँ अज्ञान आया और अज्ञान के काल में वाममार्ग समाज आया तो यहाँ यज्ञों का खण्डन होने लगा। मण्डलीय पुरुष कम रह गए परन्तु सूक्ष्म रह गए और खण्डन करने वाले विशेष बन गए। वह बलवती हो गए उसका मूल कारण क्या था कि ऐसा खण्डन बना अज्ञान आ गया और महाभारत काल के पश्चात् ज्ञान और विज्ञान समाप्त हो गया। कर्म काण्डी पुरुष नहीं रहे। इसी प्रकार यहाँ और भी नाना मत मान्तर आ गए। नाना रूढ़ियां आ गईं।

उन मत मतान्तरों से इन रूढ़ियों ने और भी खण्डन किया। परन्तु मण्डन नहीं हुआ। इस काल से पूर्व कुछ और भी आचार्य हुए जिन्हांने इन कर्मों का खण्डन किया। अहा! यज्ञों का मण्डन किया और खण्डनीय विचारों को त्याग दिया। परिणाम यह हुआ कि यज्ञों का चलन हो गया और यागों की सुगन्धि वायुमण्डल में भरने लगी। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैं आपको उच्चारण करा रहा हूँ कि भोला भाला शरीर है उसमें रमण करने वाली पूज्य आत्मा अपना कार्य संस्कारों को लेकर के आई है, परन्तु यह संसार ऐसा है कि संसार विष देता है, ऋषि अपना कार्य करके चले जाते हैं। यह संसार तो विष देने के लिए है। यह अमृत ग्रहण करने के लिए नहीं है। इसलिए मैं प्रभु से यह याचना करता रहता हूँ कि मानव को कर्मकाण्ड की पद्धतियों में और ज्ञान की पद्धतियों में भ्रमणता होनी ही चाहिए। आज मैं देखो, भोलाकृत भानु शरीर को मृत्यु के आँगन में दृष्टिपात नहीं करना चाहता हूँ क्योंकि वह एक आभा है। वह एक ओज है, वह एक

तेज कहलाता है। जो प्रभु ने हमें प्रदान किया है।
अहा! अब मैं विचार विशेष नहीं दूंगा। विचार यह देना चाहता हूँ कि वैज्ञानिक इसी याग के संसर्ग में होकर के विज्ञान शाला का निर्माण करते रहे हैं। इसी यज्ञशाला में विद्यमान होकर के चन्द्रमा की यात्रा करते रहे हैं। इसी यज्ञशाला में विद्यमान होकर के महात्मा ध्रुव, ध्रुव मण्डल की यात्रा करता रहा है। आज यह जितना विशाल मण्डल है यह इतना विज्ञान में पारायण है जिसकी गणना नहीं की जा सकती।
आज मैं अपने यज्ञमानों को, ब्रह्म समाज को यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि तुम्हारी आयु दीर्घ और दीर्घ आयु में तुम्हारा यह कर्म सदैव बना रहे। इस कर्म के ऊपर तुम्हारी प्रतिभा है। मैं सदैव प्रभु से याचना करता रहता हूँ हे प्रभु! जो धर्म को ऊर्ध्वा गति देने वाले हैं जो धर्म को कहने वाले है। जो विज्ञान की वार्त्ता प्रकट करते हैं और जो वेद का मन्डन करते हैं और वेद के मन्त्रों का उच्चारण करते हैं उनका आयु तू दीर्घ बना। हे प्रभु! तू आयु को दीर्घ बना जिससे वह इस संसार को जागरूक बना सकें। अन्धकार में यह समाज नहीं रहना चाहिए। यह प्रकाश में रहना चाहिए। यह प्रकाशमयी जो जगत है प्रकाशमयी जो आभा है, प्रकाशमयी जो समाज है, प्रकाशमयी जो ओजस्तत्व है, प्रकाशमयी जो माता है वह सदैव ऊचा बनने के लिए, प्रभु के राष्ट्र में विद्यमान होकर के रमण करते रहें।
विचार क्या है? मैं पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चारण करने के लिए कहूँ। यह तो दृष्टिपात करते रहे हैं यहाँ राजा अश्वमेध याग करते थे क्योंकि राष्ट्र ऊचा बने। अजयमेध याग होता जिससे वैज्ञानिक बनें। यहाँ जो मेध याग होता जिससे पशुओं की रक्षा हो। यहाँ नर मेध याग होता जिससे प्राणीमात्र की रक्षा हो। यहाँ प्रत्येक मानव रक्षा के लिए, कर्त्तव्य के लिए परम्परागतों से प्रयास करता रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से सदैव प्रार्थना करता रहता हूँ कि समाज ऊचा बनना चाहिए। इस समाज में पवित्रता रहनी चाहिए। यह समाज सदैव योगाम ब्रह्म लोक इसमें रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। यहाँ नाना प्रकार की रूढ़ियां हैं और वह रूढ़ि राष्ट्र के लिए, समाज के लिए और वेद के लिए

घातक हो सकती हैं।

मैं आज विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए कि हे यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ हो। तेरा सौभाग्य सदैव अखण्ड बना रहे और तेरे सौभाग्य की ज्योति सदैव जागरूक रहे। यज्ञमान! आज मैं कामना करता हूँ, मैं यह उच्चारण करता रहता हूँ पुत्राण घ्रत देव! मानो यज्ञमानों के पुत्र नहीं हैं तो पुत्र प्रदान कर। तू उसे सम्पदा दे जिसे वह सदुपयोग में लाने वाला बने, धर्म में उसको अर्पित करने वाला हो। ऐसे प्राणियों को हे प्रभु! तू द्रव्य न प्रदान कर जो धर्म कर जो धर्म के कार्य में न आ सके। वह द्रव्य हो जो धर्म में परणित होने वाला हो। जो धर्म से गुंथा हुआ द्रव्य होता है वह मानव समाज को ऊचा बना देता है और ऊर्ध्वा में ले जाता है। राष्ट्र को पवित्र बना देता है। आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैं केवल इतना ही वाक्य उच्चारण करने आया हूँ कि यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ हो। तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तू अपने जीवन में महान बनकर के सामाजिक और मानवीयता में उन्नति करता हुआ इस समाज में ऊचा बन।

आज मैंने अपने हृदय की वेदा यह प्रकट की। मैं अपने पूज्यपाद से सदैव यह प्रार्थना करता रहता हूँ, हे प्रभु! यह राष्ट्र में रूढ़ि कैसे समाप्त हो? ओइम की पताका के नीचे कैसे आए यह समाज? यह कैसे ऊचा बने? हे प्रभु! मैं सदैव आप ही के ऊपर अर्पित कर रहा हूँ। मेरी वेदना तो केवल सदैव बनी रहती है वैज्ञानिकों के लिए मानव के लिए। अब मैं पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पा रहा हूँ कि प्रत्येक मानव ऊचा बने। यज्ञमान का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। उसके गृह में महत्ता ओत प्रोत हो। अब मैं पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊगा।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने विचारों को व्यक्त किया। इनके विचारों में एक वेदना बनी रहती है और वह वेदना नाना प्रकार के रूपों में निहित रहती है। परन्तु आज मेरे पुत्र ने सर्वत्र यागों की और अज्ञान की चर्चाएं कीं। अज्ञान समाज में कैसे आता है? अज्ञान उस काल में आता है जब कि उस राष्ट्र से विज्ञान चला जाता है और ज्ञान की उपेक्षा हो जाती है। ज्ञान नहीं रहता, अज्ञान आ जाता है।

अज्ञान किसे कहते हैं? जिसमें चिन्तन न हो। जो चिन्तन से विहीन हो जाता है। जैसा मेरे पुत्र महानन्द जी ने कहा है कि यज्ञमानों का सौभाग्य अखण्ड बना रहे।

आज मैं भी यज्ञमान को अपने मुखारबिन्द से अपनी वेदना प्रकट कर रहा हूँ कि उनका जीवन सदैव महान बना रहे। उनके जीवन में यागों की आभा बनी रहे। उनका जीवन अर्थात् प्रत्येक अंग यागों में परणित रहे। आध्यात्मिकता उसे कहते हैं जो अपने आत्मा को ऊचा बनाती है। जिससे आत्मा पवित्र बनता है और शारीरिक उन्नति होती है। यह समाज, यह राष्ट्र, मानवता, यह उज्ज्वलता यह प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में रहनी चाहिए। हे यज्ञमान! तू नाना प्रकार के याग करता हुआ इस संसार से पार होने का प्रयास कर पार होना ही तेरी उज्ज्वलता है। तेरा स्वर्णमयी ज्ञान बनना है।

आज का विचार विनिमय क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और प्रभु का गुणगान गाते हुए जीवन बिताएं। आज मैं अपने पुत्र की वार्त्ता को समर्थन दे रहा हूँ कि यह समाज, यह मानवता यज्ञमयी बनने वाली हो। यज्ञ ही इसका कर्म है। जितना भी शुभ कर्म है, आत्मीय वेदना है उसके अनुरूप कार्य करने का नाम याग है। यह याग कहलाता है। आज का अभिप्राय क्या है? हम परमपिता की आराधना करते हैं कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन की धाराएं ऊर्ध्व बनें। कल मेरे पुत्र यह उच्चारण कर रहे थे कि जहाँ श्मशान भूमि बन सकती है वहाँ याग भी हो सकते हैं। ऐसे याग सदैव ऊचे बने रहें। विचारधारा पवित्र बनी रहे, राष्ट्र पवित्र बने जिससे यह याग जैसे कर्मों की रक्षा कर सके यह आज का वाक् समाप्त।

हे यज्ञमान! तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे जिससे तुम शुभकर्म करते रहो और शुभकर्मों में सदैव एक महत्ता बनी रहे। यह आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है कल मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने जो अपना विचार दिया वह मर्म का वाक्य था। अब वेदों का पठन पाठन होगा। बरनावा

५ 18 04 1979 पुष्प 37 भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञान का मिलान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद

मन्त्रां का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सदैव प्रतिभाशाली हैं। उस देव की प्रतिभा इस मनोहर ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ओत प्रोत है। वह इस ब्रह्माण्ड का रचयिता है। जड़ जगत् और चैतन्य जगत् दोनों में वह दृष्टिपात आ रहा है।

इस संसार में जितना भी ज्ञान और विज्ञान हमें दृष्टिपात आ रहा है, वह सब प्रभु का ही है। यहाँ ज्ञान और विज्ञान उस महान् मेरे प्यारे! प्रभु की सामर्थ्य स है, अथवा उसी को प्रतिभा है। प्रत्येक मानव परम्परा से ही अनुसन्धान करता चला आया है वे वैज्ञानिक बनने के लि और भौतिकवाद में रमण करने के लिए। विज्ञान की दो प्रकार की धारायें हमारे यहाँ परम्परा से ही मानी गई हैं। एक भौतिक विज्ञान के ऊपर धारा दृष्टिपात आती रहती है और द्वितीय जो धारा है वह आध्यात्मिक विज्ञान है। दोनों प्रकार का विज्ञान हमारे यहाँ परम्परा से ही माना है। क्योंकि हर भौतिक विज्ञानवेत्ता इस ब्रह्माण्ड और पिण्ड को दोनों को ओत प्रोतमय दृष्टिपात कर रहा है। और भौतिक विज्ञानवेत्ता इन पञ्च महाभूतों के ऊपर अनुसन्धान करता हुआ, प्रकृति की गतियों का दृष्टिपात करता हुआ, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की माला बनाना चाहता है। यह आज नहीं बेटा! यह परम्परा से ही अनुसन्धान ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है।

आज हम तुम्हें ज्ञान और विज्ञान की कुछ वार्त्ताएं प्रगट कराने के लिए आए हैं। क्योंकि आज का हमारा वेदमन्त्र यही कह रहा है कि हमें विज्ञान के ऊपर अनुसन्धान करना चाहिए। क्योंकि विज्ञान मानव के मस्तिष्कों में प्रायः नृत्य करता रहा है। आज नहीं, वर्तमान में नहीं, परम्परा से ही ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में, मार्कण्डेय आदि ऋषि जैसे के मस्तिष्कों में प्रायः नृतय करता रहा है।

बेटा! मुझे एक वार्त्ता स्मरण आती रहती हैं एक समय महाराजा शिव और माता पार्वती

अपने कैलाश आसन पर विद्यमान थे। दोनों का जो विचार था वह एक सूत्र में दोनों क इस योग्य था। क्योंकि वे सदैव ज्ञान और विज्ञान दोनों के ऊपर अनुसन्धान करते रहते थे। एक समय माता पार्वती अपनी उत्पन्न दिव्य ज्योति से, यन्त्रों की सहायता से अन्तरिक्ष को दृष्टिपात करने लगी। बेटा! प्रातःकाल का समय था। प्रातःकाल में जब वह अपने लोक लोकान्तां की माला अपने मन रूपी सूत्र में पिरो रही थीं, तो उन्हें अन्तरिक्ष में एक यत्र दृष्टिपात आने लगा। मेरे पुत्रो! जब वह यन्त्र दृष्टिपात आने लगा, तब वह अपने देव से बोली, हे प्रभु! यह यन्त्र मुझे दृष्टिपात आ रहा है। यह यन्त्र क्या है? तो महाराजा शिव ने उसव यन्त्र को दृष्टिपात किया और उन्होंने कहा, देवी! यह एक यन्त्र है, परन्तु यह चन्द्रमा के और भूमण्डल दोनों के आवान्तर अग्रवृत केतु गतियों में गति कर रहा है। मेरे पुत्रो! उन्होंने कहा, तो महाराज! यन्त्र कैसे दृष्टिपात करना चाहिए? तो बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है माता पार्वती और महाराजा शिव दोनों अपने यन्त्र में विराजमान हो करके अन्तरिक्ष की यात्रा के लिए गति करने लगे। मेरे पुत्रो! वे गति करते रहे। जहाँ पृथ्वी के आकर्षण की परिधि का समापन होता है और चन्द्रमा के आकर्षण की परिधि का प्रारम्भ दोनों की एक अवान्तर गति में बेटा! जब वे पहुंचे तो एक यन्त्र के समीप अपने यन्त्र को स्थिर करते हुए पहुंचे। वह महर्षि मार्कण्डेय ऋषि यन्त्र विद्यमान था। वहाँ माता पार्वती और शिव दोनों को दृष्टिपात करके महर्षि ने उन दोनों के शरीर से स्पर्श किया और स्पर्श करके उनसे आशीर्वाद लिया।

उन्होंने कहा कि तुम्हें कितना समय हो गया है? इस प्रकार तुम्हारा यन्त्र, यह जो यान है, यह कब से यहाँ विद्यमान है। उन्होंने कहा कि हमारा जो यह यान है, इसको 12 वर्ष हो गए हैं, और बारह वर्ष से यह यान यहीं विद्यमान है। हम कुछ अनुसन्धान कर रहे हैं। मेरे पुत्रो! महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज और उनके शिष्य श्वेतकेतु और ब्रुणावर्णी कवि भी ये तीन महर्षि वहाँ विद्यमान थे जो कुछ अनुसन्धान कर रहे थे। उनके जीवन में सदैव अग्नि व्याप्त रहती थी। क्योंकि अग्नि ही तो मानव के मस्तिष्कों को उठा देती है। अब वह कुछ अग्नि के द्वारा मानव के ज्ञान रूपी जो तंतु होते हैं, वे प्रकाश में आ जाते हैं, गतियां करने लगते हैं अथवा नृत्य करने लगते हैं। अब वह जो व्रतमयी जीवन

है, वही तो ज्ञान और विज्ञान में मानव को ले जाता है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए कि हमारे जीवन का जो एकी भूत गुण है, वह प्रभु की प्रतिभा को जानना है। परमाणुवाद जितना भी यह वायुमण्डल में अग्नि की प्रतिभा अक्षत होकर के जो गति कर रहा है। और वह नृत्य कर रहा है, उस नृत्यमय संसार को जानना, यह मानव का कर्त्तव्य कहलाया जाता है। यह मानव की मानवता कहलाई जाती है।

जब मार्कण्डेय ऋषि महाराज से उनका कुछ विचार विनिमय हुआ। उन्होंने कहा तुम क्या अनुसन्धान कर रहे हो? महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज ने कहा कि हम अपना अनुसन्धान कर रहे हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि यह जो दोनों की आकर्षण शक्ति है इससे ऊर्ध्वागति को जाना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि हमने इस यान को चन्द्रमा की परिक्रमा करने के लिए एक यान, एक यन्त्र को नियुक्त किया है वह अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। वह गति करता हुआ कुछ एक क्षणों में समीप आता और कुछ एक क्षणों में चन्द्रमा की परिक्रमा करता था। इस यन्त्र आरान्तर के द्वारा ही सुन्दर सुन्दर इसकी भी परिक्रमा करता रहा और करता रहता था। उन्होंने कहा कि प्रभु! हम यह अपना एक आसन का निर्माण कर रहे हैं। और यहाँ से लोक लोकान्तरों की यात्रा करने की हमारी प्रबल इच्छा बनी हुई है। वह पञ्चमहाभूतों को जानता हुआ ऋषि नाना मण्डलां में गति करना उनका एक नैतिक गुण बन गया था।

विचार विनिमय यह है कि मेरे पुत्रो! आज हम जब यह विचारने लगते हैं कि वास्तव में मार्कण्डेय ऋषि महाराज जो कि भौतिक विज्ञान वेत्ता थे। परन्तु ऋषिराज, भौतिक विज्ञान वेत्ता की आध्यात्मिक विज्ञान में भी इतनी ही गति कहलाती थी। आध्यात्मिक विज्ञान भी उनका इतना उज्ज्वल बन गया था। क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञान वेत्ता यह जानना चाहता है कि यह जो संसार है यह तो मृत्यु के मुख में जा रहा है। सृष्टि का जब सृजन होता है तो सृजन के समय, सृजन से पूर्व ही इस संसार की मृत्यु अपने मुखारबिन्द में परणित कर लेती है। सृष्टि को मृत्यु इस संसार में याज्ञिक रूप नहीं लेने देती थी। ऋषियों ने विचारा, आध्यात्मिक विज्ञान वेत्ताओं ने यह अनुसन्धान किया कि

हमें मृत्यु को विजय करना है। क्योंकि मृत्यु को विजय करना ही आध्यात्मिक विज्ञान है।

मेरे प्यारे! और भौतिकवाद को जानना यह प्रकृतिवाद में रमण करना है। और नाना प्रकार के परमाणुओं को जानता हुआ विज्ञानवेत्ता लोक लोकान्तरों को अपनी माला बना लेता है। मुझे स्मरण आता रहता है आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता अपने में इतने महान् उज्ज्वलता को प्राप्त हो जाते हैं कि पृथ्वी का विचार उनके समीप नहीं रहता। वह तो केवल उस विज्ञान में चले जाते हैं कि इन परमाणुओं को हम कैसे मिलान करें। ? क्योंकि शब्द अन्तरिक्ष में जाता है। ये शब्दों की रचना कैसे हो रही है? क्योंकि शब्द आ रहा है रचना हो करके, चित्र के साथ में अन्तरिक्ष में गति कर जाता है। केवल शब्द। ब्रह्म लोक में शब्दों की रचना होती रहती है। मेरा देव! कितना प्रतिभाशाली है? कितना वैज्ञानिक है।

मेरे पुत्रो! वैशम्पायन ऋषि की वार्त्ता विचार विनिमय में आने लगती है। यहाँ उद्दालक गोत्र के ऋषियों की चर्चायें स्मरण आने लगती हैं। तो बेटा! ऋषि ये कहते हैं कि मानव के कण्ठ से शब्दों की रचना हुई और रचना हो करके अन्तरिक्ष में गति कर गया शब्द। मानो शब्द ज्यों का त्यों है और वह चित्र के समीप ज्यों का त्यों है। चित्र के समीप अन्तरिक्ष में गति कर गया। परन्तु शब्द ज्यों का त्यों बना रहा। तो शब्दां की रचना हो रही है। वह अन्तरिक्ष में पुनः से यान से विद्यमान हो करके वह अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। जब वे ऋषिवर याग करते थे, यागों के द्वारा नाना प्रकार के साकल्य अग्नि के मुख में प्रदान करने के पश्चात् और फिर से लोक ध्वनि से जिस शब्द को विचार पूर्वक याग करता है। यज्ञम् ब्रह्मलोकाः यह याज्ञिक स्वरूप वही शब्दों की रचना अन्तरिक्ष में गति करने लगी। वह जो अन्तरिक्ष में गति हो रही है, वह शब्दों के साथ में हो रही है। शब्दों के साथ में चित्रों की हो रही है। चित्र वहीं से परमाणुओं को एकत्रित करने वाला याज्ञिक अपनी यज्ञशाला में सीमित नहीं रहता है वह विज्ञानशाला का निर्माण करता है। यज्ञशाला का निर्माण किया और यज्ञशाला का निर्माण करके बेटा! उन परमाणुओं को एकत्रित करता, उन परमाणुओं से कुछ यन्त्रों का निर्माण करता रहा है।

जब वह यन्त्रों का निर्माण करता रहा तो ऋषियों ने यह विचारा कि जैसे यन्त्र में हमारी यज्ञशाला में आहुति देना, याग करना, ब्रह्मयाग है, वाजपेय याग करना। क्योंकि जब शब्दों के साथ में चित्र आते रहते हैं तो इन चित्रों को हम दृष्टिपात करना चाहते हैं। उन्होंने सर्वप्रथम अपने चित्रों को दृष्टिपात किया। अपने चित्रों को दृष्टिपात करके उन्होंने विचारा कि यह जो अन्तरिक्ष है, यह तो शब्दों का भण्डार है। इनमें से चित्रों को जो हमारे यहाँ विद्यमान हैं इनको भी हम यन्त्रों के द्वारा लाना चाहते हैं।

मेरे प्यारे! उद्दालक गोत्र के ऋषि शमभानुक ऋषि महाराज अपनी विज्ञानशाला में शिवभानुकैतु उनकी पत्नी शिवलता वे दोनों अपने में अनुसन्धान कर रहे थे। अनुसन्धान करते हुए उन्होंने अपने चित्रों को दृष्टिपात किया और अपने पितरों के जिनके चित्र अन्तरिक्ष में गति कर रहे थे वे बेटा! उनको यन्त्र में दृष्टिपात आने लगे। जब वे यन्त्रों में दृष्टिपात आने लगे तो बेटा! वेद के ऋषि ने बहुत अनुसन्धान किया। उन्होंने केवल आध्यात्मिक अनुसन्धान ही नहीं, भौतिक विज्ञानवेत्ता बन करके आध्यात्मिक विज्ञान का आश्रय लेकर के उनको अपने दशवें महापिता के दर्शन होने लगे। उन यन्त्रों में जब दशवें महापिता के दर्शन होने लगे, तो एक समय बेटा! मध्य रात्रि का समय था। मध्यरात्रि के समय बेटा! उनको एक मन्त्र स्मरण आया। वह वेदमन्त्र कह रहा था, पितरम होतारम् ब्रह्म लोकाम् जीव्याहम् गतिः विष्टाम् दिव्यम् चित्राः उन्हें ये वेदमन्त्र स्मरण आया कि देवताओं के चित्र इस मानव को दृष्टिपात आते हैं। उन्होंने यन्त्रों का निर्माण किया और इन यन्त्रों में यहाँ देवत्तम् ब्रह्मलोकाः उनको और भी अपने महापिताओं के दर्शन होने लगे।

वेद का आचार्य अनुसन्धान करता हुआ, मुझे स्मरण है, जब यह तन्द्रूत के पुत्र ऋषि महाराज विभाण्डक ने जा करके यह कहा कि महाराज! यह क्या कर रहे हो? तब उन्हें बेटा! उन मन्त्रों में, यज्ञशाला के अप्रेत चित्रों में महापिता के दर्शन होने लगे तो मुनिवरों! देखो, अब अनुसन्धान किया गया तो पूर्व से क्या उद्दालक गोत्र में से ऋषि जितने भी हुए हैं वे आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता, भौतिक विज्ञानवेत्ता दोनों प्रकार की गतियों में वे

पारायण रहे हैं। उन्हें 100वें महापिता के दर्शन होने लगे थे।

विचार विनिमय क्या कि ये जो शब्द ध्वनि हो रही है। इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने कहा कि मानव तो सत्य उच्चारण करने वाला बने। क्योंकि जितना भी सत्यवादी पुरुष होता है वह वाणी के ऊपर संयमी होता है। गृह, आसन और अन्तरिक्ष पवित्र होते रहते हैं। इसीलिए संसार में प्रत्येक मानव यह चाहता है कि मेरे में पवित्रता आनी चाहिए। और पवित्रता कैसे आएगी? वाणी को, जो बेटा! शब्दों की रचना कर रही है, वह शब्दों की रचना तन्त्र के द्वारा हो रही है। वह प्राण के आश्रित पर नाना अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह अन्तरिक्ष में गति कर जाते हैं। उनके चित्र बन जाते हैं कुछ मुनिवरों! कुछ आभा में समापन हो जाते हैं। परिणाम मेरे पुत्रो! देखो, उद्दालक गोत्र के ऋषियों में यह परंपरा रही है। कि वे आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान द्वारा शब्दों को ग्रहण करते रहे हैं।

यही बात मार्कण्डेय ऋषि महाराज शिवजी से उच्चारण कर रहे थे। क्योंकि महाराज! मैं यह जानना चाह रहा हूँ कि वह जो चन्द्रमा के अन्तर्गत जो शब्द ध्वनि हो रही है। वह मैं यन्त्रों के द्वारा जानना चाहता हूँ। मेरे पुत्रो! ये भौतिक विज्ञान हमारे यहाँ परम्परा से ही मानवीय मस्तिष्कों में, एक आभा में परिणित होता रहा है। परन्तु देखो, जहाँ मुझे यह स्मरण आता है कि आध्यात्मिक विज्ञान की। चर्चा। मेरे प्यारे! देखो, महाराज शिव ने महाराजा मार्कण्डेय ऋषि से यह कहा था कि महाराज! हे मार्कण्डेय! तुम आध्यात्मिकवाद भी जानते हो? उन्होंने कहा, प्रभु! मैंने आध्यात्मिकवाद को अपना आश्रय बनाया है। यदि मैं आध्यात्म्किवाद को अपना आश्रय नहीं बनाऊँगा तो इस भौतिकवाद में प्रकृतिवाद के तंतुओं को जानने में मेरे में अभिमान की मात्रा उत्पन्न हो सकती है। और वह जो अभिमान है वह मेरी मृत्यु का कारण बनता चला जाएगा। प्रभु। इसीलिए मैं आध्यात्मिक विज्ञान जो हमारे समीप आता है उससे मुझे ज्ञान का प्रकाश होता रहता है। यह जो ज्ञान का प्रकाश है और अनन्त भण्डार में चला जाता है विचार इसका मुझे अभिमान उत्पन्न नहीं होता। और जब अभिमान नहीं होता, उस अभिमान के न होने के कारण ही मैं आध्यात्मिक विज्ञान का आश्रय लेकर के और भौतिकवाद में मेरी पारायणता

होने पर भी सदैव उत्सुक सा बना रहता हूँ और इच्छा बनी रहती है कि मैं नाना संसार को जानने की मेरी उत्सुकता होनी चाहिए।
मेरे प्यारे! विचार क्या कह रहा है? विचार यह कि मानव के मस्तिष्कों में आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद ये परम्परा से ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करती रही है। यह नृत्यता है। क्योंकि महर्षियों ने मार्कण्डेय जैसे महामुनि वे सदैव अन्तरिक्ष यात्रा करते रहते थे। प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है कि वे इन तारा मण्डलों की माला बनाता रहे। तारा मण्डलों की माला एक सूत्र में पिरोई हुई है। मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं कि महाराज! जब मैं यह जानता हूँ कि यह जो नाना प्रकार का मण्डलवाद है, यह एक किसी सूत्र में पिरोया हुआ है और वह जो सूत्र है वह क्या है? मैं इसको जानने में लगा हुआ हूँ। मैं उस सूत्र को जानना चाहता हूँ जो लोक अपनी अपनी आभा में गति कर रहे हैं। वह गति कैसी विचित्र गति है। गतियों में भी गति हमें दृष्टिपात आती है। वह जो सूत्र है, वे चेतना रूपी जो सूत्र है उसको हम जानना चाहते हैं। उसको हम प्राण रूप से वर्णन करते हैं, या उसी चेतना को हम रूप रूप में दृष्टिपात करते हैं। अब जैसे मानव के शरीर में मानव के प्रत्येक परमाणु, उनका यह जो मानवीय शरीर है। वह एक सूत्र में पिरोया हुआ एक एक परमाणु है। एक एक गति कर रहा है, एक एक ब्रह्माण्ड की आभा और वह एक सूत्र में पिरोया हुआ है। तो प्रभु! इसीलिए यह मानव और ब्रह्माण्ड की दोनों की एक ही कल्पना मानी जाती है। जैसे यह पिण्ड है ऐसे ही यह प्रभु का बनाया हुआ, रचा हुआ जो अनुपम जगत् है इस जगत् में जो गतियां हो रही हैं। वे ही गति हमारे शरीर में नृत्य कर रही हैं। और वह जो नृत्यता हो रही है उसी का नाम हमारे यहाँ एक गतिमान कहा जाता है। गतिशील होने वाला यह ब्रह्माण्ड है जैसे आत्मा के कारण ये परमाणुवाद एक सूत्र में पिरोया हुआ है। इसी प्रकार ये जो ब्रह्माण्ड है, लोक लोकान्तर हैं, ये भी एक सूत्र में पिरोएं हुए हैं।
मेरे प्यारे! हमें इस सत्य को जानने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। आओ बेटा! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हमें प्रभु की महत्ता पर विचार विनिमय करना चाहिए। बेटा! भौतिक विज्ञान एक विशाल

विज्ञान कहलाया जाता है। मैं इससे पूर्व शब्दों में तुम्हें आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान की विवेचना करता रहा हूँ, और करता रहूँगा। यह विवेचना कैसे होगी आगे चल करके? भौतिक विज्ञान वेत्ता कहाँ तक सीमित कहाँ जा करके सीमाबद्ध हो जाता है? और आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता कहीं सीमाबद्ध नहीं होता। क्योंकि वह आध्यात्मिक वेत्ता जितना भी विज्ञान में, आध्यात्मिकवाद में चला जाता है, उतना वह मौन हो जाता है। विचारने लगता है। बेटा! ये चर्चाएं तो तुम्हें करता रहूँगा। आज तो मैं केवल तुम्हें इन विचारों की भूमिका बनाने के लिए आया हूँ। और वह भूमिका क्या है? बेटा! शांडिल्य गोत्रीय ऋषियों की चर्चाएं होती रहीं। और मुनिवरों! देखो, महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज की चर्चाएं होती रहीं। उनका विचार केवल क्या रहता है। उनके मत में? प्रभु का गुण गान गाते हुए, ज्ञान की महिमा का गुण गान गाते हुए, हम प्रभु की प्रतिभा को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है बेटा! आज का वाक्। आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, ज्ञान की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं जो संसार हमें दृष्टिपात आ रहा है।

आध्यात्मिक विज्ञान वेत्ता और भौतिक विज्ञान वेत्ता का दोनों का मंतव्य एक ही रहता है। इन दोनों विचारों की बेटा! मैं कड़ी, एक सूत्र में लाने का प्रयास इससे पूर्व शब्दों के द्वारा कर सके गे। आज का विचार विनिमय यह कि हम अपने इस प्रतिभाशाली देव की सदैव आराधना करते रहें। यह हमारा देव है। इसने मानव शरीर रूपी इस पिण्ड की रचना की है। इसने ब्रह्माण्ड को रचा है। जो रचयिता है रचना कर रहा है। मेरे पुत्रो! देखो, रचनाकार के ऊपर हमें अनुसन्धान करना हमारा जीवन, इसी से हमारे जीवन का सम्बन्ध रहना चाहिए। यह है बेटा! आज का वाक्। अब वेदों का पठन पाठन होगा। इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

मेरे प्यारे! एक वाक्य रह गया अथिताम ब्रह्म वाक्याम्। वक्त में शिवम देवम। मेरे प्यारे! देखो, महाराजा शिव, मार्कण्डेय ऋषि महाराज से वार्त्ता प्रगट करके माता पार्वती और शिव दोनों पुनः अपने यान में विद्यमान हो करके बेटा! कैलाश पर आ गए अपने आसन

पर आ गए। मेरे पुत्रो! देखों वे भी अनुसन्धान करते रहते थे। क्योंकि मानव का अनुसन्धान एक नैतिक गुण है। क्योंकि मस्तिष्क में नाना प्रकार की उपज होती रहती है। और उन उपजों को जानना कर्त्तव्य ह। ै और जो हमारी सांसारिक उपज है वहीं तो मस्तिष्क को मलिन बना देती है। क्योंकि ज्ञान और विज्ञान में कदापि वृद्धपन नहीं होता। ज्ञान विज्ञान सदैव नवीन बन रहते हैं। सदैव आभा में परणित रहते हैं। यह है बेटा! । आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे। अब वेदों का पठन पाठन होगा। आर्य समाज, शक्तिनगर, अमृतसर

६ 19 04 1979 पुष्प 37 संध्या अर्थात सन्धि

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर देव की महिमा का गुण गान गाया जाता है, जिसका प्रत्येक परमाणु उसकी प्रतिभा अथवा उसकी महिमा का गाना गा रहा है। यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाता ही चला जा रहा है। मेरे प्यारे! यहाँ परम्परा से ही वेद के एक एक मन्त्र के ऊपर अनुसन्धान होता रहा है। वर्तमान ही नहीं, परम्परा से ही विचार विनिमय करने वाले ऋषि मुनि अपनी अपनी स्थलियों पर प्रायः गुणगान गाते रहे हैं, और उनका चिन्तन मनन करते रहे हैं।

हमारे यहाँ सबसे प्रथम आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं ने अपने मानवत्व को ऊँचा बनाने के लिए यौगिकता का आश्रय लिया है। क्योंकि प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि मेरा अन्तरात्मा ऊर्ध्व गति वाला बने। क्योंकि जिससे जिस वस्तु का विच्छेद होता है उससे उसके मिलन की आकांक्षा बनी हरती है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव यह चाहता रहता है। कि मैं योगी बनूं और योगी बनने की उसकी आकांक्षा इसलिए बनी रहती है कि उससे इसका विच्छेद हो गया है। और योग कहते किसको हैं? आचार्यों ने तो याग की भिन्न भिन्न प्रकार की अपनी विचारधाराएं और नाना मान्यताएं प्रायः परम्परा से मानी हैं। परन्तु आचार्यों ने ऊर्ध्वागति में जाने के लिए बेटा! अपनी

प्रवृत्ति को किसी सूत्र में पिरोना है। क्योंकि कोई भी मानव जब साधना में प्रवेश करता है, तो अपनी प्रवृत्तियों को वह किसी सूत्र में पिरोने के लिए तत्पर होता है। जब तक उस मानव का एक सूत्र नहीं होगा तब तक वह साधना में भी ऊर्ध्वा गति को प्राप्त नहीं होता।

मुझे बेटा! नाना ऋषियों का जीवन चरित्र अथवा उसकी साधना स्मरण आती रहती है। उन्होंने अपनी साधना की पवित्र शैली में यही कहा है कि हमारा जो मन करने की जो धारणा है, वह किसी सूत्र में होनी चाहिए। जैसे हमारे यहाँ वेद के ऋषियों ने अनुशासन को योग का एक व्रहीः कृत आश्वास माना है। मेरे पुत्रो! अनुशासन ही योग का एक अंग माना है। परन्तु जिस काल में हम संध्या की पुलकित आभा में परणित हो जाते हैं। उस समय हमें कुछ और ही दृष्टिपात आने लगता है। मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है हमारे ऋषि मुनि सन्ध्या के काल में अपनी सन्ध्या की पुलकित बेला में अपनी नाना ग्रन्थियां सुलझाते थे। जैसे रात्रि और दिवस दोनों का मिलान होता है और उसको संध्या काल कहते हैं। इस प्रकार मानव की जो नाना प्रकार की बिखरी हुई प्रवृत्तियां हैं, उन बिखरी हुई प्रवृत्तियों को जब एक सूत्र में लाया जाता है। और उनका एक मानो समय बन जाता है। उसके पश्चात् वह आत्म याग के लिए तत्पर हो जाता है।

जैसे याग है वह आत्म याग कहलाता है, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है उसका साकल्य बना करके यह आत्मा वह ज्ञान रूपी जो अग्नि प्रचण्ड हो रही है, उस ज्ञान यपी अग्नि में वह उसका स्वाहा करता है। उस सन्ध्याकाल में जो आत्म चेतना है वह उद्बुद्ध हो जाती है। वह उद्बुद्ध स्वाहा कहने लगता है। क्योंकि उद्बुद्ध स्वाहा इसीलिए कहता है क्योंकि वह आत्मा जो ज्योति है वह इसके लिए साक्षात्कार होने लगती है।

तो मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या है? हमारे यहाँ जब सन्ध्या के लिए मानव विद्यमान होता है तो सन्ध्या हम किसे कहते हैं? दो वस्तुओं के मिलान का नाम सन्ध्या कहा जाता है अथवा इसको हम सन्धि कहते हैं। हमारे यहाँ परम्परा से ऋषियों ने सन्ध्या काल को एक व्रती सन्ध्या कहा है। और वे सन्ध्या क्यों कहते हैं? क्योंकि दोनों का मिलान होता है। और दोनों का मिलन हो करके वह सन्ध्या बन जाती है। मैंने बहुत

पुरातनकाल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था। सबसे प्रथम जब मानव साधना के लिए आसन पर विद्यमान होता है तो आसन पर विद्यमान हो करके बेटा! वह अपने को जानने की इच्छा करता है। सबसे प्रथम, वह प्रत्येक इन्द्रिय को ऊँचा बनाने की अपनी आन्तरिक भावना को उद्बुद्ध करता है। मेरे प्यारे! इनको प्रकाशित करना रहता है।

वह वाक् ज्योति को उर्ध्वा बनाने के लिए तत्पर रहता है। वह चक्षु और घ्राण प्रत्येक इन्द्रिय को, उस इन्द्रिय के जो स्वरूप हैं, अथवा उनका जो विषय है उनको वह जानने के लिए तत्पर होता है। तो यह जो ब्रह्माण्ड है, यह उसके लिए व्यापक रूप में दृष्टिपात आने लगता है। और जब तक मानव का जीवन व्यापकवाद में परणित नहीं हो जाता तब तक मेरे प्यारे! वह मानव साधना में सफलता को प्राप्त नहीं होता।

मेरे प्यारे! वह अपनी इन्द्रियों के विषयों को बाह्य जगत् में प्रवेश कर देता है। बाह्य जगत् में जब वह दृष्टिपात करता रहता है, तो इसके पश्चात् वह आन्तरिक जगत् में, मानो अपने ही पिण्ड में इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करने लगता है। ये जो मानव के नेत्र दूरिता में दृष्टिपात करने लगते हैं, परन्तु उसी विषय को जो उसने दृष्टिपात किया है उसे वह अन्तर्हृदय में दृष्टिपात करने लगता है। जब वह अन्तर्हृदय में दृष्टिपात करता है तो यह बाह्य जो ब्रह्माण्ड है। बाह्य जो जगत् है वह आन्तरिक जगत् में प्रवेश होने लगता है। उस समय जब वह अपने में अपने को ही दृष्टिपात करने लगता है, तो प्रभु! की जो अनुपमता है, प्रभु की जो महिमा है, उसे दृष्टिपात करने लगता है।

जैसे हमारे यहाँ आदि ऋषियों ने कहा है कि जब मानव को इस मानवीय पिण्ड का निर्माण हुआ, तो इस वाणी की सबसे प्रथम प्रथमता मानी गई है। वाणी ही भिक्षुक बन करके रहती है। यह वाणी ही एक याज्ञिक स्वरूप बन करके रहती है, तो इसीलिए आचार्यों ने कहा कि प्रत्येक इन्द्रिय के अनुशासन का नाम मेरे पुत्रो! यौगिकता मानी जाती है। प्रत्येक इन्द्रिय पर अनुशासन होना बहुत अनिवार्य है। और अनुशासन वह मानव करता है, जो यौगिकता को जानता है। इन्द्रियों पर वह शासन करना जानता है। जब मानव को प्रत्येक इन्द्रिय के विषय का ज्ञान होता है और ज्ञान उस प्राणी को होता है, जो बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों को याज्ञिक रूप से इसके ऊपर

अनुसन्धान करने वाला होता है।
आओ मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हें कोई विशेषता देने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ। कि हमें अनुशासन करना है। सबसे प्रथम हमें अनुशासन में जाना है। क्योंकि हम जब भी किसी भी कार्य में जैसे जब हम सन्ध्या के लिए, सन्धि करने के लिए तत्पर होते हैं, तो वहाँ अनुशासन की आवश्यकता होती है। जैसे दो राष्ट्रों में संधिपात नहीं होता, तो दोनों राष्ट्र मेरे पुत्रो! अपने अनुशासन में निहित हो करके और उसके पश्चात् वे अपनी संधि करते हैं। इसी प्रकार हमारा जो मनस्तत्व, प्राणतत्व दोनों का विभाजन हो गया है। मुनिवरों! दोनों में सन्धि नहीं हो पाती। तो उसके पश्चात् अनुशासन की आवश्यकता होती है। दोनों को सन्धि से ही। तो हमें मन और प्राण दोनां को सन्धि में लाना है। उसी का नाम सन्ध्या है। हमारे इस मानव शरीर में दोनों को विभक्तता हो गई है। एक स्थली में मन की विभक्तता है, एक स्थली में प्राण विभक्त हो गए हैं। दोनों को अनुशासन में लाना है। और दोनों को अनुशासन में लाने से पूर्व हमें अपने जीवन को इतना महान और अन्नत बनाना है जिससे हमारा संध्याकाल प्रिय हो जाए और हम उसमें सफलता को प्राप्त हो जाएं।
मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज जब अपने आसन पर विद्यमान थे तो एक समय उनके हृदय में यह वेदना जागरूक हुई कि मैं इस महान् देवी सन्ध्या के समीप जाना चाहता हूँ। तो महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान हो करके गान गाने लगे, उद्गीत गाने लगे। जब उद्गीत गाने लगे तो उसके लिए कोई भी प्राणी हिंसक नहीं रहा। जब कोई प्राणी हिंसक नहीं रहा तो वह उद्गीत वाणी गाती रही वाणी उद्गीत गाती रही। गाते गाते महत्ता को प्राप्त होने लगे। परिणाम वृहीः कृताम् देवत्यम् लोकाः। मेरे प्यारे! ब्रह्म लोकों में उनकी गति होने लगी। ऋषि का विचार एक महान था।
मेरे पुत्रों! देखो,! जब वह उद्गीत गाने लगी उस समय उद्गीत गाते गाते वाणी में स्वार्थ भावना आ गई। जब वाणी में स्वार्थ भावना आ गई तो मेरे पुत्रो! वे जो मानव शरीर

में जो असुर विद्यमान थे उन असुरों ने वाणी को छेदन कर दिया। जब वाणी छेदन हो गई तो अब ऋषि का जो ऊर्ध्वागति वाला जो संधि काल था वह अधोगति को प्राप्त हो गया। जब अधोगति को प्राप्त हो गया तो उसकी संध्या की जो कड़ी थी, सन्ध्या के जो वृत्त थे, उनका विच्छेद हो गया। विच्छेद होने के पश्चात् मार्कण्डेय ऋषि महाराज मौन हो गए। तो मुनिवरों! देखो,! ऋषियों ने यह कहा, कि कोई भी मानव साधना में जाना चाहता है तो उसमें स्वार्थ परता नहीं होनी चाहिए। जिस भी काल में स्वार्थपरता हो जाती है उसी काल में असुर उसको छेदन कर देती हैं। तो इसीलिए मेरे प्यारे! महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज, जब वाणी उद्गीत गा रही थी क्योंकि गान ही गान गा रही थी। बेटा! देखो,! प्रभु का गान गा रही थी। तो जब वह प्रकृति का गान गाने लगी, ध्रुवा गति का गान गाने लगी, उसी समय उसकी ध्रुवा गति हो गई, स्वार्थपरता हो गई। क्योंकि योगियों की, साधक को मुनिवरों! जब जिस भी काल में स्वार्थपरता इन्द्रियों की आ जाती है, लोलुपता आ जाती है, उसी काल में उस मानव की गति ध्रुवा बन जाती है।

तो आओ मेरे पुत्रो! वह ध्रुवा गति वाली वाणी बन गई। जब वाणी बनी तो कुछ समय के पश्चात् ऋषि ने यह विचारा कि मैं घ्राण के द्वार पर जाता हूँ, जो घ्राण मेरा गान गाने लगे। अब मुनिवरों! घ्राण भी निस्वार्थ हो करके उद्गीत गाने लगी। जब घ्राण उद्गीत गाने लगी तो उद्गीत गाते गाते मेरे प्यारे! ऋषि का सन्ध्या मिलन होने लगा। जैसे ही मिलन होने के लिए तत्पर हुआ उसी काल में मेरे पुत्रो! घ्रणा में स्वार्थपरता आ गई। अब इसीलिए बेटा! वह जहाँ सुगन्धि ही सुगन्धि लेती थी वहाँ दुर्गन्धि भी लेने लगी। जब दुर्गन्धि लेने लगी, सुगन्ध का अभाव हो गया तो उस समय स्वार्थपरता आ गई और स्वार्थपरता के आने के पश्चात् वह जो विचारधारा, जो सन्धि का काल था उसका विच्छेद हो गया। अथवा असुरों ने उसको छेदन कर दिया तो छेदन करने के पश्चात् अब ऋषि का संध्याकाल भी नहीं रहा।

मेरे प्यारे! ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ कि वह घ्राण उद्गीत गा रही थी। क्या गा रही थी? कि प्राण ध्वनि होती थी उस ध्वनि को वह अपने में

ग्रहण कर रही थी। जब वह ग्रहण कर रही थी, तो पृथ्वी के सर्वत्र ब्रह्माण्ड की आभा मानो पृथ्वी का जितना ज्ञान और विज्ञान था उसके समीप आ रहा था। वह उसके समीप आने लगा। मानो देखो, उसमें वह तत्परता को अपनी आभा में ही छेदन होने लगा। तो मेरे प्यारे! विचार आता है, शान्तनि कृताम् देवाः हिरण्यम् गच्छत् प्रवहेः। मेरे प्यारे! वही घारणा जो देवतव का उद्गीत गा रही थी, सुगन्धि ही ले रही थी। खनिजों में पृथ्वी के द्वार, पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश हो गई थी, वही मेरे पुत्रो! स्वार्थ आते ही असुरों ने उसे छेदन कर दिया और वह ध्रुवा गति को प्राप्त हो गई। ध्रुवा गति को प्राप्त हो गई तो अब ऋषि मौन हो गए। ऋषि ने विचारा कि यह स्वार्थपरता नहीं होनी चाहिए।

अब ऋषि साधना कर रहा है। साधना में अनुभव कर रहा है, मानो योग में प्रवेश कर रहा है, योग का अनुभव कर रहा है। कि योग में जाने के लिए कौन कौन सी वस्तु ऐसी है, जो योग से हमें दूरी ले जाता है, योग में पारायणता को प्राप्त नहीं होने देतीं। तो मेरे पुत्रो! ऋषि अब विचारने लगा। चक्षु के द्वार पर पहुंचा कि हे चक्षु! तू मेरा उद्गाता बन। हे चक्षु! तू मेरा उद्गाता बन करके उद्गीत गा। तो चक्षु उद्गीत गाने लगा। जब चक्षु उद्गीत गाने लगा। अब चक्षु ने उद्गीत गाया, वह सदैव शुद्ध पवित्र दृष्टिपात करती रही। अशुद्ध दृष्टिपात ही नहीं करती थी। जहाँ भी वह दृष्टि जाती वहीं प्रभु की प्रतिभा दृष्टिपात आने लगती। सुन्दरी को दृष्टिपात किया जाता उस सुन्दरी में भी प्रभु की ही प्रतिभा दृष्टिपात होती। सुन्दरी सुन्दरता को दृष्टिपात करके, वहाँ भी प्रभु की आभा उसे प्राप्त होने लगी। जब प्राप्त होती रही दृष्टिपात करते हुए ब्रह्माण्ड में परणित हो गई। परिणाम यह हुआ कि उद्गीत गाता रहा। उद्गाता बन करके। इस मानव शरीर रूपी जो यज्ञशाला है, इस यज्ञशाला में बेटा! उद्गीत गाने वाला कौन है? कौन होता बन करके, कौन उद्गीत गा रहा है बेटा! वह चक्षु हैं, वे नेत्र हैं।

मेरे प्यारे! देखो, जब नेत्रों में कुछ समय के पश्चात् स्वार्थपरता आने लगी। जब स्वार्थपरता आने लगी तो अशुद्ध दृष्टिपात करने लगा। संकीर्णता में परिणीतता प्रतीत होने लगी। तो मेरे प्यारे! वहाँ भी असुरों ने नेत्रों को छेदन कर दिया। क्योंकि असुरों को यह ज्ञान था कि देवता हमें विजय करना चाहते हैं। तो मुनिवरों! देखो, जब उसमें

स्वार्थपरता जहाँ आई, वहीं असुरों ने उसको छेदन कर दिया तो जहाँ शुद्ध दृष्टि प्राथमिकता में ही दृष्टिपात कर रहा था, वहाँ नेत्रों के द्वारा बेटा! स्वार्थ आते ही मेरे प्यारे! वह अशुद्ध दृष्टिपात करने लगा। जब करने लगा उसी के पश्चात् ब्रह्माः कृत देवाः। असुरों ने बेटा! छेदन कर दिया। मानो उद्गीत समाप्त हो गया। वे नाना चरणों में परणित हो गया। क्योंकि इस समाज में जब स्वार्थ आ जाता है तो रक्तमय जीवन बन जाते हैं। इन्द्रियों में जब स्वार्थपरता आ जाती है तो मेरे प्यारे! इन्द्रिय इन्द्रिय नहीं रहती। उसमें दोनों प्रकार की आभा परणित हो जाती है।

आओ मेरे प्यारे! योग में जो बाधक वस्तु है, वह सबसे प्रथम स्वार्थपरता कही जाती है। आचार्य ने, जब मार्कण्डेय ऋषि ने यह विचारा कि यहाँ इसमें सूक्ष्मता है, तो वह श्रोत्रों के द्वार पर पहुंचा और श्रोत्रों से कहा हे श्रोत्रों! आओ तुम मेरी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके तुम उद्गाता बनो। मेरा उद्गीत गाने वाले बनो। अब उद्गीत गाने लगे। उन्होंने यथार्थ सुन करके उद्गीत गाना प्रारम्भ किया और उद्गीत गाता रहा। श्रोत्रों में जो भी शब्द आता वहीं शब्द दर्शनों से घटित होने लगा। वह अन्तःकरण में शिक्षाम् देवाआहस्तहिः वह चित्त में विद्यमान होने लगा। उन श्रोत्रों का सम्बन्ध नाना प्रकार की दिशाओं से अर्पित हो गया और अर्पित हो जाने के पश्चात् जो भी शब्द आता रहा, उसी शब्द में मेरे पुत्रो! वास्तविकता घटित होने लगी। दार्शनिकता में परणित होने लगा। परिणाम यह हुआ कि मानअहिः कृताम् देवत्याम् लोकाः। मेरे पुत्रों! लोक लोकान्तरों में जाना प्रारम्भ अथवा उत्थान हो गया। लोकों में जाना ही उसका उत्थान हो गया। परिणाम मेरे पुत्रो! उसमें स्वार्थपरता आ गई। जहाँ वह शुद्ध शब्दों को ग्रहण कर रहा था। जहाँ उद्गीत गा रहा था वहाँ मेरे प्यारे! अशुद्धता को ग्रहण करने लगा। जब अशुद्धता को ग्रहण करने लगा तो वहाँ मुनिवरों! अशुद्धता आ गई। अशुद्धता आ करके उसी काल में मेरे प्यारे! असुरों को जब प्रतीत हुआ असुरों ने श्रोत्रों को छेदन कर दिया। उद्गीत गाना प्रायः समाप्त हो गया। अब वह अशुद्ध शब्दों को ग्रहण करने लगा। परिणाम वेद का ऋषि यह विचारने लगा कि यौगिकता के लिए, सन्ध्या में जाने के लिए स्वार्थपरता ही हमारे लिए बाधक है। जो अशुद्धता में ले जाती है। तो मेरे पुत्रो! अब्रह्मः

कृतम् देवः। ऋषि यह चिन्तन करने लगा, मनन करने लगा कि हमारे यहाँ जहाँ ये श्रोत्र भी हैं मेरे प्यारे! असुरों ने इनको छेदन कर दिया है। और वो छेदनता क्यों होती है? क्योंकि वह स्वार्थपरता से होती है। इसीलिए स्वार्थ नहीं होनी चाहिए।

मेरे प्यारे! ऋषि मौन हो गया। अब ऋषि ने विचारा मैं किसके द्वार पर जाऊँ? मैं किसको यज्ञशाला का दूत बनाना प्रारम्भ करूं? मेरे प्यारे! वे रसना के द्वार पर पहुंचे। मेरे प्यारे! रसना से नतमस्तिष्क हो करके बोले, हे रसना! तू मेरा उद्गीत गा। रसना ने कहा, बहुत प्रियतम वह उद्गीत गाने लगी। वह वाणी से क्या? स्वादन से ऊँचे, ऊर्ध्वागति वाले रसों का पान करता रहा, पान करते करते बेटा! देखो, उसमें भी कुछ समय के पश्चात् स्वार्थपरता आते ही असुरों ने यह जान लिया कि देवता तुम्हें रसना के द्वारा, रसों के द्वारा विजय करना चाहते हैं। तो मेरे प्यारे! असुरों ने वाणी को छेदन कर दिया। वाणी को छेदन कर दिया तो बेटा! रसों के दो स्वरूप बन गए। रसों का विभाजन बन गया। स्वार्थपरता आते ही बेटा! विभक्तता बन गई। तो इसीलिए वेद के आचार्यों ने अनुसन्धान किया और विचार विनिमय करके बेटा! मार्कण्डेय ऋषि महाराज चिन्तन में लगे कि अब मैं क्या करूं? तो कहते हैं कि असुरों को विजय करना है। अब असुरों को हम विजय कैसे कर सकते हैं। क्योंकि बिना असुरों को विजय किए हम यौगिकता में प्रवेश नहीं कर सकते। हम यौगिकता में जाना चाहते हैं और आध्यात्मिकवाद को जानना चाहते हैं। आध्यात्मिकविज्ञान में प्रवेश होना चाहते हैं। तो हम कैसे जा सकते हैं? जब तक हम असुरों का छेदन नहीं करेंगे तब तक हमारा जीवन किसी भी काल में ऊँचा नहीं बनेगा।

तो मेरे पुत्रो! महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज चिन्तन करने लगे। मनन करने लगे। रात्रि समाप्त हो गई। दिवस आ गया, दिवस भी समाप्त हो गया। अन्न की भी इच्छा नहीं हो रही थी। ऋषि को। इतने में ही स्वदेष्टय ऋषि महाराज उनके द्वार पर आए। स्वादेष्टय ऋषि महाराज बोले, कहो! मार्कण्डेय जी! आज आप आसन को नहीं त्याग रहे हो। रात्रि समाप्त हो गई है दिवस भी समाप्त हो गया है। क्या कारण है प्रभु? मार्कण्डेय ऋषि महाराज बोले, महाराज! मैं अपनी शरीर रूपी यज्ञशाला का उद्गीत बनाना चाहता

था। मैं उद्गीत गाना चाहता था। अहा! प्रत्येक इन्द्रिय के दो स्वरूप बन जाते हैं। असुरों को विजय करना चाहता था। देवताओं को महान् बनाने की इच्छा बनी रही और वे नहीं बन सके। परिणाम यह है कि मैं मौन हो गया हूँ। चिन्तन कर रहा हूँ कि मैं संधि चाहता हूँ जिस वस्तु का विभाजन हो गया है। मैं ये विचार रहा हूँ जिस वस्तु का विभाजन हो गया है। मैं ये विचार रहा हूँ कि कौन सी वस्तु है? जो सन्धि नहीं होने देती।

मेरे प्यारे! ऋषि ने एक ही वाक्य कहा है कि यह जो स्वार्थपरता है, यह मानव की सन्धि नहीं होने देती। जब तक मानव की प्रवृत्तियों में मेरे पुत्रो! अकृताम् देवाः जब तक स्वार्थपरता विचारों में बनी रहती है, तब तक हमारी सन्धि किसी भी काल में नहीं होती। सन्धि उसी काल में होती है, जब हमारे हृदय में यौगिकता आ जाती है और यौगिकता आ करके स्वार्थपरता समाप्त हो जाती है। मेरे प्यारे! इन्द्रियों के विषयों का हम साकल्य उसी काल में बना सकते हैं, जब तक हमारा विचार बाह्य जगत् का आन्तरिक जगत् में उसी रूप में प्रवेश हो जाए, तो वह हमारी सन्धि हो जाती है। अब मेरे पुत्रो! देखो, मोक्ष के मार्ग पर जाने के लिए गति करना प्रारम्भ कर देते हैं। क्योंकि मोक्ष को जाना ही मानव का कर्त्तव्य माना गया है। प्रत्येक मानव सन्धि इसीलिए चाहता है कि मेरा मोक्ष हो जाए। प्रत्येक मानव सन्ध्या में इसीलिए प्रवेश होना चाहता है कि मेरा प्रभु से मिलन हो जाए। चेतना में चेतना का मिलान हो करके, मैं सर्वत्ररूप एक चेतना के स्वरूप को दृष्टिपात करता रहूँ।

आओ मेरे पुत्रो! मैं अपने विचारों को उच्चारण करता हुआ दूर चला गया हूँ। विचार यह देने जा रहे थे कि हमारी संध्या क्या है? मुनिवरों! दो वस्तुओं का इस संसार में विभाजन हो गया है और वह जो विभक्तता है, वह केवल मन और प्राण की हो गई है। अब दोनों का जो सन्धिकाल होता है, दोनों का जब मिलन होता है तो मेरे पुत्रों! हम आध्यात्मिक मार्ग के लिए गमन करते हैं। आध्यात्मिकवाद में जाना ही हमारा कर्त्तव्य है। अब एक ऋषि एक स्थली में तो यह विचार कर रहा है कि मेरा सन्धिकाल

होना चाहिए।

अपने में ही मानो मार्कण्डेय जैसे ऋषि ये विचार रहे हैं कि हमारी प्रकृति से भी मिलन होना चाहिए। प्रकृति है विभक्तम् ब्रह्मः वृताम् देवाः। यह जो हमारा प्रकृति से विच्छेद हो गया है। परमाणुवाद एक परमाणुवादों का समूह बन करके एक स्थूल जगत् बन गया है। एक परमाणुओं का विभाजन हो करके, इस ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत या अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो करके नाना प्रकार के परमाणु हमें दृष्टिपात होते हैं। वे परमाणु त्रसेणुओं के रूप में हमें दृष्टिपात होते हैं आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता तो यह चाहता है कि स्वार्थपरता नहीं होनी चाहिए। भौतिक विज्ञान वेत्ता यह चाहता है कि मैं इस प्रकृतिवाद को जान करके अन्त के छोर को जाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! वह परमाणुओं में लगा हुआ है। एक परमाणु से दूसरे परमाणु का मिलान करता रहता है। और करता करता उनमें सर्वत्र सृष्टि को दृष्टिपात करता रहता है।

एक समय महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज, महर्षि सोमकृतिक ऋषि महाराज, ब्रह्मचारी कवन्धी और स्वांतत ऋषि महाराज ये विद्यमान थे और विद्यमान हो करके उन्होंने एक परमाणु की जानकारी की। और उस परमाणु का जब विभाजन करके उसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड का बेटा! देखो, सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक ही परमाणु के विभक्त होते ही विभाजन होकर के उसका अक्षत उसमें दृष्टिपात होने लगा। परिणाम यह कि उन्होंने यह विचारा कि एक एक परमाणु में सर्वत्र संसार की रचना होती, ऋषियों को दृष्टिपात होती। उससे उन्होंने अग्नि का, अग्नि परमाणुओं को पृथक किया। अग्नि तत्त्व वाले परमाणुओं को पृथक् करके आग्नेयास्त्रों का निर्माण करने लगे। वायु में अग्नि का मिलान करना प्रारम्भ किया। तो उससे ऐसे यन्त्रों की उत्पत्ति हुई वे बाह्य जगत् में इस अन्तरिक्ष में, और लोक लोकान्तरों में गति करने वाले बने मेरे पुत्रो! देखो, वास्तविकता यह थी कि परमाणु जब उन्होंने एकत्रित करने प्रारम्भ किए, तो समुद्रों में, जलों में, जल की आन्तरिकता में गति करना, उन्होंने प्रारम्भ किया। परिणाम भौतिक विज्ञानवेत्ता यह चाहता रहता है कि मैं एक एक परमाणुओं को जान करके, एक एक अणुओं को जान करके प्रकृतिवाद को जानना चाहता हूँ। परन्तु प्रकृतिवाद का परमाणु, एक उत्पन्न होता

है, एक की जानकारी होती है द्वितीय उपस्थित हो जाता है। वह द्वितीय जैसे ही उपस्थित हो गया। तृतीय की जानकारी की इसी प्रकार वह उस अन्त को, छोर को नहीं जा पाता। इससे मानव की प्रवृत्तियों में विभाजन होना प्रारम्भ हो जाता है। इतने में उस विज्ञान में भौतिकवाद में, संकीर्णावाद प्रारम्भ हो जाता है। उसमें वह ज्ञानाति जन्मदण्डः ब्रह्मः लोकाः। उसमें ब्रह्म लोक में जाने की प्रवृत्ति नहीं रहती। वह केवल उन्हीं परमाणुओं में लगा रहता है। उन्हीं चित्रावलियों में लगा रहता है। लगे रहने का परिणाम यह होता है कि उसी में उसका जो शरीर आनन्द्रतम् देवाः का शरीरान्त हो जाता है। शरीरान्त हो करके उसी प्रवृत्ति में जन्म ले करके पुनः उसी में परणित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि वह अस्त्रों शस्त्रों में लगा रहता है। राष्ट्र को वह सम्पदा देता रहता है। वह मानव को नष्ट करने की सामग्री का निर्माण कर रहा है कहीं जीवन उत्पन्न नहीं होता।

मेरे प्यारे! जब ऋषियों ने बहुत अनुसन्धान किया तो यही विचारा कि यह जो भौतिकवाद है, इसमें मानव को जीवन प्राप्त नहीं होता। इसमें विकृतता प्राप्त होती है। विभक्त क्रिया प्राप्त होती है। तो मेरे प्यारे! जितना भौतिकवाद में मानव प्रवेश करता है, उतनी ही मानव में विभक्तता ओत प्रोत हो जाती है। क्योंकि उसमें अभिमान पूर्वक यन्त्रों की उत्पत्ति होती रहती है। क्योंकि जितना भी मानव विभाजन करता रहता है जानकारी करता रहता है उतना आध्यात्मिकवाद नहीं होता दोनों के मिलन होने की प्रवृत्ति नहीं होती। उसमें तो केवल विभाजन हो रहा है और वह जो विभक्त क्रिया है, वही इस मानव को ऐसे ढेर पर ले जाती है, जहाँ उसके प्राण, शरीर भी अन्तिमता को प्राप्त हो जाता है। पुनः आता है पुनः उसी में परणित हो जाता है। मेरे प्यारे! परिणाम यह कि जन्म जन्मान्तर व्यतीत हो जाते हैं। मेरे प्यारे! प्रकृतिवाद में वह अपनी साधना को प्राप्त नहीं कर रहा है। वह केवल एक आभा में लगा हुआ है। ऋषि मार्कण्डेय महाराज का यह अन्तिम विचार है। उन्होंने कहा है कि हम दोनों प्रकार के विज्ञान को जानना चाहते हैं, परन्तु एक विज्ञान मानव की संधि नहीं होने देता। एक स्थलीयुक्त विज्ञान ऐसा है जो संधि होने देता है। तो इसीलिए दोनों प्रकार का विज्ञान जब मानव के समीप आता

है तो भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद। आध्यात्मिकवाद तो देखो, संधि को कहते हैं। और भौतिकवाद विभक्तक्रिया को कहते हैं। विभक्त क्रिया आती रहती है। अन्तर में अभिमान के अंकुर जागरूक हो जाते हैं। अंतिम परिणाम बेटा! जन्म जन्मान्तरों की आभा में परणित हो जाता है। मस्तिष्क में वे अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं, जिन अंकुरों से वह इस प्रकृति के गर्भ को जानने के लिए स्थित बना हुआ है।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष विचारधारा प्रकट करने नहीं आया हूँ। तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश होना चाहता है। मैं संधिकाल की चर्चाएं कल भी करूंगा। आज का विचार विनिमय यह कि दोनों प्रकार का विज्ञान हमारे समीप होना चाहिए। दोनों प्रकार के विज्ञान में मेरे प्यारे! जो आध्यात्मिक विज्ञान है। वो मोक्ष की पगडंडी है और भौतिकवाद इस प्रकृतिवाद में मानो परणित होने की पगडंडी है। मुनिवरों! देखो,! वह जो पगडंडी है, वह प्रतिभा है और वह स्वार्थमयी प्रतिभा है। मेरे प्यारे! दोनों में अंतर्द्वन्द्व जीवन का, मृत्यु का आ जाता है। पुत्रो! आज का हमारा यह वाक्य क्या? आज के वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह कि महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज, वह गीत गाना चाहते थे एक स्थली में विज्ञान में प्रवेश होना क्योंकि हमारे यहाँ ऋषि मुनि दोनों प्रकार के विज्ञान में जाने के लिए तत्पर रहे। और अन्तिम जो उनकी प्रतिक्रिया बनी रही कि आध्यात्मिक होने के लिए ऋषियों ने अपने जीवन को इसमें आहुति प्रदान की।

आओ! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह है कि आज यौगिक बनने के लिए एक संधि की चर्चा हम कर रहे थे। आज हम यौगिक बनना चाहते है। संधि करना चाहते हैं। अब दोनों की संधि कैसे होगी? कैसे होती है? दोनों की संधि में मानवता की रूप रेखा है। ये र्चाएं हम कल करेंगे। इसके पश्चात् तुम्हें यौगिक वार्त्ताएं और वह तुम्हारे समक्ष, तुम्हारे समीप आ जाएगा कि योग किसे कहते है? योग क्या है? बेटा! देखो, ये चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् क्या? कि हम प्रत्येक इन्द्रिय से उद्गीत गाने वाले बनें और उद्गीत गाते हुए, हमारा उद्गीत गाना ही हमारा कर्त्तव्य है। हमें उद्गाता बनना चाहिए। जब तक हम उद्गाता नहीं बनेंगे, तब

तक याग नहीं करेंगे और जब तक याग नहीं करेंगे इस संसार को नहीं जानेंगे और संसार को समेट करके हम अपने अन्तःकरण में दृष्टिपात जब तक नहीं करेंगे, तब तक हम संधि नहीं कर सकते। यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय कि हम संसार में संधि के लिए आए हैं क्योंकि हमारा जिस वस्तु से विच्छेद हो गया है उससे मिलान करना चाहते हैं। यह है आज का वाक्। अब वेदों का पठन पाठन होगा। आर्यसमाज, शक्तिनगर अमृतसर

७ 20 04 1979 पुष्प 37 मानव जीवन की प्रगति कैसे हो

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रां का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह रक्षक और वह संसार का निर्माण वेत्ता है।

आज परमपिता परमात्मा का विज्ञान मय जो यह संसार है, इसके ऊपर हमारा अनुसन्धान होना चाहिए अथवा इसके ऊपर हमारा मनन और चिन्तन होना चाहिए जैसे परमपिता परमात्मा इस संसार का रचयिता है। और अनुशासन करता है। इसी प्रकार यह मानव रूपी जो पिण्ड है, पञ्च महाभूत इसमें दृष्टिपात आते हैं। हम इसके ऊपर प्रायः अनुशासन में महत्ता में परणित होना है। जिससे हम इस पिण्ड के द्वारा ब्रह्माण्ड को अच्छी प्रकार जान सके। क्योंकि जब तक हम पिण्ड और ब्रह्माण्ड का समन्वय नहीं कर देते, हम संकीर्णता में ही परणित रहते हैं तो हम योगी कैसे बनेंगे। हम योग की प्रतिभा और परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान किस प्रकार जान सकेगे? तब तक हम नहीं जान सकते, जब तक हमारा जीवन अनुशासित नहीं होता और अनुशासन में परणित हो करके हम याज्ञिक रूप से इस परमपिता परमात्मा के अनुपम जगत् को

दृष्टिपात नहीं करेंगे।

मेरे पुत्रो! मुझे बहुत सी वार्त्ताएं स्मरण आती रहती हैं। तुम्हें बहुत पुरातनकाल में निर्णय देते हुए यह भी कहा था एक समय बेटा! ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा अपने आसन पर विद्यमान थे। वह प्राःकालीन अपने जीवन को उस परमपिता परमात्मा की अनुपमता से संधि करना चाहते थे। ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा जैसे ही विद्यमान थे और वह संधि करने के लिए तत्पर थे। मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्म व्रण कैतु हरितत उनके द्वार पर आ पहुंचे। हरितत ने ब्रह्म के पुत्र अथर्वा से कहा महाराज! आप क्या कर रहे हैं? महर्षि अथर्वा ने कहा कि महाराज! मैं अपनी संधि करने के लिए आया हूँ। क्योंकि जहाँ से मेरा बिछुडन हुआ मैं उसी से मिलान करना चाहता हूँ। प्रत्येक प्राणी के हृदय में एक वेदना जागरूक रहती है। क्योंकि जिससे मानव का विच्छेद हुआ है। उससे वह संधि करना चाहता है, उससे वह मिलन करना चाहता है, वेदों का अध्ययन करना चाहता है, वाणी के ऊपर अनुशासित होना चाहता है कैवल मिलन के लिए, कैवल वह अपनी संधि के लिए।

मेरे पुत्रो! जब अथर्वा से यह कहा कि महाराज! वेद का अध्ययन क्यों किया जाता है? तो वह ऋषि कहता है, ज्ञानाकृत वृत्ति देवाः त्रिवर्धाः त्रिविधान् पठयतिः। मेरे प्यारे! अथर्वा ने ये कहा कि त्रि पापों के लिए और त्रिविद्या के लिए। मेरे पुत्रों! त्रि विद्या क्या? ज्ञान, कर्म और उपासना। जब मानव संधि करना चाहता है, तो विद्या के द्वारा ही चाहता रहता है। उत्कृष्ट इच्छा बनी रहती है कि मैं तीन के ही द्वारा, त्रिविद्या के द्वारा मैं प्रभु से मिलन करूंगा। उपासना के द्वारा अन्तिम छोर है उपासना। तो मेरे पुत्रों! वह क्यों कहर रहा है? क्योंकि उससे उसका विच्छेद हो गया है। क्योंकि विच्छेद नहीं होता तो मिलन की इच्छा नहीं होती।

एक मानव विज्ञान में जाना चाहता है। क्योंकि नाना प्रकार की उस प्रभु के द्वारा एक माला बनी हुई है, लोक लोकान्तरों की जो एक माला बनी हुई है निर्मित हो रही है। वह माला ही इस पिण्ड में भी विद्यमान हो रही है। तो मुनिवरों! माला के ज्यों ज्यों अंकुर जागरूक होते रहते हैं, त्यों त्यों लोकों की आभा उसके म स्तिष्क में आती रहती है। वह वैज्ञानिक रूपों में परणित हो जाता है। यदि हमारे इस मानव शरीर में चन्द्र,

सूर्य नहीं होंगे, अदिति नहीं होंगे, तो हम तो कल्पना भी किसी काल में नहीं कर सकते। कल्पना बाह्मा जगत् से आन्तरिक जगत् में, आन्तरिक जगत् के जो सुषुप्ति में मानो जो, परमाणु सुषुप्ति में पहुंच गएं हैं, उनको वह जागरूक कर लेता है।

मेरे पुत्रो! आओ! आज मैं तुम्हें उसी आसन पर ले जाना चाहता हूँ। आज मैं मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम पर तुम्हें पुनः से ले जाने के लिए आया हूँ। बहुत पुरातन काल की वार्त्ताएं हैं। जब बेटा! ऋषि मुनि अपने आसन पर विद्यमान हो करके ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ते रहे हैं। उनकी उड़ान कितनी विचित्र रही है। उनकी जो उड़ान है वह इस पृथ्वी से अन्तरिक्ष तक नहीं। अन्तरिक्ष से ही नहीं, वह जो उड़ान है वह पिण्उ और ब्रह्माण्ड को एक उड़ान हो रही है। क्या हम इस पिण्ड को जान करके इस ब्रह्माण्ड को जान सकते हैं? अथवा ब्रह्माण्ड में हम बाह्य अपनी प्रवृत्तियों को ले जा करके आन्तरिक जगत् में उनको दृष्टिपात कर सकते हैं।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि हम देवता बनना चाहते हैं। प्रत्येक मानव की देवता बनने की उसकी उत्कट इच्छा बनी रहती है। कोई भी प्राणी संसार में दैत्य बनना नहीं चाहता। प्रत्येक देवता यह महर्षियों ने वर्णन किया है। आचार्यों ने कहा है कि हम देवता कैसे बनेंगे? हम ऋषि कैसे बनेंगे? हम योगेश्वर कैसे बनेंगे? हमारा जीवन अनुशासित हो जाय। ब्रह्माण्ड के ऊपर हमारी संशय बनी न रहे। क्योंकि प्रत्येक मानव कल्पना करता रहता है। संशय अपने मनों में रहती है। क्योंकि वह प्रत्येक वस्तु को संशयात्मक रूप में दृष्टिपात करता है। घृणात्मक दृष्टि पात करता है, और वह घृणा और वह संशयात्मक दृष्टि हमारा जीवन न बनने देती है।

बेटा! इसीलिए हमें योग की आवश्यकता होती है। हम योगी कैसे बनें? किसी के प्रति घृणात्मक हमारा चिन्तन न हो। हम अपने में अपने को समाधान करने वाले हों ऐसा हमारा और ऋषि मुनियों का बेटा! अपना अपना मन्तव्य रहा है, अथवा उनकी चिन्तन करने की यह शैली रही है।

मुनिवरों! देखो,! महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज और सुगुण वृत्तकेतु ऋषि महाराज, शम्भानुक ऋषि इत्यादि बेटा! देखो, जब वे अपने आसन को नहीं त्याग रहे थे, और वे

वेदमन्त्र स्मरण आ रहे थे उड़ान उड़ने वाले। क्योंकि देखो, मानव का चिन्तन और मनन है। क्योंकि वह मन्त्रण करता रहता है। चिन्तन मनन करता रहता है। उड़ान उड़ता रहता है। कैसी उड़ान बेटा! अपने में बाह्य जगत् को, बाह्य जगत् को अपने में इस चिन्तन में ऋषि लगा हुआ है।

मेरे पुत्रो! ऋषियों ने जब कहा कि महाराज! आप अपने आसन को नहीं त्याग रहे हों भगवन्! मेरे प्यारे! महर्षि मार्कण्डेय ऋषि कहते हं, कि महाराज! मैं इसीलिए नहीं त्याग रहा हूँ, मेरे मस्तिष्क में नाना प्रकार की वार्त्ताएं गृहि गृहण अस्थित्त दस्यतो, समाहित हो रही हैं। और मेरे मस्तिष्क में यह वाक्य आ रहा है कि हम देवता कैसे बनें? क्योंकि दैत्य भी हमारे समीप हैं। प्रजापति की दो ही सन्तान हैं दैत्य और देवता। हमारे मानव शरीर में भी दो प्रकार की प्रवृत्तियां हैं। सूर्य है, दैवी, दैवत्व है। आज देवता बनने की हमारी उत्कट इच्छा बनी हुई है, और हम देवता बनना चाहते हैं। जिस उद्गाता को मैं अपनाना चाहता हूँ, उसी उद्गाता को, यह दैत्य छेदन कर देते हैं। असुर छेदन कर देते हैं। तो हे प्रभु! मैं इसीलिए अपना उद्गाता निर्मित करना चाहता हूँ।

मैंने अपने चार उद्गाता निर्मित किए हैं और चारों उद्गाताओं को दैत्यों ने (छेदन) कर दिया है। जैसे वाणी को मैंने उद्गीत बनाया, उद्गाता बनाया तो उद्गान् जब गाने लगा तो वाणी भी पापी स्वार्थता में परणित हो गई। उसको दैत्यों ने छेदन कर दिया है। हे प्रभु! मैंने जब घ्राण को अपनाया तो गंध और सुगन्ध में परिवर्तित हो गई है। हे प्रभु! मैंने जब चक्षुओं को अपनाया तो जहाँ वे यज्ञिक ही यज्ञिक दृष्टि पात करना था, वहाँ उसमें स्वार्थपरता आ गई। अच्छी सुन्दरता अपने में धारण करने लगे। तो उसमें भी स्वार्थपरता आ गई। हे प्रभु! मैंने जब श्रोत्रों को अपनाया तो वे भी पापचरणों में परणित हो गए। अब मेरी यह जो यज्ञशाला है इस यज्ञशाला में मेरा अन्तरात्मा विद्यमान हो करके यज्ञमान बना हुआ है। मैं उसका उद्गाता बनना चाहता हूँ। अब मेरे समीप कौन उद्गाता रह गया है जिससे मैं प्रार्थना करूं?

मेरे प्यारे! वेद का आचार्य मन्त्रण करता हुआ और वह मन के समीप पहुंचता है। और मन से कहता है, हे मन! तू मेरी इस यज्ञशाला का उद्गाता बन। तू यज्ञमयी धारा जिससे

मैं इस संसार को संसार रूपी यज्ञशाला को मैं दृष्टिपात करने लगूं। और यज्ञशाला रूपी जो यह मेरा मनस्तत्व वाला शरीर है इसको मैं इस बाह्य यज्ञशाला में परणित कर दूं। मेरे पुत्रो! जब वेद का आचार्य यह उच्चारण कर रहा तो मन ने कहा, प्रियतम्। मैं तुम्हारा उद्गाता बनूंगा। मन उद्गाता बन गया। जब मन उद्गान् गाने लगा। परन्तु उद्गान गाते हुए उन्होंने यह कहा मेरे जो कर्मस्य प्रही है वे कर्म मेरे, तुम्हें सब इन्द्रियों को भोगाचरणों में परणित होंगे। मेरे पुत्रो! देखो, यह स्वीकार हो गया, परन्तु जअब मन जब उद्गीत गाता रहा। उद्गान गाता रहा। यह मन सर्वत्र है। देखो,! जितना भी भू मण्डल है। जितना भी यह ब्रह्माण्ड है, इस ब्रह्माण्ड में, वह गतिशील उसकी गाथा गाने लगा। उसका उद्गीत गाने लगा। अब इसका उद्गीत गाते गाते बेटा! उद्गाता के द्वारा स्वार्थपरता आ गई।

अब मुनिवरों! स्वार्थपरता क्या? जहाँ वह शुद्ध संकल्प कर रहा था। कि यह संसार तो मेरा महान् देवतव है। जहाँ वह केवल शुद्ध संकल्प कर रहा था। क्या संकल्प कर रहा था? मैं आज अदिति को जानना चाहता हूँ। मैं चन्द्रकैतु में जाना चाहता हूँ। इस ब्रह्माण्ड में जो यह माला बिखरी हुई है। इन मनको को मैं एकत्रित करना चाहता हूँ। माता वसुन्धरा के गर्भ में परणित हो करके वसुन्धरा के खनिज को अपने में लाना चाहता हूँ। वह जो लोक लोकान्तरों में जितना खनिज है, उसको मैं संकल्पबद्ध करना चाहता हूँ। जहाँ यह शुद्ध संकल्प हो रहा था। यह विचार रहा था कि यह जो मन है, यह मनस्तम ब्रह्मलोकाः वृत देवाः। यह व्रत है। यह व्रत कर रहा था कि यह जो पृथ्वी है, यह जो ब्रह्माण्ड है। इसमें जो रसां का स्वादन गति कर रहा है, रसों का जो विभाजन हो रहा है यह जो विभक्त क्रिया है मेरे ही द्वारा है और विभक्त हो रहा है।

मेरे पुत्रो! देखो, विभक्ताम् बृहिः वृताम्। , वह विभक्त कर रहा था। तो यह शुद्ध संकल्प हो रहा था। सुसंकल्प होते होते बेटा! उसमें स्वार्थपरता आ गई है, और स्वार्थपरता आते ही वह अशुद्ध संकल्प करने लगा। अब जहाँ जिस वस्तु को वह याज्ञिक रूप से दृष्टिपात कर रहा था। उसको वह संकीर्णता से संकल्प करने लगा, विकल्प करने लगा। वह विकल्प करता हुआ ऐसी धारा पर जहाँ संकल्प कर रहा था, वहाँ अशुद्ध धारणा

उसमें आने लगी। स्वार्थपरता आते ही दैत्यों ने देत्यों की प्रवृत्ति ने मन को छेदन कर दिया। मन के ऊपर आक्रमण कर दिया, और आक्रमण हो करके मन का छेदन हो गया। मन के छेदन होते ही बेटा! यहाँ सात्विकता समाप्त हो गई यहाँ उद्गातापना समाप्त हो गया। वे उद्गीत गाना समाप्त हो गया। जो प्रभु की महिमा का गुणगान गा रहा था। जो प्रत्येक वस्तु में प्रभु को ही दृष्टिपात कर रहा था। जो प्रत्येक परमाणु में प्रभु को दृष्टिपात करता हुआ उसमें चित्रण कर रहा था, वहाँ वह अपने में उसे चेतन में छेदन कर दिया चेतना से। वह चेतना में जड़वत् होने लगा। परिणाम मेरे पुत्रो! जहाँ प्रकाश ही प्रकाश था, वहाँ अंधकार होने लगा। क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में तो रात्रि होती ही नहीं। प्रभु के राष्ट्र में तो सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है। तो मुनिवरों! प्रकाश में रह करके वह अशुद्ध संकल्पों से रात्रि में, अन्धकार में परिवर्तित होने लगा। जब अन्धकार आ गया, तो बेटा! आलस्य आने लगा और जब आलस्य आ गया तो प्रमाद आ गया। प्रमाद आने के पश्चात् अब अन्धकार आने के पश्चात् मेरे पुत्रो! वही मृत्यु की संधि बन गई। मृत्यु आने लगी। मेरे प्यारे! जहाँ मृत्यु ही नहीं थी, शुद्ध संकल्प में मृत्यु ही नहीं थी अशुद्ध संकल्पों में मृत्यु उसके समीप आ गई। अब मृत्यु क्या, अन्धकार आ गया, अज्ञान आने लगा।

मेरे पुत्रो! अब विचार विनिमय होने लगा, अब मैं किसकी उद्गाता बनाऊँ? यह मन जो मेरे प्यारे! संसार में जितनी भी विभाजन क्रिया हो रही है। चाहे वह परमाणु रूप में, चाहे वह पृथ्वी के गर्भ में हो, चाहे वह मानव की प्रवृत्तियों में हो, चाहे मुनिवरों! अतिदि किरणों के द्वारा क्यों न हो। चाहे वह चन्द्रमा की कांति में क्यों न हो। चाहे वह ध्रुव की धाराओं में क्यों न हो। नाना प्रकार के लोक लोकान्तर रूपों में क्यों न हो। यह सब विभक्त क्रिया इस मनस्तत्व की मानी गई हैं। यह मन इसमें विचरण कर रहा है। हमारे यहाँ इस मन को विश्व भान (समष्टि मन) कहते हैं। विश्व भान जो मन है। विश्व का विभाजन कर रहा है। लोकों में एकांगृति देवाः हिरण्यम् बृहीः लोकाः। बेटा! यह परमात्मा का जो हिरण्यमयी गर्भ है, उसमें जो विभक्ता दृष्टिपात आ रही है वह मनस्तत्व के कारण दृष्टिपात आती रहती है। तो मेरे पुत्रो! उस विभाजन क्रिया में हम संसार की

आभा को दृष्टिपात कर रहे हैं।

आओ मेरे पुत्रो! मन दैत्यों से छेदन हो गया। यह मन बड़ा विचित्र है। इस मन के ही कारण बेटा! संकल्प और विकल्प के द्वारा हम एक सूक्ष्म वस्तु को विशाल निर्मित कर लेते हैं, और विशालता को हम सूक्ष्मता में दृष्टिपात करते हैं। जब विशेष प्राण के द्वारा, विशेष मन के द्वारा जाते हैं, तो वहाँ हम संकीर्णवत में परणित हो जाते हैं। विश्वभान मन के द्वारा पहुंच जाते हैं। मन ही है जो संसार की प्रत्येक वस्तुओं को धारण करने वाला है।

एक राष्ट्र को हमने दृष्टिपात किया है। उस राष्ट्र का सूक्ष्म रूप बन करके मानव के अन्तःकरण में, चित्त में विद्यमान हो जाता है। अब चित्त के भी दो प्रकार के स्वरूप माने गएं हैं। एक चित्त ब्रह्माण्ड में रहता है एक चित्त बेटा! मानव के पिण्ड में रहता है। इस पिण्ड के वित्त का और बाह्य चित्त का, जब दोनों का समन्वय हो जाता है। तो मुनिवरों! बाह्य और आन्तरिक दोनों के वित्तों को जान करके प्रत्येक अंकुरों का वह ज्ञाता बन जाता है। प्रत्येक अंकुरों में अन्तर विरोध होने लगता है।

मेरे पुत्रो! मैं चित्तों की विवेचना नहीं करूंगा। विचार यह करने के लिए आया हूँ योगस्यम् ब्रह्मलोकाः चित्तम देवाः। मेरे प्यारे! चित्त की नाना प्रकार की जो बिखरी हुई प्रवृत्ति हैं उनको एकाग्र करने का नाम, मेरे पुत्रो! योग कहा जाता है। उसी को योग में हमारे यहाँ परणित कहा जाता है। परन्तु चित्त का जो भण्डार है वह मनस्तत्व है। इसीलिए जब मन विकल्प करने लगता है संकल्प को त्याग देता है। तो असंकल्प करने लगता है, तो बेटा! वहाँ मानव की प्रवृत्ति पुनः विकृत हो जाती है। विकृतता में परणित हो जाती है। जैसे मेरे पुत्रो! नाना प्रकार के पार्थिव तत्व, पार्थिव परमाणु एक ढेले के रूप में मानव को दृष्टिपात आने लगते हैं विचार आता है मार्कण्डेय ऋषि ने कहा कि महाराज! मेरा तो उद्दगाता भ्रष्ट हो गया है। मेरा उद्गाता स्वार्थपरता में आ गया है। तो विचार क्या है कि मानव की जो प्रवृत्तियों में जो विचार अंकित होता है वह स्वार्थपरता में होता है जब इन्द्रियों में स्वार्थपरता आ जाती है, मन में स्वार्थपरता आ जाती है, तो मानव का यौगिकपना है वह समाप्त हो जाता है। यौगिकवाद समाप्त हो

जाता है।
विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! इस मन को विचार विनिमय करना है। ये जो मन है, यह पृथ्वी के नाना प्रकार के खनिजों को जानने वाला है। यह मन बेटा! जो खनिजों में जो विभक्त क्रिया हो रही है, वह मन के ही तो कारण होती है। अन्यथा नाना खनिजों को एक ही बचन माना गया है। बहुवचन खानाकृतिः देवाः। जब हम खनिजों में जाते हैं, तो बहुवचन की उत्पत्ति होती है बहुवचन में बेटा! मनस्तत्व विद्यमान रहता है। यदि मनस्तत्व नहीं रहेगा। तो बहुवचन का इस पृथ्वी का कारण ही नहीं बनता। यह मन के द्वारा बना कहता है। तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! एकोः की भृष्यतम्। हम इस मन के विचार, मन के ऊपर मनन करना प्रारम्भ करते हैं।
आओ मेरे पुत्रो! विचार विनिममय क्या? अब इस मन को जानने के लिए मन को अपना उद्गाता बनाएं। जब उद्गाता का छेदन हो जाता है, असुरों से छला जाता है। तो पुनः इसका शोधन कर लेना चाहिए। यह जो पिण्ड बना हुआ है। यह पिण्ड कैवल मन के ही कारण बना हुआ है। हम पिण्ड के रूप में इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करते हैं। हम जब यज्ञिक रूप के स्वरूप से दृष्टिपात करते है। तो मुनिवरों! इसको हम परमाणुओं में, इसको हम आभा में दृष्टिपात करते हैं।
माता के गर्भ स्थल में निर्माण होता है। परन्तु परमाणुओं का संकल्प होकर परमाणुओं के पिण्ड का निर्माण होता है। वह जो निर्माण हो रहा है। वह भी मनस्तत्व के कारण हमें दृष्टिपात होता है। परन्तु जब मन उद्गीत ही प्रतीत होता है। वहाँ भी माता के गर्भ स्थल में भी पिण्ड में ही हमें उद्गीत ही प्रतीत होने लगता है। उसमें एक भावना है, एक संकल्प है। क्योंकि मैं जब अपनी माता से यह प्रश्न करता हूँ माता तेरा जो पुत्र है। वह क्या है? तो मेरे प्यारे! माता कहती है, यह मेरा पुत्र है। परन्तु पिता से कहते हैं, यह क्या है? पुत्र है उस समय यह कहा जाय कि यह क्या है? क्या का कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। परन्तु दर्शन इसका उत्तर दे रहा है।
इसका उत्तर देता हुआ दर्शन कहता है कि यह माता पिता के मन का एक संकल्प है। मेरे पुत्रो! पुत्र क्या हुआ? पुत्र पुत्री क्या हैं? यह माता का संकल्प है। संकल्प कहाँ से

होता है? यह उद्गीत गाने वाला उद्गाता गान गा रहा था। मन के द्वारा गान गा रहा था। यह संकल्प मात्र से बेटा! । सन्तानों की सन्तान बनी। पिता की सन्तान बनी। यदि संकल्प उसके साथ नहीं होगा, तो वह माता पिता का पुत्र भी नहीं होगा, पुत्री भी नहीं होगी। जब हम उसको संकल्प मात्र से ही दृष्टिपात करें। और जब मुनिवरों! नए संकल्प में चले जाते हैं, तो हम जब संकल्प कर रहे थे। वह संकल्प असंकल्प में परिवर्तित हो जाता है। और असंकल्प में कैसे परिवर्तित होता है? प्रत्येक मानव को यह ज्ञान है वेदों में। माता पिता का पुत्र था। ऐसे ही मेरा भी तो संकल्प पुत्र बन करके आ गया है। वह संकल्प ही पुत्र बन करके पुत्री बन करके आ रहा है। मुझे भी उस संकल्प को ज्ञान में परिवर्तित कर देना चाहिए। जब वह ज्ञान में परिवर्तित हो जाता है। मेरा कर्त्तव्य समाप्त हो गया है। अपने प्रभु के द्वारा मेरा संकल्प होना चाहिए। अब मेरा इनमें मनता में परणित मुझे नहीं रहना है। मुझे केवल अपने प्रभु से मनस्तत्व को प्राप्त करना है। वह संकल्प याज्ञिकवाद में परणित हो जाता है। वहाँ कर्त्तव्यों का पालन हो गया है। मुनिवरों! कर्त्तव्यों का पालन करकै, संकल्प करके बेटा! वही संकल्प प्रभु में जब परणित हो जाता है तो उसे हम सन्ध्या, उसे संधि हम कहते हैं।

मेरे प्यारे! संधि कहाँ हुई? हम संकल्प करें। जैसे प्रभु ने यह संसार रचाया है। और संसार रचाने के पश्चात् इसमें व्याप रहा है। आत्मा इसमें भोगामृत भोग रहा है। मन के द्वारा संकल्प किया जा रहा है। यदि वही प्राणी उस पुत्र पुत्री के संकल्प में, मेरा करके कर्त्तव्यवाद में परणित हो जाता है। क्या? मेरी सेवा होनी चाहिए। मेरे मेरा संकल्प में सेवा, सेवक बने तो मुनिवरों! देखो, वह सेवक, अरे, सेवक तुम क्यों बनाते हो? यदि तुम्हें सेवक बनना है, तो प्रभु! के सेवक बना! संकल्प का कर्त्तव्य का पालन हो गया है और सेवक प्रभु का हमें बनना है। हम यदि सेवकाम् ब्रह्मलोकाः।

मुझे एक वार्त्ता स्मरण आ गई बेटा! इस संदर्भ में। मुनिवरों! तुम्हें स्मरण होगा चाक्राण ऋषि की वार्त्ताएं। चाक्राण ऋषि बेटा! एक समय जब अकाल हो गया। संवत् अकाल होने के शिवात् मुनिवरों! पत्नी के प्राणांति होने लगे। अन्न के बिना। अन्न प्राप्त नहीं हुआ तो बेटा! चाक्राण ऋषि से देवी कहती है कि महाराज! मेरा मन और प्राण दोनों इस

शरीर से जा रहे हैं, मेरा प्राणान्त होने वाला है। प्रभु! मेरी रक्षा करो! क्योंकि रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है। उन्होंने रक्षार्थ के लिए गमन किया और एक हाथीवान् उर्ध्व मादुताकृतियों देखो,! वहाँ से वह पान कर रहा था। महर्षि चाक्राण ने भिक्षाम् देहि, जब भिक्षा को प्राप्त करने लगे कि महाराज! मुझे भिक्षा दो! अब देखो, वहाँ उस हाथीवान् ने कहा कि महाराज! ले लो! मेरे तो ये अन्न अशुद्ध हैं। उन्होंने कहा जल की इच्छा नहीं। तुम शूद्र हो। यह शूद्र कह करके बेटा! वे मौन हो गये। हाथीवान् बोले कि महाराज! मैं इस रहस्य को जान नहीं पाया हूँ। आपने मुझे जल के लिए शूद्र कहा है और मेरे अशुद्ध अन्न (माष उरद) को जो मैं पान कर रहा था उसके लिए आपने शूद्र नहीं कहा है। यह मैं नहीं जान पाया हूँ। उस समय चाक्राण ऋषि कहता है कि महाराज! जिस वस्तु को मैं स्वतः प्राप्त कर सकता हूँ उस वस्तु में दूसरों का, मैं आश्रित न बनूं। यदि मैं दूसरों का आश्रित बन गया तो मैं और वह दोनों शूद्रता में परणित हो जाएंगे। अन्न का अभाव है। अन्न संवत् अकाल से समाप्त हो गया है। अन्न से प्राणों की रक्षा होगी, इसका अभाव है। अभाव की मैं भिक्षा कर रहा हूँ। इस जल का अभाव नहीं, इसको भिक्षा करने की मुझे आवश्यकता नहीं है। मेरे प्यारे! चाक्राण ऋषि कहता है हाथीवान् से कि हाथीवान् इसीलिए मैंने तुम्हें शूद्र कहा है। क्योंकि तुम्हारी प्रवृत्ति में यह आ गया कि यह मेरे आश्रित है। जो अपने को आश्रित स्वीकार करता है। मेरे पुत्रो! वेद के ऋषियों ने उसे शूद्र कहा है।

आचार्यों ने कहा कि कोई किसी के आश्रित नहीं होता बेटा! । दर्शनों की दृष्टि में, यौगिक दृष्टि में जब योग का तत्पर करते हैं तो मेरे प्यारे! वहाँ शूद्रपना उसमें आता है जहाँ जो सुयोग्य है, कर्म कर सकता है। मेरे प्यारे! योगाचर कर सकता है वह दूसरों का आश्रय लेता है। तो मेरे पुत्रो! वेद के आचार्यों ने, ऋषियों ने उसे शूद्र कहा है। तो मुनिवरों! देखो,! यह उच्चारण करके हाथीवान् की शंका निर्वारण हो गई। और चाक्रण ऋषि उस माष (माह, उरद) को ले करके गए। मुनिवरों! अपनी पत्नी के द्वार पर पहुंचे। पत्नी से कहा, देवी! यह लीजिए। इनको पान करने से उसके प्राणों की रक्षा हो गई। मेरे पुत्रों! देखो,! विचार विनिमय क्या है? इसीलिए हमें दूसरों के आश्रित होने का भी

संकल्प नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह विकल्प बन जाता है। उस विकल्प को हम क्यों कर? वह तो हमारा जो संकल्प हमारे आश्रित हो रहा था। आज हमारा देवी हम स्वतः उसके आश्रित हो गए। तो यह हमारा अशुद्ध संकल्प हो गया है। इसीलिए बेटा! देखो,! वेद के आचार्यों ने ऋषि मुनियां ने कहा है कि हे मानव! तू इस मनस्तत्व को जानने के लिए, इस मन से शुद्ध संकल्प से उद्गाता बन। उद्गान गाने वाला बन।

मेरे प्यारे! देखो, महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज उद्गान गा रहे थे। उद्गाता बन रहे थे। मुझे स्मरण आता रहता है। जब बेटा! वेद के ऋषि विद्यमान हो करके विचार विनिमय करते थे कि क्या हम मन को उद्गाता बना रहे हैं। बेटा! वही उद्गाता वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में समाहित हो जाता है। वैज्ञानिकों के द्वार पर चला जाता है। इसी संकल्प के द्वारा विज्ञान के परमाणुओं में गति करने लगता है। जब परमाणुओं में गति करने लगता है तो मुनिवरों! विचाराम् गृत देवम् ब्रह्मलोकाः। , वह जब इस एक एक परमाणु को ले करकै, वह एक एक परमाणु में संसार का चित्रण, और चित्र को दृष्टिपात करता है। अपने संकल्प को भी वह उस चित्र, में वह उस परमाण में दृष्टिपात करता रहता है।

मेरे प्यारे! एक मानव ने संकल्प किया है और वह संकल्प प्रभु के आश्रित होने का है प्रभु के द्वार पर जाने का है। बेटा! उस का परमाण उसका चित्र बन करके अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। गति करता हुआ वही मनस्तत्व को जानने वाला ऋषि योग में परणित हो करकै, जो परमाणुओं का चित्र बन करके अन्तरिक्ष में गति कर रहा था उसके ऊपर मनस्तत्व उदान वायु पर आत्मा विद्यमान हो करके शरीराम् ब्रह्मलोकाम् मृत्यु देवाः। , वह जो मानव का शरीर था। उसी संकल्प के द्वारा वायु की उड़ान उड़ने लगता है उस मन के द्वारा। क्योंकि वह जो चित्त विद्यमान होता है वह बाह्य चित्त में गति करने लगता है।

मेरे पुत्रो! वह जो विज्ञान है। इन परमाणुओं को जान करके वह चित्र पृथ्वी पर आता है। अब संकल्प करता है कि मुझे उस संकल्प के द्वारा मुझे उन परमाणुओं को एकत्रित करना है। अब परमाणु एकत्रित करता है। कहीं वृक्षों की पत्तियों, वृक्षों की जो धराएं

हैं, उनमें जो परमाणु उत्पन्न होते हैं, उनको एकत्रित करता है। कहीं अग्नि के द्वारा जो धाराएं उद्बुद्ध हो रही हैं, उनको एकत्रित करता है। एकत्रित करके उनको एक स्थूल में लाता है। स्थूल में ला करके चित्रावलियों का निर्माण कर देता है। और चित्रावलियों का निर्माण करकै, उन चित्रावलियों का जिनमें पिता महापिताओं के दर्शन होते हैं। जिनमें वह जो संकल्प किया हुआ हमारा अन्तरिक्ष में गति कर रहा था। उस अन्तरिक्ष में से उस मन के संकल्प को उस मनस्तत्व के संकल्प से जिस यन्त्र का निर्माण किया है, वही यन्त्र अन्तरिक्ष में से उन परमाणुओं का जो रथ बना हुआ था, जो आकार बना हुआ था। मेरे पुत्रों! देखो, जो रथ बन करके चित्त में चित्रण हो रहा था। वह चित्त में चित्रण हो करके वह चित्र बन करके अन्तरिक्ष में से उसमें उस मन को आभामयी वैज्ञानिक संकल्प के द्वारा बेटा! यन्त्र में वह चित्र दृष्टिपात होने लगता है।

मेरे प्यारे! यहीं तक नहीं। जो एक स्थली पर विद्यमान हो करके वायु में चित्र को त्याग देते हैं। यह ही नहीं वेद के ऋषियों ने तो यहाँ तक जाना कि हमने संकल्प किया बाल्यकाल में और हम वैज्ञानिक मन के द्वारा संकल्प करके वह बाल्यकाल में जो हमारा संकल्प किया हुआ था वह वायु मण्डल में, चित्त में विद्यमान है। वह बाह्य चित्त से वह अपने जैसे मस्तिष्क में चित्रण होता रहता है। ऐसे ही यन्त्रों के द्वारा वह चित्रण होता रहा है।

मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें विज्ञान के युग में ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार क्या? मेरे पुत्रो! देखो, मन के लिए हम उद्गाता बनें। हम मन को उद्गाता बना करके उद्गीत गाने वाले बनें। जब तक मन को उद्गीत नहीं बनाएंगे, तब तक मेरे प्यारे! हम आभा में परणित नहीं होंगे। हम परमात्मा के पुत्र परमात्मा के आश्रित नहीं बनेंगे। हम संसार के असंकल्प करते हुए हम जो हमारे आश्रित थे, इससे पूर्व भी हम उसके आश्रित बनना चाहते हैं। यह हमारी प्रतिभा है। यह हमारे लिए घृणितता है। यह हमारे लिए घृणिता संकल्प है पुत्रो।

मेरे पुत्रो! अहा! विचारना क्या है? कि इस मन के द्वारा हम, वायु मण्डल में गति करना चाहते हैं। जैसे यह मन उड़ान उड़ता है। कैसे उड़ान उड़ता है? जैसे एक मानव ने एक

राष्ट्र को दृष्टिपात किया है, और सर्वत्र राष्ट्र का भूषण उसने किया है और वह राष्ट्र का जो चित्र बन करके अन्तःकरण के चित्त में विद्यमान हो गया है। चित्रण हो गया है। उसका अब उसको हम कहीं विद्यमान हो करके शान्त मुद्रा में हम उस राष्ट्र का, जब स्मरण करते हैं, उस स्मरण शक्ति में, चित्त में ही उसका चित्रण हो रहा है, और मन उड़ान उड़ रहा है। इसी प्रकार वैज्ञानिक जब विज्ञान के युग में प्रवेश करता है, वैज्ञानिक क्षेत्रों में प्रवेश करता है, तो वह उड़ान उड़ता है यह पृथ्वी मण्डल है। मुझे पृथ्वी मण्डल से बाह्य उड़ान उड़नी चाहिए। वह मंगल में उसकी उड़ान मन की मन के संकल्प के द्वारा जाती है और मंगल से उड़ान उड करके बेटा! वह नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की माला बना लेता है। वहाँ का जितना भी क्रिया कलाप है वहाँ की जितनी भी धाराएं हैं चित्रणाता है यह मन यौगिक बन करके उसका चित्रण कर लेता है। और चित्रण करके वह बाह्या जगत् में मन के संकल्प के द्वारा वह यन्त्रों का निर्माण करता है।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है। मैंने कई काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा है कि महात्मा ध्रुव देवर्षिः नारद मुनि के द्वारा योगाभ्यास करते थे। मानो संकल्प करते थे। तो ध्रुव यान की कल्पना बन गई। ध्रुव यान की मन से कल्पना बनी। मन को ध्रुव मण्डल में ले गए और ले जा करके उसके पश्चात् ध्रुव यान का निर्माण किया।

मेरे पुत्रो! विचार क्या? संकल्प हमारे यहाँ इतना उदार और महान् होना चाहिए। इस संकल्प के द्वारा हम दूसरों के आश्रित न बनें। क्योंकि संकल्प से हम प्रभु के आश्रित बनते हैं, और असंकल्प से बेटा! जो हमारा ही संकल्प है, हम दूसरों के आश्रित बन जाते हैं, तो यह तो प्रियता नहीं है, यह कोई मानवता नहीं है। विचार विनिमय क्या? ऋषि मुनियों ने बहुत अनुसन्धान किया। आज मैं उस अनुसन्धान बेला में जाना नहीं चाहता हूँ। आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण गान गाते हुए, शुद्ध संकल्प वादी बनते हुए, यह जो संसार सागर हमें दृष्टिपात आ रहा है इससे हमें पार होना है। हमें अपने जीवन को याज्ञिक बनाना है, याज्ञिकवाद में परणित होना है।

कल का विचार बेटा! हमारा यह रहेगा कि हम मन को कैसे शुद्ध संकल्प में ला सकते

हैं? कैसे हम किसके आश्रित हों? मन को भी उद्गाता बना है और उद्गाता बन करके अशुद्ध विकल्प से दैत्यों ने इसको छेदन कर दिया है। और कल तुम्हें मैं यह निर्णय दूंगा। यौगिक क्षेत्रों में पहुंच करके हम इस मन को त्याग करके हम किसको अपना उद्गाता बनाएं? जिसे उद्गाता बनाने से हमारा उद्गीत पवित्र बन जाए।

बेटा! आज का विचार विनिमय क्या? कि हम परमपिता परमात्मा का संकल्प करते हुए मानो ज्ञान, कर्म, उपासना का अहा! अपने में धारणा को अपनाते हुए हम इस मन के द्वारा मन को उद्गीत बना करके, उद्गाता बना करके इस शरीर रूपी जो यज्ञशाला प्रभु ने रची है इस शरीर रूपी यज्ञशाला को बेटा! हम कैसे इसमें सफलता को प्राप्त कर सकते हैं? मेरे प्यारे! यह जो पिण्ड है, मानो शरीर है यह एक प्रकार की यज्ञशाला है। इसमें उद्गान गाया जा रहा है, उद्गीत गाया जा रहा है। यज्ञमान सांत्वना से श्रवण कर रहा है। ब्रह्मा इसको निरीक्षण कर रहा है। मैं कल तुम्हें जो उद्गाता विशेष है उसे उद्गाता बनाने से हम छिन्न भिन्न कर सकते हैं। असुरां को। असुरों को विजय करने की वार्त्ता हम कल प्रगट करेंगे। आज का वाक् समाप्त।

आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि प्रत्येक मानव योगी बनना चाहता है। योगी वह उसी काल में बनेगा, जब बेटा! हमारा उद्गाता पवित्र होगा। हमारा संकल्प पवित्र और हम उस संकल्प को याज्ञिकवाद में ले जाएंगे। क्योंकि संकीर्णवाद में तो पापाचरण हैं और शुद्ध संकल्प में, पवित्रता में, उसमें प्रकाश है। मृत्यु नहीं होती। रात्रि जब नहीं होती तो मृत्यु भी नहीं होती। और जब मृत्यु नहीं होती तो बेटा! अज्ञान भी नहीं होगा तो बेटा! रात्रि भी नहीं होगी। क्योंकि ज्ञान में, प्रभु के राष्ट्र में बेटा! रात्रि नहीं होती। जब रात्रि नहीं होती तो सदैव प्रकाश रहता है वहाँ मृत्यु का भय प्राणी को बना नहीं रहता। बेटा! यह आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठन होगा। उसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त होने जा रही है। आर्य समाज, शक्तिनगर, अमृतसर

८ 21 04 1979 रात्रि संकल्प शक्ति की महत्ता

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने

पूर्व से, निज वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। उसकी प्रतिभा इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत हैं।

आज का हमारा विचार वेदमन्त्र हमें नाना प्रकार की प्रेरणा दे रहा था। मानव को उच्चारण कर रहा था, हे मानव! तू गान गाने वाला बन। तू गान रूपों में अपने प्रभु की महिमा का गान गाता रह, जिससे तेरा मानवीयतव पवित्र बनता हुआ, यह जो संसार रूपी सागर तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है, इस संसार रूपी सागर से तुम पार हो जाओ। प्रातःकाल में साधक विद्यमान है, वह अपने प्रभु का गान गा रहा है, अपने प्रभु की गाथा गा रहा हैं और वर्णन कर रहा है, हे देव! आप तो इस महान् जगत् में, कण कण में व्याप्त हो। कोई स्थली ऐसी नही हैं जिस स्थली पर आपका वास न हो।

आप कैसे अनुपम है, कैसे देव है? जो इस संसार को रचाकर इसका संचालन हो रहा है। कोई संसार का परमाणु एक स्थली पर स्थिर नहीं रहता। वे परमाणु गति कर रहे है और यह संसार गतिवान हो रहा है। पृथ्वी अपनी आभा पर गति कर रही है, सूर्य अपनी आभा पर गति कर रहा है, चन्द्रमा अपनी आभा पर गति कर रहा है। मेरे प्यारे! पञ्च महाभूतों के जो परमाणु है, अपनी अपनी आभा पर गति कर रहे है। यह संसार गतिशील रहा है, गतिशील है। यह तेरी कैसी अनुपमता है?

हे माँ! तुझे वेद ने वसुन्धरा नामों से वर्णन किया है। तुम जहाँ पिता हो वहाँ मातेश्वरी भी तुम्ही कहलाती हो, तुम कैसी भोली माँ हो, तुम कैसी मेरी पवित्र माँ हो? तुम ममतव को प्राप्त होती हुई मेरे माँ वसुन्धरा कहलाती हो। यह संसार, यह सवर्त्र ब्रह्माण्ड आप में समाहित हो रहा है। जैसे हम माता के गर्भस्थल में विद्यमान हो करे हमारे सर्वागों का निर्माण हो रहा है। मानो सर्व अङ्ग माता के गर्भस्थल में हिरण्यमयी गर्भों में विद्यमान रहते है।

इसी प्रकार यह जो सवर्त्र ब्रह्माण्ड हे, यह अपने में गति कर रहा है। हे वसुन्धरा! यह तेरे ही गर्भस्थल में गति कर रहा है। वेदों ने नाना रूपों में तेरा वर्णन किया है। जहाँ

तेरा वर्णन नामों से वर्णित है। तुझे वसुन्धरा कहते हैं क्योंकि यह सब जितना भी वसु हे वह तेरे में वशीभूत हो रहा है।

बेटा! पर्यायवाची शब्द है। मैं इनमें जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु हे भोली ममतामयी! तू इस संसार को रचा कर तू इसका पालन कर रही है। तू पालन करने वाली है। तू कैसी मेरी श्रद्धामयी देवी है। जब तू किसी मानव के हृदय में जागरूक हो जाती है तो यह मानव तुझे प्राप्त हो जाता है जब यह तेरी श्रद्धामयी ज्योति जागरूक हो जाती है तो वह ज्योति वन करके अनुपमता को प्राप्त होती रहती है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि यह संसार हे श्रद्धामयी देवी तेरे वशीभूत हो रहा है। हिरण्यमयी गर्भा यह तेरा गर्भाशय है सवर्त्र ब्रह्माण्ड। इसमें प्रत्येक मानव विद्यमान है, प्राणी मात्र विद्यमान है, गति कर रहा हे, ओजस्वी बना रहा है।

आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि वेद तुम्हें विष्णु कहता है। जहाँ वसुन्धरा कहता है वहाँ विष्णु भी कहता है। वेद मन्त्रों में आता है विष्णु व्रताम् देवाः हिरण्यम् बृहीः। तू विष्णु है, पालन करने वाला है, पालन कर रहा है। मेरे प्यारे! वह महान् देव विष्णु बन करके संसार का पालन कर रहा है। जितना भी, जहाँ भी तुम रक्षा दृष्टि से दृष्टिपात करेगे, वह तुम्हें प्राप्त होने लगेगा।

आओ मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हे इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चाएँ अथवा इस उपासना काण्ड में तुम्हें ले जाने के लिए नहीं आया हूँ। मेरे प्यारे! मैं उच्चारण कर रहा था, इससे पूर्व शब्दों में संकल्प शक्ति। जब मानव का संकल्प इतना विशाल बन जाता है, उसकी चरित्रता उसकी महानता इतनी विशाल बन जाती है कि सर्पराज, मृगराज, सिंहराज उसके चरणों की वन्दना करने लगते है। उसमें ओत प्रोत हो जाते है। मेरे प्यारे! जब मानव गान गाता है, उस गान से मुनिवरों! देखो, वह संसार से मुक्त हो जाता है। वह प्राणेश्वर का गुणगान गा रहा है, ध्वनि हो रही है और उस ध्वनि को प्रत्येक प्राणी श्रवण कर रहा हैं।

इससे पूर्व शब्दों में तुम्हें चाक्राणि की चर्चा कर रहा था। इससे पूर्व शब्दों मैं तुम्हें विदुषी

द्रौपदी की चर्चा कर रहा था। उनका जीवन कितना विशाल? कितनी विशालता उनके जीवन में थी। क्योंकि जब मेरी पुत्रियों के हृदय में विशालता होती है, त्याग और तप होता है उनका जीवन ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो जाता है।

मैं तुम्हे यह विचार दे रहा था कि मुनिवरों! सभा में एक विदुषी विद्यमान है और उस विदुषी को कोई स्पर्श नहीं कर सका क्योंकि चरित्र की जो अग्नि होती है, वह इतनी विशाल होती है कि पापी के भुजबल समाप्त हो जाते है, वे निष्क्रिय बन जाते है। राष्ट्र के सहस्रो व्यक्ति मौन हो जाते है।

मै उच्चारण कर रहा था, द्रौपदी की चर्चाएँ। हस्तिनापुर के क्षेत्र में बेटा! एक अग्नि का काण्ड स्थापित हो गया। अग्नि काण्ड उसे कहते है जहाँ विनाश हो जाएं। जहाँ भयंकर अग्नियाँ प्रदीप्त हो जाएं और वह विचारों में प्रथम अग्नि प्रदीप्त होती हैं। जिस राजा के राष्ट्र में चरित्र मानवता नहीं रहती, उसका राष्ट्र भ्रष्ट हे जाता है। जहाँ मेरी पुत्रियों के सतीत्व को हनन करना, जिस राजा के राष्ट्र मे, मानो देखो, वह राष्ट्र अग्नि का क्षेत्र बन करके रहता है।

मैने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हूँए कहा था मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आती रहती है भगवान कृष्ण की चर्चाएँ, उनकी वार्ताएँ उनके जीवन में सदैव प्रकाश रहता था। वे रक्षक थे, वे सदैव रक्षा करते थे। अपने जीवन की प्रथम और द्वितीय किसी अमृताम बृहिः वृताम। कोई भी प्राणी आ जाएं उसकी रक्षा करना उसका कर्त्तव्य था। मेरे पुत्रो, वे जब वेद की रक्षा करने में लग जाते तो वेद की रक्षा करते रहते, उन्हें क्षुधा भी नहीं लगती थी।

मेरे पुत्रो! जिस समय महारानी द्रौपदी ने अपने पाँचो कुटुम्बियों को और अपने पति को ले करके राष्ट्र स्थली को त्याग दिया, अस्त्रो शस्त्रों के भण्डार को भी अग्नि में अर्पित कर दिया। भयंकर वनों में जा पहूँचे। उस भयंकर वन में पहुँचे जहाँ वे अपने में भ्रमण करने वाले, कोई भी प्राणी उनकी रक्षा में लग गये।

भगवान कृष्ण उनसे थोड़ी दूर स्थली पर एक वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहे थे। वे विज्ञान का अनुसन्धान करते थे और मुनिवरों! उनके आश्रम में जहाँ अनुसन्धान करते थे और

भी शिक्षार्थी विद्यमान होते थे और महारानी रूक्मिणी भी रहा करती थीं। महारानी रूक्मिणी भी बेटा! उनके द्वारा, वह भी अनुसन्धान करती रहती थीं।
एक समय वे एक यन्त्र का निर्माण कर रहे थे और वह यन्त्र ऐसा था कि मैं दिवस की रात्रि कैसे बना सकूं? क्योंकि यह सूर्य अस्त हो जाता है, अन्धकार आ जाता है, रात्रि आ जाती है। नेत्र अन्धकार में अपने को दृष्टिपात करने लगते हैं। यह कैसे अन्धकार आता है? और कहाँ से आता है? तो मुनिवरों! उन्होंने एक त्रुकेतुक विशारद कृत नाम के यन्त्र का निर्माण किया था और उस यन्त्र में उन्होंने पार्थिव तत्त्वों को जानने की, पार्थिव परमाणुओं को एकत्रित करने का प्रयास किया।
मेरे पुत्रों! उन तत्त्वों को एकत्रित करने के पश्चात उन परमाणुवाद को यन्त्रों में स्थित कर लिया, जिन परमाणुओं से सूर्य के आदित्य की किरणों को निगल जाए और रात्रि छा जाए और किरणें वहीं शान्त हो जाए। वह यन्त्र उन्होंने निर्मित किया। जब निर्माण कर लिया तो उसका परीक्षण भी किया गया। जब परीक्षण हुआ तो दिवस की रात्रि छा गई। रात्रि के छाने के पश्चात मुनिवरों! जब अन्धकार हो गया तो महारानी रूक्मिणी सहायक थीं उन्होंने द्वितीय यन्त्र का निर्माण किया था प्रकाशाम् सबेह वृतसम् देवत्य नाम का यन्त्र था। उसमें यह था कि यदि उस यन्त्र को त्याग दिया जाए, उसका प्रहार कर दिया जाए तो अन्धकार के परमाणुओं को निगल लेता। सूर्य की किरण ज्यों की त्यों उसके प्रकाश में आ जाए। मेरे प्यारे! उन्होंने इन दो यन्त्रों का निर्माण एकांत स्थली पर भयंकर वनों में किया था।
इस यन्त्र की विशेषता भीम के पुत्र घटोत्कच भी जानते थे। इस प्रतिक्रिया को कर्ण भी जानते थे। परन्तु यन्त्र का निर्माण उन्होंने नहीं किया। तुम्हें प्रतीत होगा बेटा! जिस समय महाभारत का युद्ध हुआ, उस समय उस यन्त्र को भगवान कृष्ण के त्यागा था। दोनों यन्त्रों का प्रतिपादन हुआ और समय हुआ जब अभिमन्यु का निधन हो गया। जयद्रथ ने उनके लिए धृष्टता की। तब मुनिवरों! जब सुशमी के यहाँ से भगवान कृष्ण और अर्जुन दोनों का आगमन हुआ और अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की कि में सूर्य अस्त

होने से पूर्व जयद्रथ का विनाश कर दूंगा।

परन्तु अब जब अर्जुन अपने में ह्रास होने लगे, जयद्रथ प्रतीत नहीं हो रहा था कहाँ है, तां उस समय भगवान् कृष्ण ने अपनी आकाशवाणी के द्वारा महारानी से कहा, त्रुकेतुक विशारद कृत अन्वेषण यन्त्र छा जाना चाहिए। अब मुनिवरा! जब उन्होंने यन्त्र का प्रहार किया, वह छा गया, सूर्य समाप्त हो गया। भगवान् कृष्ण बोले अर्जुन! सूर्य समाप्त हो गया है चिता तैयार करो। तब अर्जुन अग्नि की चिता मरण शैय्या पर विद्यमान हो गए। जब मरण शैय्या पर विद्यमान हो गए तो जयद्रथ इत्यादि सब युद्धस्थल पर समूह एकत्रित हो गया। क्योंकि एक जो पाण्डवों में सेनापति था, इस युद्ध का सर्वेसर्वा उसका निधन हो रहा है, अग्नि में प्रवेश हो रहा है। सब कौरव इत्यादि दृष्टिपात करने आगे आए साथ में जयद्रथ भी आया।

तब भगवान कृष्ण ने अपनी आकाशवाणी से रूक्मिणी को पुनः प्रहस्त किया, और यह कहा कि अब प्रकाशाम् सबेह वृताम् देवाः प्रहारास्तुति। मेरे प्यारे! महारानी रूक्मिणी ने वही किया, सूर्य उदय हो गया। सूर्य तो बेटा! उदय था ही, वह अन्धकार समाप्त हो गया तब भगवान कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! जयद्रथ तुम्हारे समीप है, सूर्य अभी उदय हो रहा है, सूर्य का प्रकाश आ रहा है। तब अर्जुन ने अपने अस्त्रों शस्त्रों से अपने गाण्डीव शस्त्र से उनके कण्ठ के ऊपर ले भाग को देर कर दिया। भगवान् श्री कृष्ण बोले अर्जुन! तुम्हारा मस्तिष्क भी नीचे गिर जाएगा। यदि इसका मस्तिष्क भूमि पर गि गया। तब अर्जुन ने द्वितीय यन्त्र का प्रहार किया सन्कल्प शक्ति का वह यन्त्र था।

मुझे स्मरण है जब वह यन्त्र गति करता हुआ, जयद्रथ के पिता, गङ्गा के किनारे संध्या का पाठ कर रहे थे, मानो, गान कर रहे थे प्रभु के आँगन के लिए उनकी गोद में जा करके वह जयद्रथ के कण्ठ का ऊपरला भाग जा करके पहुंचा, तो मुनिवरों! पिता और पुत्र दोनों ही समाप्त हो गए।

तो बेटा! यह विज्ञान कहाँ से प्राप्त होता है मानव को? यह वेद की परम्परा से इस वेद की आभा में सर्वत्र विज्ञान विद्यमान है। मुझे स्मरण है, मैं आज उस तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना नहीं चाहता हूँ आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हमारे

यहाँ इस प्रकार का विज्ञान बुद्धिमानों के मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है। बुद्धिमानों की आभा में गति करता रहा है।
मेरे पुत्रो! वह महाराणा, प्रहाः कृतः देवा जब महाराजा अर्जुन का अपने आसन पर विद्यमान हो करके भयंकर वन में महाराजा कृष्णा से मिलान होता, चर्चाएँ होती, अस्त्रों शस्त्रों की चर्चाए होती रहती। तो मेरे पुत्रो! देखो, उन्होने नाना प्रकार के अस्त्रो शस्त्रो को जाना, वैज्ञानिक क्षेत्र में उनकी जितनी गति थी, उतनी उस समय किसी भी प्राणी की गति नहीं थी। वे सर्व वेद की सुगठित रक्षार्थ में लगे थे।
एक समय बेटा! भगवान् कृष्णा और अर्जुन अनुसन्धान कर रहे थे। विचार विनिमय चल रहा था। उन मन्त्रों में वे रमण कर रहे थे। रमण करते हुए उन्हें तीन दिवस हो गये। अन्न का भी पान नहीं किया। उन्हें संसार का ज्ञान ही नहीं रहा वेदों में वे इतने संलग्न हो गये। उन्होंने इस संसार को क्षेत्र क्षेत्र कहकर स्वीकार किया कि यह संसार तो क्षेत्र है और क्षेत्र है चेतन।
बेटा! ऐसा उच्चारण किया, ऐसा प्रतिपादन करके वे इसी आभा में गति करने लगे। यह संसार तो एक क्षेत्र है यह विश्राम करने का क्षेत्र नहीं है यह गति करने का क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र में भगवान् परमात्मा विद्यमान है यह उन्होनें अपनी आभा में प्रगट किया। तीन दिवस हो गये, महारानी रूक्मिणी बोली, प्रभु! आप अन्न का भी पान नहीं कर रहे हैं। भगवान! कृष्णा ने कहा, देवी! मैं ऐसा भोजन पान कर रहा हूँ, ऐसा भोजन मुझे प्राप्त हो रहा है कि मुझे यह स्थूल शरीर का जो अन्न है वह मुझे स्मरण ही नहीं आ रहा है। मेरे पुत्रो! उनकी यह कितनी महानता थी।
मेरे प्यारे! देखो, वे उच्चारण कर रहे थे कि मैं सूक्ष्म शरीर के अन्नादि को पान कर रहा हूँ। जिससे तेरे जन्म जन्मांतरों के संस्कार पवित्र बन जाएं। जिससे मैं उस आभा में गति करने लगूँ, जिस आभा में गति करने के पश्चात मेरे नाना जन्मों की वार्त्ता मुझे स्मरण है। सौ सौ जन्मों की वार्त्ता उन्हें स्मरण रहती थी। मेरे पुत्रो! वह सब स्मरण शक्ति के द्वारा उनके विचारों में, उनके मस्तिष्क में, उनके क्षेत्र में स्मरण शक्ति अंकित

रहती थी।

मैं तुम्हें नाना प्रकार के यन्त्र वादों में नाना प्रकार के आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता और भौतिक विज्ञानवेत्ता के विषय में उच्चारण कर रहा था, मैं उसी वाक्य पर आ गया बेटा! कि यह आध्यात्मिवाद मानव का आत्मिक भोजन हैं। वार्त्ता श्रवण करना यह भी आत्मा का भोजन है। शरीर का पालन पोषण करना यह शारीरिक भोजन है और इस भोजन को जो मानव पान करता है, उसी भोज्य में रहता है।

बेटा! जो मानव आत्मा को भोजन नहीं देता वह आगे चल करके क्या लाएगा संसार में, उसके लिए क्या है? अरे, मानव! जैसे तुम रूपी भोजन को पान करते हो ऐसे आत्मा के भोजन को भी तो पान करने वाले बनो। आत्मा का भोजन भी तुम्हारे समीप होना चाहिए। वह आत्मा का भोजन क्या है?

मेरे प्यारे! वेद के विचारों को ले करके अपने विचारों की ऊर्ध्वा उड़ान ही यह आत्मा का भोज्य माना गया है। आत्मा के भोजन में तुम संलग्न हो जाओ। जैसे भगवान कृष्ण, जहाँ के राष्ट्रीय विज्ञान को भौतिकवाद में रमण करते रहते, वहाँ आध्यात्मिकवाद में वे क्षेत्र के और क्षेत्र की चर्चा करते रहते थे, वे सदैव उसमें रमण करते रहते थे। स्मरण शक्ति उन्हें जागरूक करती थीं उसी में सदैव गति करते रहते थे। उन गोपिकाओं में अर्थात् गोपनीय विषय में वे सदैव गतिमान रहते थे।

तो आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें आज यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हम प्रभु का गुणगान गाने वाले बनें। हे प्रभु! तू महान है, हे प्रभु! तू उज्ज्वल है। मानो, तेरी महिमा इस संसार में ओत प्रोत है। तो मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें विदुषी की चर्चा कर रहा था। जब भंयकर वन में आसन लगाया तो मेरे प्यारे! देखो, वहाँ ऋषि मुनियों का समूह उनके समीप आया। क्योंकि ऋषि मुनि उनके समीप आ करके वह भोज्य को प्राप्त करते, मेरे पुत्रो! उन्होने कहा हे महारानी तुम चाहती क्या हो? ऋषियों ने जब यह कहा ते उन्होंने कहा, प्रभु! मैं यह चाहती हूँ कि मैं यहाँ भंयकर वन में अतिथि सेवा तो कर सकूं। क्योंकि अतिथि मेरे द्वार पर आए उनकी मैं सेवक तो बनूं। क्योंकि मैं तो सदैव सेवक

हूँ।

संसार में प्रत्येक प्राणी सेवक है। मेरे प्यारे! कोई मानव मानव का सेवक है। कोई भी प्रभु का सेवक बन जाता है। परन्तु द्रौपदी ऋषियों से कहती हैं, मैं अतिथियों की सेवक बनना चाहती हूँ। तब ऋषि मुनियों ने उन्हें एक पात्र दिया। जो एक संकल्पमयी, शक्तिवादी बटलोई कहलाती थी। उस बटलोई में यह विशेषता थी कि उसमें कुछ अन्न प्राप्त होता और जब तक महारानी अन्न नहीं ग्रहण करती थी तब तक उसमें समाप्त नहीं होता था।

मेरे पुत्रो! हमारे आचार्यों ने वैदिक साहित्य में संकल्प शक्ति को एक महान शक्ति माना है यदि उस संकल्प, तप और निष्ठा के साथ होता है। मेरे प्यारे! वह संकल्पशक्ति के द्वारा ही अतिथियों की सेवा करती रही। बेटा! नाना प्रकार का भोज्य आता रहा। भगवान कृष्ण भी उनकी सहायता करते रहे। भयंकर वनों में द्रौपदी अतिथियों की सेवा करती रही। कोई भी अतिथि आ जाता, ऋषि मुनि आते, भोज्य प्राप्त करते, द्रौपदी प्रसन्न होती रहती।

बेटा! देखो, वह मेरी पुत्री कितनी सौभाग्यशाली होती है जो सदैव गृह में प्रसन्न रहने वाली है, सदैव गृह में जो प्रसन्न रहने वाली होती है, उनके गृह द्रव्य समाप्त नहीं होता, उनके गृह में सदैव प्रसन्नता रहती है। तो मुनिवरों! अतिथि सेवा करना यह मेरी पुत्रियों का कर्त्तव्य कहा जाता है। उनका चरित्र, उनकी निष्ठा उनमें सदैव लगी रहती है, परन्तु ऋषि कहते हैं, आचार्यों ने भी कहा है कि हमारे यहाँ प्रभु से प्रार्थना है कि हमारे गृह में ऐसे अतिथि होने चाहिए जो बुद्धिमान हों, जो सुचरित्र हों, जिनके विचारों की तरंगे हमारे शरीर में प्रवेश हो करके हमारा गृह भी पवित्र बन जाएं।

तो मेरे प्यारे! देखो, वे सदैव आभा में स्थिर रहने वाली थीं। एक समय महारानी द्रौपदी और और मुनिवरों! देखो, सोमकेतु ऋषि महाराज, मुद्गल ऋषि गोत्रय दोनों विचार विनिमय करने लगे। ऋषि मुनि महाराज से देवी ने कहा, प्रभु! कोई वार्त्ता होनी चाहिए। उन्होंने कहा, हे देवी! वार्त्ता क्या है? सदैव यह तुम्हारा जो तप है इस भयंकर वन में, प्रकाश में आ रहा है। यह तुम्हारा प्रकाश है। तुमने अपने जीवन में सदैव महत्ता को ही

अपना अग्रणीय कर्म बनाया है। तो मेरे पुत्रों! नाना ऋषियों की चर्चाएं होतीं, आत्मिक चर्चाएं होतीं, राष्ट्रीय चर्चाएं होतीं।

मेरे पुत्रों! दुर्वासा के शिष्य थे, सुदनमन्त ऋषि महाराज वे द्रौपदी के समीप आये। उन्होंने कहा, हम तो नामोकरण श्रवण करके द्वार पर आए हैं। हमने यह श्रवण ही किया है। आज हमें यह प्रतीत हो गया है कि जिस मानव में तथा देवी में और जिस पुत्री में दुष्चरित्रता आ जाती है तो उसका जीवन भ्रष्ट हो जाता है, उनके जीवन में आभा समाप्त हो जाती है। आज हे देवी! तुम्हारा जीवन प्रकाश में आ रहा है। केवल सुविचारों से ही प्रकाश में आ रहा है।

मेरे प्यारे! देखो, ऐसा कहा जाता है द्रौपदी के सम्बन्ध में कि, क्या मुनिवरों! देखो, तुमने श्रवण किया होगा, उनका वर्णतकेतु थे। वह द्रौपदी अपने सात जन्मों की वार्त्ता को जानती थीं वे सात जन्मों में क्या क्या रहीं। यह उन्हें स्मरण था। हमारे यहाँ जो संस्कारों की विचारधारा है, यह परम्परा से ही विचित्र मानी हैं ऋषि मुनियों ने बहुत अनुसन्धान किया कि हम पिछली जन्म की आभा में क्या क्या रहे और यह भी मानव जान लेता है, तप के द्वारा कि अग्रणीय आभाः युक्तम देवाः। मैं अग्रणीय आभा में क्या बन सकता हूँ।

मेरे प्यारे! कर्म का जो सिद्धान्त है, कर्म की जो धारा है वह बड़ी विचित्र, विलक्षण मानी जाती है। आज मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा के सूक्ष्म क्षेत्रो कें में तुम्हें नहीं ले जाऊंगा। तो विचार क्या? द्रौपदी अतिथि सेवा करती रही। पाण्डव भ्रमण करने जाते भ्रमण करते हुए महारानी द्रौपदी के लिए कन्दमूल वनों में से लाते, उन्हें भी वे पान करती थी, कुछ अतिथियों को देती रहती। तो मुनिवरों! उनका स्वराज्य, उनकी जो धाराएं थी, वहां वन में भी इस प्रकार की रही।

विचार विनिमय क्या? जैसा मेरे पुत्र को मैनें कई काल से वर्णन कराया कि मानव के जीवन की जो गाथा है वह उसकी महत्ता है। मानव के जीवन की जो आभा है वह उसका चरित्र है। मानव के जीवन की जो विशेषता है वह उसकी यौगिकता है। मानव के जीवन में यदि कोई सुन्दरता है तो उसकी विद्या है। यदि मानव के जीवन का कोई

आभूषण है तो उसका वह ज्ञानहै। ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाले मानव सुन्दर आभूषण को अपना करके और आभूषणों को ले करके द्यु लोक को प्राप्त हो जाते हैं। आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार विनिमय क्या है? मैं तूम्हें यह उच्चारण करने आया हूँ कि जो मानव परमात्मा को और मुनिवरों! विशेषता को धारण करने वाला होता है उसको अग्रणीय वर्ता आगे की वार्त्ता उनको स्मरण करने लगती हैं। वह आगे की वार्ताओं को विचारने लगता है। मेरे प्यारे! देखो,! जैसे भगवान कृष्ण को अग्रणीय वार्त्ता आती रहती थी और महारानी द्रौपदी को भी अग्रणीय वार्ताएं आती थी।

मेरे प्यारे! देखो, ऐसी ही भगवान कृष्ण के जीवन की एक गाथा मुझे स्मरण आती रहती है। जब महाभारत संग्राम समाप्त हो गया, कुरूक्षेत्र श्मशान स्थली बन गई उस समय महाभारत के संग्राम से प्राणीमात्र दृष्टिपात करने के लिए सूक्ष्म रह गये। कौरवों के कुटुम्ब में केवल घृतराष्ट्र नेत्रहीन रह गया, माताएं रह गई परन्तु पाण्डव पुत्रों! ने विचारा कि अब हमें कहाँ गमन करना चाहिए।

बेटा! कुरूक्षेत्र में एक सभा हुई और युधिष्ठिर ने भगवान कृष्ण से कहा कि महाराज! अब हम कहाँ गमन करें? उन्होंने कहा, हस्तिनपुर चलो। जब युधिष्ठिर ने कहा, बहुत प्रिय। भगवन्! गति करो, तो वहाँ से जब गति करने लगे तो भगवान कृष्ण नेत्रों को अन्तर्मुखी हो करके चिन्तन करके बोले, आज गति नहीं करेंगे। हम कल हस्तिनापुर घृतराष्ट्र के समीप जाएंगे। मेरे प्यारे! वे विद्यमान हो गएं और अर्जुन को लेकर एकान्त स्थली में आ गये। अपने यन्त्रों में विद्यमान हो करके उन्होंने एक लोके का भीम स्थापित कर दिया। उस लोहे के भीम को हस्तिनापुर में एक स्थली पर स्थिर कर दिया। स्थिर करके वे पुनः कुरूक्षेत्र पहुंचे। अगला दिवस आया तब युधिष्ठिर ने कहा, चलो भगवन्! मेरे प्यारे! पांचों पाण्डव और भगवान श्रीकृष्ण हस्तिनापुर आ गये।

हस्तिनापुर आने के पश्चात अपने अपने कक्षों में स्थिर हो करके वे अपने पितर से मिलन करने के लिए पहुंचे। महाराज धृतराष्ट्र ने कहा, हे भगवन्! हे कृष्ण! मैं उसे कण्ठ से ओत प्रोत करना चाहता हूँ जिसने मेरे वंश को समाप्त किया है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, अच्छा भगवन्! तो भगवान कृष्ण ने जान लिया। वह लोहे का भीम स्थापित किया था,

उन्होंने कहा कि महाराज! यह है तुम्हारे वंश को समाप्त करने वाला। मेरे प्यारे! उस अंध नेत्रहीन धृतराष्ट्र ने बेटा! लोहे के भीम को नष्ट कर दिया। तीन तीन भाग हो गये। मेरे पुत्रो! देखो, उसके पश्चात भगवान कृष्णा ने अर्जुन से कहा हे अर्जुन! आज भीम का विनाश हो जाता। यदि लोहे का भीम स्थापित न किया होता। भीम यदि उसके कण्ठ से लग जाता तो भीम का प्राणान्त हो जाता।

मेरे पुत्रों! देखो, जो ज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता होते हैं उन्हें आगे की वार्त्ता स्वीकार होने लगती है। उन्हें आगे दृष्टिपात होने लगता है। तो मेरे पुत्रों! किसको? भगवान कृष्णा जैसे महापुरूषों को उन्हें आगे की वार्त्ता स्मरण आती रहती थी। ऐसे ही महारानी द्रौपदी को आती रहती थी और भी नाना ऋषि मुनि इस प्रकार के हुए हैं जिनकी चर्चाएं बेटा! मैं तुम्हें पुनः करूंगा। आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि यहाँ इस संसार में वैदिकता में ज्ञान और विज्ञान मानव का मौलिक गुण रहा है, मौलिकता रही है।

आओ मेरे प्यारे! आज के विचार विनिमय द्वारा हम इतना उच्चारण करने आए थे कि केवल हम अपनी वार्ताओं को प्रकट कर सकें। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या? कि हम यहाँ विदुषियों की रक्षा होनी चाहिए। उनकी सुचरित्रता बनी रहनी चाहिए। मेरे प्यारे! उनकी महत्ता उनके जीवन जिससे द्वितीय प्राणी उनकी शिक्षा का पान करने वाला हो।

मेरे प्यारे! जैसे भयंकर वनों में अतिथि सेवा होती रही और भगवान कृष्णा भी विज्ञान में संलग्न रहते थे, अग्रणीय वार्ताओं को आध्यात्मिक वाद का चिन्तन करते थे। तो इसलिए प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है कि जहाँ भौतिकवाद में मानव शारीरिक भोजन देता है वहाँ आध्यात्मिक भोजन भी प्राणी को देना चाहिए।

बेटा! दो प्रकार की क्षुधाएं होती हैं प्राणी के साथ। एक क्षुधा मानव को शारीरिक होती है और एक क्षुधा मानव को आध्यात्मिक होती है। भौतिक जो क्षुधा है, शारीरिक जो क्षुधा है उसको प्राणी भोज्य में लगा देता है। हे मानव! जहाँ यह शारीरिक भोज्य तू देता है, वहाँ आध्यात्मिक वाद में प्रवेश करके तू आत्मा को भी भोजन देने का प्रयास

कर जिसके कारण तेरा मानव शरीर चेतनित बना हुआ है।
बेटा! आत्मा तुम्हारे शरीर में जब तक है, तब तक यह चैतन्य बना हुआ है, गति कर रहा है स्थूल और जब यह आत्मा इस शरीर से निकल जाता है तो क्रिया शून्य हो जाता है। वे क्रियाएं नहीं रहती, तो भोज्य वाला शरीर समाप्त हो गया। इसलिए आत्मा को भी भोजन दो। जिससे तुम्हारा आयु पवित्र बने, शारीरिक जीवन तुम्हारा स्वस्थ बना रहे और आत्मा को भोजन देने वाला प्राणी बेटा! अग्रणीय वार्ताओं को स्वीकार करता रहता है।
यह है, पुत्रों! आज की वार्ता, अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं तुम्हें कल प्रकट करूँगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन पाठन होगा। ओ३म् मां वसु देवम मया ग्राहणा। प्रातः रघुनाथ मन्दिर अमृतसर। दिनांक 21 04 1979।

९ 21 04 1979 प्रातः संकल्प शक्ति आर्य देवी के अखण्ड सतीत्व का महत्व

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है।
हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान के काल तक नाना वैज्ञानिक हुए, नाना ब्रह्मवेत्ता हुए, परन्तु कोई मानव ऐसा नही हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध करने वाला हो क्योंकि परमपिता सीमा से रहित है, वह सीमा वाला नही है। मानो अल्पज्ञ जो प्राणी है वह बेटा! उसकी प्रतिभा अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध नहीं कर सका। हमारे यहाँ विज्ञान ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है। ज्ञान और योग भी उनके मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है। यहाँ नाना प्रकार की मेरी पवित्र माताएँ ऐसी महानता को प्राप्त होती रही है जिनके जीवन में सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता था, जिनके जीवन में योगश्चर रहता था। मानो वे योगी यौगिकता को चरने वाली मेरी पुत्री,

मेरी नाना माताएँ, इस प्रकार की हुई है।

मुझे बेटा! नाना वाक् स्मरण आते रहते है। चाक्राणि का जीवन काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में वे वेदों का अध्ययन करती थी, वेदों की उड़ान उड़ती थी। एक वेदमन्त्र स्मरण आता, उसके ऊपर कई कई समय चिन्तनशील हो जाती और मन्थन करती।

एक समय चाक्राणि अपने गुरु श्वेणकेतु के आश्रम में जब अध्ययन करती थी, श्वेणकेतु ऋषि महाराज मुद्गल गोत्रीय कहलाते थे। मुदगल गोत्र के जो ऋषि थे वे बेटा! वृद्ध नहीं और युवा भी नही थे। वे सदैव इस वेद की पवित्र धारा में गति करते रहते थे क्योंकि उनकी आयु 340 वर्ष की थी, जब वे चाक्राणि उनके द्वारा अध्ययन करती थी। इससे हमें यह प्रतीत होता है कि प्रभु का जो मनन करता है, प्रभु का जो चिन्तन करता है, ज्ञान और विज्ञान की जिसकी पराकष्ठा होती है, उनको वृद्धपन नहीं होता। उसमें वृद्धपन आता ही नहीं। वे अपने को अपने में ही आभा में दृष्टिपात करते रहते है। बेटा! तो चाक्राणि अपने पूज्यपाद गुरुदेव श्वेणकेतु ऋषि जी के चरणों में ओत प्रोत हो करके अपना अध्ययन करती थी आचार्य ने उन्हें एक वेदमन्त्र स्मरण कराया। प्रातःकाल हुआ, प्रातःकाल होते ही चाक्राणि अपनी आभा में गति करने के लिए आश्रम में दूर अध्ययन करने लगी। जब अध्ययन करने लगी, गान गाने लगी। उद्गाता के रूप में गाने लगी चित्रम् रथाः दिव्याम् देवत्यम् वे चित्त के ऊपर वेदमन्त्र था चित्रम् देवानाम मनो कृतं अस्ति दिव्यम लोकाः मेरे प्यारे! उनको चित्त के ऊपर एक वेद की आख्याकिया स्मरण आ रही थी, उसका उद्गान गा रही थी। ऐसी मधुर वाणी से तन्मय होकर गाती बेटा! देखो, सर्पराज अब उनके चरणों की वन्दना कर रहा था।

उसमें भय नाम की कोई वस्तु नहीं थी, क्योंकि भय क्या था? जब एकोकी सूत्र में ही ब्रह्माण्ड है तो चाक्राणि गान गा रही है। सिंहराज आकर विद्यमान हो गये। उद्गान गाया जा रहा है और भी हिंसक प्राणी आ करके विद्यमान हो गये, उनका गान प्रारम्भ हो रहा है, मेरे पुत्रो! हिंसक हिंसक नही रहता।

उस समय कन्या की 12 वर्ष की आयु थी और 12 वर्ष की आयु में जब वह गाना गा

रही थी तन्मय होकर के, अन्तर्हृदय से, अन्तरात्मा से, अन्तःप्रवृत्तियों से, मेरे पुत्रो! उसका बाह्य जगत बन रहा था। बाह्य जगत जब बन रहा था तो उनको कौन श्रवण कर रहा था? हिंसक प्राणी। क्योंकि हिंसक प्राणी इसलिए उद्गीतों को ग्रहण करते हैं, क्योंकि उनमें हिंसा नहीं होती। जिनमें कल्पना नहीं होती, जिन विचारों में स्वार्थ भावना नहीं होती, जिसमें स्वार्थ परता नहीं होती है, उनको हिंसक प्राणी ग्रहण करता हैं। क्यों करता है? क्योंकि वह हिंसक शब्दों को ग्रहण नहीं करता, हिंसा चिन्तक शब्दों को ग्रहण नहीं कर रहा है। वह चाहता है, उससे तेरा विच्छेद हुआ है, तू उस देव की, उस अन्तरात्मा की, उस देव प्रभु की महिमा का गुणगान श्रवण कर।

मेरे पुत्रो! चाक्राणी इसी प्रकार अध्ययनशील थी। उसकी अध्ययन की प्रतिक्रियाएँ आभा में गति कर रही थी। परिणाम, मेरे प्यारे! उनके पूज्य गुरुदेव भ्रमण करने के लिए प्रातःकाल गति कर रहे थे, तो कन्या को उन्होंने दूर आराम से अध्ययन करते हुए दृष्टिपात किया। तो आश्चर्य में हो गये, ऋषि मौन हो करके अपने मन में चिन्तन करने लगे, यह कैसी प्रिय विदुषि है? यह कैसी प्रिय है जिसके हृदय में हिंसा का एक विचार भी नही आ रहा है। हिंसक प्राणी समीप हैं, वे प्रभावित नहीं है, वे प्रभावित नहीं कर रहे है। अहिंसा ही उसका आभूषण बन गया हैं।

जब ऋषि ने यह दृष्टिपात किया जो आश्चर्य में हो गये। कन्या का अध्ययन समाप्त हुआ तो बेटा! ऋषि पूर्व ही अपने आश्रम में प्रवेश कर गये। जब कन्या का प्रवेश हुआ तो ऋषि ने मन ही मन में उस कन्या का चरणाबिन्दु सहृदय और अन्तर्हृदय में नमस्कार किया कि धन्य हो। इस प्रकार का चिन्तन और मनन तो देवतव का होता है। मानव देवता बन जाता है, वायुमण्डल उसके अनूकूल बन जाता है और वह महान बन जाता है।

मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे कुछ प्रेरणा दे रहे है। उस प्रेरणा के आधार पर मैं अब एक विदुषी की चर्चा और प्रकट करूँगा। उसके जीवन में सदैव अग्नि ही अग्नि प्रवेश होती रही। अग्नि में ही सदैव उसका जीवन रहा। मेरे प्यारे! तप ही तप उसके जीवन काण्ड बन गया। मेरे प्यारे! मैं आज चाक्राणि गार्गी की विवेचना, बाल्यकाल की चर्चा

की। गार्गी के बाल्यकाल का नाम विलुक्षणी कहलाया जाता है। विलुक्षणी का अभिप्राय है, वह जो विलक्षणाता को प्राप्त होती है। आचार्यों ने उनका नाम विलक्षणी उच्चारण किया और विलुक्षणी उच्चारण करके उसको सम्बोधित करते थे।

बेटा! देखो, उनके जीवन का अध्याय गान में रहता था। ऐसे गान में रहता था कि उसे वस्त्रों का भी ज्ञान नहीं रहता था। वह यह जानती थी कि वेदमन्त्र में अध्ययन यौगिक आभा में कि यह दशा ही मेरा आभूषण हैं पृथ्वी मेरा आसन बन गया है और अन्तरिक्ष मेरा ओढ़ना बन गया है। वह इस प्रकार की मनोभावना ब्रह्म मृत्युः देवाः चरिष्यामि। ब्रह्म सभा मे, ब्रह्म देवताओं में, वे देवताओं की सभा में सुशोभनीय होती है। देवतागजन उसकी पूजा करते है। देवतागजन बेटा! उसका आह्वान करते हैं और उसकी आभा में वे सदैव रमण करती रहती थी।

आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें महानन्द जी की एक उस प्रेरणा के आधार पर एक वाक्य प्रगट कर रहा हूँ। मैं तुम्हें यह त्रेतायुग की चर्चा कर रहा था। सत्युग के काल में एक चाक्राणि और हुई जिसका नाम स्वाकृति था। वह देवतव ऋषि महाराज की कन्या कहलाती थी। परन्तु यह मैं तुम्हें उस कन्या की चर्चा कर रहा था जो त्रेता के काल में थी।

अब मैं मुनिवरों! तुम्हें उस काल में ले जाना चाहता हूँ जिस काल में हमारे यहाँ विदुषि बन करके, तपस्विनी बन करके अपनी निष्ठा में अपने को, अपने प्रभु को अपने में स्मरण करने वाली का संकल्प कैसा होता है?

मैंने आज तुम्हें संकल्प की चर्चा की, मन के द्वारा बलवती बन करके अपने त्याग और तपस्या का जो प्रतिपादन मानव के समीप, मानव प्रतिपादन करने लगता है और वह क्रिया में आ जाता है तो उसका कितना उज्ज्वल प्रभाव होता है, दैत्य अशुद्ध विचारों वाला, उस मानव को पामर करना चाहता है, परन्तु हो नहीं पाता। मेरे पुत्रो! उसका प्रभु साक्षी होता है।

मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है जब हस्तिनापुर के क्षेत्र में अग्नि काण्ड का प्रवाह, अग्नि प्रदीप्त होने लगी विचारों की, एक दूसरे को नष्ट करने की। ऐसा क्यों बना, ऐसा

क्यों होता है?

बेटा! यह जो राष्ट्रीय पद्धति है, इस राष्ट्रीय पद्धति में जब स्वार्थपरता आती है। हमारे यहाँ राष्ट्रीय स्वार्थपरता आयी। सबसे प्रथम मानो देखो, यह कैकेयी के विचारो में आयी, कैकेयी के विचारो मे, ऋषि मुनियो ने विचार तो कुछ और दिए परन्तु स्वार्थपरता आ गई विचारा नही उसके पश्चात यही स्वार्थपरता देखो, महाभारत के काल में गुरु द्रोण के समीप आयी। इससे पूर्व महाभारत के काल में कोई स्वार्थपरता नहीं थी।

निःस्वार्थ कैसा, देवव्रत ब्रह्मचारी अपने पिता के संस्कार के लिए त्याग कर रहा है कि मैं अपने पिता की आज्ञा का पालन करूँ। यह स्वार्थपरता शान्तनु में आयी। महाभारत का यही तो मूल कारण बना है। जो स्वार्थपरता शान्तनु के हृदय में आयी। शान्तनु के हृदय में यदि यह कामना की, वासना की स्वार्थपरता नहीं आती तो यह महाभारत का सङ्.ग्राम नहीं होता। क्योंकि शुद्धाम देवामन जकृति देवाः।

यदि निःस्वार्थ हो करके अद्युद्र नदी के तट पर रहने वाला यदि शान्तनु का संस्कार कर देता तो यह भावना जब भी नहीं आ सकती थी। परन्तु स्वार्थ आ गया, स्वार्थ किसमें आया? शान्तनु में तो स्वार्थ वासना का आगमन हुआ और अब तो नदी के तट पर रहने वाला अद्यूद्र था, उसके मन में यह भावना आ गई कि सन्तान को द्रव्य होना चाहिए, राष्ट्र होना चाहिए। यह स्वार्थपरता उसके द्वारा आ गयी। यदि वह निःस्वार्थ कन्या का संस्कार कर देता और शान्तनु में वासना नहीं आती तो बेटा! महाभारत संग्राम जब भी नहीं होता।

जिन विचारों से जिस जिस कार्य को हम प्रारम्भ करते हैं। वे विचार अन्तिम तक बने रहते है। यह विचार का वाक्य है, यह एक मनस्तत्त्व की धारणा है। मुनिवरों! देखो, देवव्रत ने पिता का संस्कार कराया, वे निःस्वार्थ बने रहे, संकल्पवादी बने। पुत्र संस्कारवादी हे, पिता वासनावादी बन गये। मेरे प्यारे! इससे राष्ट्र में नष्ट भ्रष्टता आ गयी।

मैनें बहुत पुरातन काल में इस संस्कार को दृष्टिपात किया है। हजारों वर्षो से बेटा! यह संसार इस स्मरण शक्ति के रूप में मेरे मस्तिष्क में विद्यमान हैं। मुझे यह प्रतीत है

जिस काल में, जिन गृहों, जिस राष्ट्र में जहाँ वासना की स्वार्थपरता आ जाती है जहाँ पद की स्वार्थपरता आ जाती है, जहाँ राष्ट्र भोगने की स्वार्थपरता आ जाती है, विधाता, विधाता को नष्ट करने वाला बन जाता है तो जानो कि वहाँ आज नहीं तो कल नाश हो जाएगा, वह कुटुम्ब भी नष्ट हो जाता हैं।

मेरे पुत्रो! आओ मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। यह वाक्य कितना व्यापक बन गया। मुनिवरों! देखो, कौरव और पाण्डव, पाण्डव पुत्रों! और धृतराष्ट्र पुत्रों! में आन्तरिक अग्नि प्रदीप्त हो गई और उस अग्नि प्रदीप्त होने का मूल कारण कहाँ तक बना? राज सभा में महाराज दुर्योधन विद्यमान है, एक स्थली पर जरयोधन विद्यमान हैं एक स्थली पर भीष्म जी विद्यमान है और एक स्थली पर गुरु द्रोण विद्यमान हैं। महाभारत के संग्राम का दूसरा मूल कारण गुरु द्रोण बन गया था, घृणा का। परन्तु मैं इन महान् आकृतियों की चर्चा विशेष नहीं करूँगा।

मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि महाभारत के काल में मुझे वह काल जब स्मरण आता है, कुछ दुःखित होना ही पड़ता है। जिन प्रवृत्तियों में ऐसी वासना, ऐसी विचारधारा आती है कि यह क्या हो गया? कितना ऊँचा विज्ञान? कितने ऊँचे आत्मवेत्ता, कितने ऊँचे विचारवान पुरूषों का ह्रास हो गया? मेरे पुत्रो! कितना विज्ञान, भगवान कृष्ण जैसे महापुरूषों का अस्तित्व समाप्त हो गया था। कृष्ण जी के द्वारा एक एक यन्त्र इस प्रकार का था कि दिवस की रात्रि बन जाती थी और रात्रि का दिवस बन जाता था। ऐसे ऐसे यन्त्र, जिसके समीप ऐसे संकल्प के ऐसे यन्त्र जो थे। यन्त्र को वायु में त्याग दिया और जिस प्राणी के लिए यन्त्र त्यागा है, उसी प्राणी को यन्त्र नष्ट करके, यन्त्र उनके द्वार आ जाता था, ऐसे यन्त्र विद्यमान थे।

मेरे पुत्र ने एक समय मुझे वर्णन कराया कि आधुनिक काल का वैज्ञानिक विज्ञान की इकाई में गति कर रहा है। मैं उन विचारों में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय क्या? कि मेरे पुत्र की यह प्रेरणा प्रतीत हो रही है। प्रेरणा मुझे इतनी बलवती क्यों दे रहे है? इसको मैं नही जान पा रहा हूँ। परन्तु जो उनकी एक वेदना है कि मुझे उच्चारण करने में कोई अप्रियता नहीं हैं। मुझे स्मरण है पाञ्चाली। अकृत्याम् देवत्याम् लोकाः।

मेरे पुत्रों! तुम्हें प्रतीत होगा महाभारत के काल में महारानी द्रौपदी में एक विशेषता कहलाती थी। जिनके जीवन में सदैव त्याग और तपस्या की आभा रहती थी, वे विदुषी थीं, उनमें साहस रहता था।

मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण है जब वे बाल्यकाल में अध्ययन करती थी, शुन्देतवर उनके पुराहित थे। शुन्देतवर पुराहित के द्वारा उन्होंने अध्ययन किया था। अध्ययन करते समय महाराजा द्रुपद के यहाँ जो पुराहित बना था, वहाँ पुराहित और गुरु शिष्य का संवाद चलता रहता था। उनसे उन्होंने अध्ययन यही किया कि मैं त्याग और तपस्या में अपने जीवन को व्यतीत करूं मुनिवरों! देखो, मुझे उनका जीवन जब स्मरण आने लगता है, उनका जीवन कितना अडिग रहता था।

पुत्रों! जिस समय स्वयंवर हुआ था उस समय उन्होंने भरी सभा में कर्ण को यह कहा था दकृति वृत्ताम् वेः तुम प्रिय नहीं हो, तुम्हारी वाणी में कषैलापन है। तुम्हारे लिए मैं नही हूँ। मेरा जीवन त्याग और तपस्या का मेरे विचार में तुम्हारा मस्तिष्क, तुम्हारी प्रवृत्तिं यह कहती है कि तुम अपने जीवन में पराधीन रहोगे। उन्होंने शस्त्रों से दूर कर दिया कर्ण को। मछली का छेदन महाराजा अर्जुन ने किया था, अर्जुन से ही उनका संस्कार हुआ।

उसके पश्चात राजकीय अपमान के कारण उनकी धाराए परिवर्तित हो गयी। दुर्योधन इत्यादि का यह विचार बना कि अब हमे क्या करना है इतना द्वेष इतनी भंयकर अग्नि महाभारत के कण कण में व्याप्त हो गई थी कि उस अग्नि को शान्त नही कर सकता था।

मेरे पुत्रों! देखो, यह सब हस्तिनापुर में आ पंहुचे, हस्तिनापुर में आने के पश्चात अब अपने अपने कक्ष में गति करते थे। विश्राम में रहते हुए अपने कार्यों का, कर्त्तव्य का पालन भी करते रहते। अब यह विचार बना कि हम अब इन पाण्डवों को विजय करना चाहते हैं, पाण्डवों को कैसे विजय किया जाए? पाण्डवों को विजय करने लिए उन्होंने शकुनि को आगे किया और शकुनि से कहा तुम जुये में उनको विजय करो। बेटा! षड्यंत्र रचा गया और पाण्डवों को जुये में विजय कर लिया। परन्तु अप्रिय घटना यह

हुई।
जब विनाश का समय आता है तो बुद्धियाँ भी परिवर्तित हो जाती है। बुद्धि में वैसे अंकुर हो जाते हैं और शकुनि तो यह कहता रहा कि विधाता विधाताओं के गृह में कोई हार, कोई नीचा और कोई ऊर्ध्व नहीं होता। हम तो यह बनावटी ऐसे ही कार्य कर रहे हैं। आओ! हम कोई ऐसे नहीं हैं जो तुम्हें पामर करना चाहते हों। तो मुनिवरों! स्वभाव में सरल जो युधिष्ठिर भोले भाले थे परन्तु उनकी विचारधारा यह रही कि मिथ्या उच्चारण नहीं कर रहे हैं और अब यह सब कुछ होने के पश्चात द्रौपदी को भी उन्होंने अर्पित कर दिया, तो वे वचनबद्ध हो गए।
बेटा! वचनबद्ध होने के पश्चात अगला जो दिवस आया तो महारानी द्रौपदी ने स्नान भी नहीं किया था, रजो में परणित थी। मेरे पुत्रो। दुर्योधन ने अपने विधाता को य कहा कि विदुषी को, जो विदुषी बन रही है उसको हम सर्व सभा में नग्न दृष्टिपात करना चाहते हैं। यह कितनी भयंकर अग्नि थी, यह कितना भयंकर विचार होता है राष्ट्र के लिए, राष्ट्रीयता का, कुटुम्ब का विनाश होने के लिए। इसीलिए तो यह भयंकर अग्नि, विचारों की अग्नि थी, जिस अग्नि को काई भी शान्त नहीं कर सका। जब मानव में धृष्टता आती है, तुच्छता आती है, विनाश का क्षण आता है तो मुनिवरों! उनके विचारों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, अग्नि दूषित हो जाती है।
मेरे पुत्रो! जब महाराजा दुर्योधन ने अपने विधाता जरयोधन से कहा, जाओ! उस रज वाली पांचाली को ले आओ। मैं उसे नग्न रूप में दृष्टिपात करूँगा, उस सभा में पूर्व से ही यह विचार बन गए थे। जब द्रोपदी को सभा में लाया गया तो माता गान्धारी ने भी कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? माता कुन्ती ने भी कहा परन्तु वे किसकी वाक् स्वीकार करने वाले उस सभा में कौन? महाराजा द्रोण भी विद्यमान थे और देवव्रत भीष्म भी विद्यमान थे और देखो,! सब जरयोधन भी विद्यमान थे, पांचों पाण्डव पुत्र भी विद्यमान थे और मामा शकुनि जो मामा कहलाते थे परन्तु विनाशाम् विकृति जसताः।
अब मुझे स्मरण आता है, नग्न करने के लिए जब महाराजा जरयोधन सभा में ले आए परन्तु सभा में लाने के पश्चात किसी का यह साहस नहीं बना कि विदुषी के वस्त्रों पर

कोई अपने भुजों का आक्रमण भी कर सके। अस्त्रों शस्त्रां से मानो देखो, वह कोई उस पर आक्रमण नहीं कर सका। जरयोधन तो उसे ले आया आज्ञा के अनुसार और वह सभा में आ गयी।

अब वहाँ महाराजा दुर्योधन ने कहा, हे विदुषी! तू विदुषी कहलाती है, आज हमें विदुषीपने को नष्ट करना है। परन्तु देवी द्रौपदी कहती है, हे दुर्योधन! तुम्हें यह प्रतीत है कि मैंने किसी पूज्यपाद के द्वारा अध्ययन किया और यह भी तुम्हे प्रतीत है कि मेरे जीवन में ब्रह्मचर्यव्रत एक मेरा व्रत है और यह भी तुम्हे प्रतीह है क्या मेरा एकोकी ही संसार में पति है, तुम्हें यह प्रतीत है कि दुष्टों का मैं संहार कर सकती। क्योंकि दुष्टों का संहार मृत्यु नहीं होता, तुम तो मृत्यु के मुख में अपने को परणित करना चाहते हो। पुत्रों! द्रौपदी ने कहा, जहाँ देवव्रत जैसे हमारे पिता यहाँ विद्यमान हों, द्रोणाचार्य जैसे विद्यमान हों, इनके सबके रक्त में दूषितपन आ गया है जहाँ मेरे पति के सहित पांचों विधाता विद्यमान हों? उनके रक्त में निराशा आ गई है उनके रक्त में सांत्वना आ गई है। आज यह समय, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है दुर्योधन! कि तुम्हारी हस्तिनापुरी की स्थली पर अग्नि की वृष्टि होने वाली है।

अब मुनिवरों! देखो,! दुर्योधन कोई शब्द उच्चारण नहीं कर रहा है। दुर्योधन कहता है कि मैं नग्न कैसे करूं? जरयोधन कहता है कि मैं, साहस नहीं करूँगा और नाना विधाता कहते है कि हममें इतना साहस नहीं है। अब मुनिवरों! विदुषी सभा में विद्यमान है। देवव्रत से द्रौपदी ने कहा, हे पितामह! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वतः नग्न हो सकती हूँ परन्तु इन दुष्टों में साहस नहीं है, ये पामर है, इन पामरों में क्या है। इन पामरों में आत्मबल नहीं है और आत्मबल के साथ में प्रभु का आश्रय होता है, प्रभु की प्रतिभा होती है और वह जो द्वितीय स्त्री के जिसमें नग्न करने की प्रवृत्ति बन जाती है, उसमें आत्म साहस कहाँ और वह कैसे कर सकता है।

मानो एक विदुषी! भरी सभा में, जहाँ नाना बुद्धिमान विद्यमान थे, वे सभा में से सब अपने अपने गृह को प्रस्थान करने लगे। मुझे स्मरण है, मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे यह कहा है एक समय में कि द्रौपदी को नग्न करने के लिए वस्त्रों की खीचा गया, पर

मुझे तो ऐसा प्रतीत है, हस्तिनापुर की स्थली पर कोई प्राणी ऐसा नहीं था जो उसके वस्त्रों को स्पर्श करने वाला हो। इतना ऊँचा उनका संकल्प, इतना साहस उसमें था। क्योंकि मेरी पुत्री में जब इतना साहस हो जाता है।

बेटा! तुम्हें प्रतीत होगा, त्रेताकाल का, राजा रावण के यहाँ माता सीता रहीं। वहाँ माता सीता लगभग वर्ष भर अशोक वाटिका में रही। महाराज रावण को साहस नहीं था कि माता सीता के शरीर को स्पर्श तक करे। क्योंकि शरीर का स्पर्श तब तक नहीं होता जब तक दोनों की एक अनूकुलता प्रतीति नहीं होती। स्पर्श या तो पुत्र कर सकता है या दूरिता में, दोनों की दूरिता भावना कर सकती है। देखो, उनके वस्त्रों को भी स्पर्श हस्तिनापुर की स्थली पर नहीं हुआ। दुर्योधन का यह साहस नहीं था परन्तु उस समय पाँचों पाण्डवों ने अपनी अपनी प्रतिज्ञाएँ की, वह प्रतिज्ञा बनकर ही रही।

उसके पश्चात महापिता जैसे देवव्रत उन्हें भीष्म भी कहते थे, उन्होनें भी मन ही मन में नमस्कार करके आसन को त्याग दिया, द्रोणाचार्य ने भी त्याग दिया। इसके पश्चात यह कुछ वार्त्ता महाराजा धृतराष्ट्र के विचारों में आयी। उन्होनें अपने मन्त्री से कहा कि हस्तिनापुर की स्थली पर यह क्या हो रहा है? जब संजय से कहा गया तब संजय बोले, महाराज! कि महाराज! क्या चाहते हो? तो धृतराष्ट्र ने कहा कि मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है मेरे हृदय में अशुद्ध संकल्प जागरूक हो रहे है, मेरा हृदय यह कह रहा है कि तेरे जीवन में अग्नि ही अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। अब उस सभा में ले चलो, जहाँ से मेरे श्रोत्रों में कुछ वार्त्ता आ रही हैं।

मुनिवरों! महाराजा संजय उस नेत्रहीन राजा को उस सभा में ले आये। राजा ने कहा, क्या है इस सभा मे? संजय ने कहा कि महाराज! महारानी द्रौपरी विद्यमान है और सभा शून्य है। सभा में कोई वाक्य उच्चारण नहीं किया जा रहा है और उसके वस्त्रों की, एक लेखनी लगी हुई है। द्रौपदी के नग्न करने का एक दूषित विचार बना हुआ है। एक षडयन्त्र है तो राजा ने कहा, तो प्रभु! ब्रह्म कृति देवाः। मुझे द्रौपदी के द्वार पर ले चलो। मेरे पुत्रो! द्रौपदी के द्वार पर आ करके राजा ने भिक्षामेदेयी की पुकार की कि हे पुत्री मुझे भिक्षा दो! उन्होने कहा हे प्रभु! हे भगवन्! मैं आपको क्या भिक्षा दूँ। उन्होने कहा

जो मैं चाहता हूँ।

उन्होने कहा देव! मैं कोई भिक्षा नहीं दे सकती आपको मैं किसी योग्य नहीं हूँ, मैं तो वीरांगना हूँ और संसार में मेरा संकल्प और मेरे प्रभु ही मेरे सहायक हैं। संसार में प्राणीमात्र मेरा नहीं इस सभा में। मैं क्या आपको अर्पण कर सकती हूँ, मेरे द्वारा क्या है? मेरा संकल्प ही मेरे द्वारा हैं। मैं संकल्प को आपको प्रदान नहीं कर सकती।

मेरे पुत्रो! जब ऐसा द्रोपदी ने कहा तो नेत्रों से जलों की वर्षा होने लगी। धृतराष्ट्र ने कहा, हे पुत्री! मुझे यह प्रतीत नहीं था, अन्यथा मैं यहाँ आ विराजता, कि यह अकृताम देवाः कया अग्नि के काण्ड इस हस्तिनापुर की स्थली पर होंगे। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे होते हुए मेरा संसार ये यह वंश सूर्य की भांति समाप्त हो जाएगा। हे पुत्री! मैं यह चाहता हूँ, तुम विदुषी हो, देवी हो, तुम मुझे भिक्षा दो अपने वंश की, मैं अपने वंश के लिए भिक्षा चाहता हूँ। उन्होंने कहा, प्रभु! मैं आपको यह भिक्षा प्रदान नहीं कर सकती। मेरे द्वारा कोई वस्तु ही नहीं है और यह तो संकल्प मेरे मस्तिष्क में आ गया है, यह तो प्रभु! की अनुपमता हैं यह तो जब मानव दर्शन के ऊपर जाओगे तो तुम्हें प्रतीत होगा कि जो किसी कन्या को, देवी को, अनायास ही बिना कारण के कारण बनाता चला जाता हैं। जानो कि उसकी अग्नि में उसके जीवन की आभा नष्ट होने लगीं हे प्रभु! मैं क्या उच्चारण कर सकती हूँ? मेरे द्वारा उच्चारण करने के लिए न तो शब्द हैं और न कोई अर्पित करने के लिए वस्तु है।

मेरे पुत्रो! धृतराष्ट्र मौन हो गएं और मौन हो करके कहा कि देवी! तुम क्या चाहती हो? उन्होंने कहा कि मैं और मेरा जो पति है और पति के जो विधाता हैं इन सबको मुक्त कराना चाहती हूँ। उन्होंने कहा, तथास्तु। द्वितीय वचन मैं यह चाहती हूँ कि मेरे पति और उनके विधाताओं के सब अस्त्र शस्त्र प्रदान हो जाने चाहिए। उन्होनें कहा, तथास्तु। परन्तु दुर्योधन की स्वार्थपरता यहाँ आती है। पुत्रो! यही स्वार्थपरता हस्तिनापुर का अग्निकाण्ड बनकर रह गयी। दुर्योधन कहता है पिता एक वचन मेरा भी है। पितर ने कहा क्या चाहते हो? मैं पाण्डवों को 12 वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास चाहता हूँ, अज्ञातवास समय पाण्डव कहीं भी दृष्टिपात न हो। राजा ने कहा अच्छा पुत्र

यह भी तथास्तु।

मेरे पुत्रो! तथास्तु कहते ही महाराजा धृतराष्ट्र भूमि में अर्पित हो गएं और उन्होंने कहा कि यह ममता मेरे द्वारा नहीं होती, तो यह हस्तिनापुर मेरे समीप अग्नि का काण्ड नहीं बनता। यह बन करके रहेगा क्योंकि ममता ने मेरी आभा को को नष्ट कर दिया है मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण है, मैं उस काल की वार्त्ता प्रकट करता हूँ कि कितना क्षुद्र काल आया। उस काल को कहाँ तक स्मरण करूँ। मेरी पुत्रियों में कितना साहस रहा है। कितनी आभा रही है। संकल्प शक्ति के द्वारा कोई उसके वस्त्र को भी स्पर्श नही कर सका। एक ऐसी विद्वत सभा में, ऐसी राज्यसभा में, दुर्योधन का साहस नहीं बन पाया। क्योंकि जो मानव दूसरों को नष्ट करना चाहता है वह स्वतः नष्ट हो जाता है। जो दूसरों के प्रति अपनी आभा को नहीं चाहता मुनिवरों! उसका अशुद्ध संकल्प बन करके उसके लिए मृत्यु का मूल कारण बन जाता हैं।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है, द्वापर का वह काल, जहाँ हस्तिनापुर के क्षेत्र में अग्नि काण्ड बन गया था। अग्नि काण्डों में यह संसार परिवर्तित हो गया। तो विचार क्या? कि विज्ञान का दुरूपयोग। विज्ञान जब बलवती होता है तो विचारों में अशुद्व वाद आ जाता है और यह भौतिक विज्ञान महाभारत काल में इतना बलवती बना कि इसके बलवती बनने की कोई सीमा प्रदान नहीं कर सकता। आज समय इतनी आज्ञा नहीं दे रहा हैं।

मुनिवरों! मैं तुम्हें यह विचार देने के लिए आया हूँ कि यह जो संकल्प शक्ति हे, यह बलवती है और आत्मबल है, यह मानव का साक्षी बन करके रहता है। महारानी द्रौपदी ने सदैव अर्जुन की पत्नी बन करके अपने जीवन को त्याग और तपस्या में परणित किया। मेरे पुत्र ने मुझे एक समय में वर्णन कराया कि यह पाँचों पाण्डवों की पत्नी कहलाती थी। परन्तु जब यह पाँचों पाण्डवों को पत्नी ने ऐसा उच्चारण किया, तो मुझे बड़ी हर्ष ध्वनि हुई उस समय मे। क्या मेरे पुत्र क्या उच्चारण कर रहे है। परन्तु जो इतनी विदुषी हो, उसने अपने पति के विधाताओं को अथवा किसी द्वितीय पुरूष को भी पिता या पुत्र ही दृष्टिपात किया। पति के चारों विधाताओं ने पुत्री भाव से तथा मातृभाव से रक्षा की। परन्तु आज उनके प्रति ऐसा अशुद्ध शब्दों से बेटा! हम श्रवण

करना भी नहीं चाहते।

विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! तुम्हें स्मरण होगा देखो, त्याग और तपस्या ही मानव का जीवन हैं बाल्यकाल से लेकर त्याग और तपस्या जब मानव के जीवन में होती है, पुत्रियों के जीवन में होती है, उनके जीवन में पवित्रता बन करके उनका पवित्र जीवन ही उसके जीवन की आभा बन करके मनोनीतता को प्राप्त हो जाता है।

मुनिवरों! आओ मैं विशेष चर्चा तुम्हे प्रगट करना नही चाहता हूँ। महारानी द्रौपदी के ये शब्द तुम्हें स्मरण होगे। महाराजा देवव्रत बाण शैय्या पर जब विद्यमान हो गये, तो द्रौपदी ने कहा था कि हे पितर! आप इस समय ब्रह्म की चर्चा कर रहे हैं और देवयान और पितरयान की चर्चा कर रहे हैं आप दक्षिणायान और उत्तरायण की चर्चा कर रहे है उस समय आपका उत्तरायण कहाँ चला गया था जिस समय मुझे सभा में नग्न करने की प्रेरणाओं ने मुझे कृतियों में परणित किया था। उस समय देवव्रत जी क्या उत्तर देते हैं कि मैने दुर्योधन का अशुद्ध अन्न ग्रहण किया था। मेरा मन उस अशुद्ध अन्न से प्रभावित हो रहा था।

मानो देखो, जब इसीलिए मन को मानव को पवित्र बनाना हो तो अन्न उतना पवित्र होना चाहिए कि मन संकल्प करते ही पवित्र हो जाएं। बेटा! द्रौपदी कैसा भोजन करती थी। बाल्यकाल से वह स्वयं परिश्रम करती थी, मुझे स्मरण है, उस परिश्रम से भोजन करती थी।

यहाँ नाना पुत्रियाँ, मेरी माताएँ इसी प्रकार की हुई है। माता कौशल्या के राम हुए। माता कौशल्या कला कौशल करती थी। उसके बदले जो अन्न आता उसे ग्रहण करती थी। वह माता राम जैसों को जन्म देती है। मानो देखो, गृहेः वृत्तम देवाः वह माता पवित्र मन वाली होती हैं कौन?

जैसे राजा कंस के कारागार में वहाँ वसुदेव और देवकी रहते थे। देवकी सदैव गायत्री का चिन्तन करती थी। संकल्पवादिनी बनी रहती थी। भगवान कृष्ण जैसो को जन्म देने वाली हुई। वे माताएँ महान् कैसी होती है। जिसका मन पवित्र होता है। मानो देखो, एक सौ एक गायत्री पठन पाठन करके जो कंस अन्न देता था उसको गायत्री माँ से

शोधन करके, शुभ संकल्प करके उसको पान करती थी। मेरे पुत्रो! इन क्षेत्रों में विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूँगा।
विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हमारे यहाँ मानव दर्शन एक मानवीयता का अंग बन करके वहाँ उनके मस्तिष्कों में पनपता रहा है। ऋषि मुनियों की आभाओं में पनपता रहा है और उनके वायुमण्डल में पनपता रहा है। मेरे प्यारे! महारानी द्रौपदी भी सदैव कला कौशल करती थी, वे कला में पारायण थी। कला कौशल वे पुष्पों के हारों का संग्रह करती थी उनके बदले जो द्रव्य आता था उससे जीवन निर्वाह करती थी।
बेटा! माता कुन्ती ने द्रौपदी से यह कहा कि हे पुत्री! तुम ऐसा क्यों करती हो। द्रौपदी ने कहा इससे मेरा मन पवित्र होता है। मैं अपने मन को पवित्र चाहती हूँ। यह जो तुम्हारा राष्ट्र है यह अशुद्ध बन गया है। यह हस्तिनापुर की स्थली में अग्नि प्रदीप्त होगी। मानो इसीलिए मैं इसमें कोई वाक् उच्चारण नही करूंगी। इसमें मेरे कार्य में तुम बाधक मत बनो, मेरे पुत्रों! वह भयंकर वन में रही वहां स्वयं परिश्रम करती थी आज मैं बेटा! विशेष चर्चा तुम्हें नही प्रगट करूंगा। विचार विनिमय क्या है क्या मुनिवरों! देखो, मेरी पुत्रियों का जब संकल्प बन जाता है मुनिवरों! देखो, उनको कोई अष्ट भुजों से भी स्पर्श नही कर सकता, अशुद्धता से स्पर्श नही कर सकता, प्रेम, पूज्य और मातृ भाव से स्पर्श करना तो उनके लिए एक शोभा बन जाती है परन्तु अशुद्धता से उनमें कोई भी स्पर्श करने का साहस नही होता, यह है पुत्रों! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा, तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। आज तुमने यह जान लिया क्या हमारा जीवन कितना पवित्र होना चाहिए। मेरी पुत्रियों का जीवन कितना पवित्र रहा है कितना संकल्पवादी रहा है, मेरे प्यारे! मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते हैं कि भगवान कृष्ण ने उनके वस्त्रों को वृद्धि करते रहे मानो देखो, यह आशीर्वाद तो होते हैं शुभ संकल्प जैने कितने ऋषियों के उनके साथ थे परन्तु रहा है कि यौगिकता में अयोध्यां वृत्ति देवाः बेटा! यह तो एक अपवाद की चर्चाएं हैं अपवृग है इसमें विशेष चर्चा मैं प्रगट नही करूंगा। परन्तु संकल्प मैंने जो दृष्टिपात किया, वह संकल्प वह अपवाद है, अपवाद में हम जाना नही चाहते, विचार विनिमय यह बेटा! कि हमारा संकल्प सदैव ऊंचा बना

रहे महान बना रहे, यह वाक् आज हमारा समाप्त होने जा रहा है, शेष चर्चाएं हम कल प्रगट करेंगें। दिनांक 21 04 1979।

१० 21 04 1979 पुष्प 37 प्राणायाम का महत्व

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परंम्परा से ही उस वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन नकिया जाता है। क्योंकि वह प्रभु ज्ञान और विज्ञानमय माना गया है। उस मेरे देव का ज्ञान और विज्ञान इतना नितांत माना गया है कि उसको कोई मानव सीमाबद्ध नहीं कर सका है। जब हम विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो बेटा! विज्ञान अनन्तवत् दृष्टिपात होने लगता है।

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के विज्ञान को सीमाबद्ध करने वाला हो। क्योंकि सीमा से रहित है उसका विज्ञान। इसीलिए प्रत्येक मानव के लिए उस परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में यह विद्यमान है। प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है कि हम परमपिता परमात्मा का जो विज्ञान है वह इतना अनन्त है कि हम उसको जानने के लिए उत्सुक बनें। और हमारे हृदय में उल्लास होना चाहिए। उसका मन मग्न हर्ष ध्वनि करना चाहिए, करता रहे। जब तक उस प्रभु के आनन्द में अपने में आनन्दित नहीं होता तब तक मेरे प्यारे! प्रभु को हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? हम मग्न होते रहें, हर्ष ध्वनि करते रहें।

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें ऋषियों के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके प्रभु के ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ते रहे हैं। मेरे पुत्रो! इससे पूर्व काल में अथवा आज के वेद मन्त्रों में भी मनस्तत्व की महिमा आ रही थी, जिस मन के द्वारा मानव शुद्ध संकल्प करता है और संकल्पवादी बन करके वह अपने हृदय के अन्धकार को दूर कर देता है। उद्गीत गाता रहता है। तो मेरे पुत्रो! उद्गीत गाना एक गान है। यह मनों से गाया जाता है। जब मानव का मन उल्लास में होता है, उस समय

यह हर्ष ध्वनि करता है। तो मेरे पुत्रो! विचार आता रहता है, प्रभु के राष्ट्र का प्रभु के विज्ञान का।
मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें ऋषि मार्कण्डेय के आश्रम की चर्चाएं कर रहा था। आज भी पुनः से वह वार्त्ताएं स्मरण आ रही हैं। मार्कण्डेय ऋषि यह विचारने लगा कि मैंने अपने देववत् को पाने के लिए इस मन से प्रार्थना की कि तुम मेरे उद्गीत बनो, उद्गीत गाने वाले बनो। तो मन उद्गान गाता रहा। परन्तु यह मन जहाँ शुद्ध संकल्प कर रहा था वहाँ अशुद्ध संकल्प भी आ गया। इससे मुझे विदित हुआ कि दैत्यों ने इसे छेदन कर दिया, अतः इसका उद्गीतपना समाप्त हो गया। जैसे यज्ञशाला में विद्यमान हो करके उद्गाता उद्गीत गान रूपों में गाता रहता है, इसी प्रकार मेरी जो यह शरीर रूपी यज्ञशाला है मेरा जो उद्गीत गाने वाला मनस्तत्व था। वह अशुद्ध हो गया है। उसमें निःसंकल्पता आ गई है।
मेरे प्यारे! ऋषि इस सम्बन्ध में और भी उड़ान उड़ने लगा। यह मन ही है जो नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों को हमें प्रत्यक्ष करा देता है। यह मन ही है जो जब तक उद्गीत गाता रहता है, तो हिंसक प्राणी भी अहिंसा परमो धर्मः को अपना करके चरणों की वन्दना करने लगते हैं। जब ऋषि ने यह विचारा कि इससे तुम सफलता को प्राप्त नहीं होंगे तो देव प्रवृत्ति के ऊपर संकलित होता रहा है। देवासुर संग्राम भयंकर रूप धारण करता रहा। देवता जब सांत्वना को प्राप्त हुए तो यह विचारा कि मन के उद्गीत बनाने से ही केवल हम सफलता को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। क्योंकि हमें यौगिकवाद को पाना है, हमें देववत् को प्राप्त करना है।
तो मेरे पुत्रो! सर्वत्र देवता अपना सुगठित विचार करके, चिन्तन करके, वे प्राणत्व के द्वार पर पहुंचे, प्राण देवता से कहा, हे प्राण देवता! आप हमारे उद्गीत बनो, उद्गाता बनो, मेरे प्यारे! प्राण ने उस वाक्य, उस देवताओं की पुकार को स्वीकार कर लिया। जब देवताओं की उस पुकार को स्वीकार कर लिया, तो उद्गीत गाने लगा। वह उद्गान गाने लगा और उद्गान गाता रहा तो असुरों को यह प्रतीत हुआ कि अब सब देवता प्राण के समीप पहुंचे हैं हमें विजय करना चाहते हैं। असुरों ने अपना एक कर्म बनाया और वह

प्राण को भी छेदन करना चाहते हैं। परन्तु प्राणों से जैसे मिलान हुआ तैसे ही मेरे प्यारे! देखो,! जैसे एक पृथ्वी से उत्पन्न वज्र पर जो आक्रमण किया जाता है तो आधा तक वस्तु छिन्न भिन्न हो गए। उसका उद्गीत चलता रहा। उद्गान गाता रहा। देवता प्रसन्न हो गए।

देवताओं ने देव प्रवृत्तियों ने बेटा! मन को अपना उद्गीत बनाया और मन के पश्चात् प्राण का जो उद्गीत बनाया तो बेटा! । उन्हें यह प्रतीत हो गया कि अब असुर तुम्हारे समीप नहीं आएंगे। असुर प्रवृत्तियां समाप्त हो गईं। मेरे पुत्रो! अब विचार आता रहा। अब मार्कण्डेय ऋषि महाराज प्रातःकाल से ईशत्व को विचार विनिमय करते रहे कि यह जो प्राण है, यह उद्गीत गान गाने वाला है। ये जितनी ध्वनियां जो हो रही हैं संसार में, ये प्राण की ही हो रही हैं। इस ध्वनि पर हमें विचारना है कि इस प्राण शक्ति के द्वारा इस संसार की प्रत्येक वस्तु प्राण शक्ति प्रदान करके ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो जाती है। जितना भी यह जड़ जगत् हमें दृष्टिपात आता रहा है, यह सब प्राण के द्वारा हमें दृष्टिपात आ रहा है। मानो योग में वायु गति कर रहा है। उसमें जो ध्वनि है वह प्राण की ही प्रतीत हो रही है।

प्राण शक्ति जो उद्गीत गा रही है, उस उद्गीत को जो असुरों से वाणी छेदन हो गई थी। अब वाणी को बेटा! मृत्यु से विजय करना चाहता है। प्राण जब उद्गीत गाता हुआ वाणी जब मृत्यु के समीप जाने लगी जब वाणी प्राणों के समीप आई, तो ऋषि ने यह विचारा कि यह वाणी किसका स्वरूप है? तो वाणी अग्नि का स्वरूप प्रतीत हुई। जहाँ ये इस शरीर में, इस पिण्ड में वाणी बन करके दैत्यों से, असुरों से, पाप से छेदन हो गई थी वही वाणी के ऊपर जब यौगिक ऋषियों ने चिन्तन करना प्रारम्भ किया उसके ऊपर मन्थन करना प्रारम्भ किया प्राण शक्ति के द्वारा। तो मेरे प्यारे! इसमें अग्नि का स्वरूप प्रतीत होने लगा। वह वाणी ही तो इस पिण्ड में बेटा! अग्नि बन करके वास कर रही है। इसीलिए इस वाणी के द्वारा अग्नि अपने में स्वरूप को धारण कर लेता है। जब वाणी बाह्य जगत् में विचरण करने लगी तो अग्नि बन गई। अग्नि प्रतीत होने लगी।

तो ऋषि ने यह विचारा कि यदि हम इस वाणी को प्राण के द्वार पर ले करके चलते

हैं तो दैत्य इसे छेदन नहीं कर सकते थे। देखो, वाणी मृत्यु से कैसे पार हो गई? बेटा! जब वाणी ही वाणी थी तो यह दैत्यों के द्वारा छेदन हो गई। परन्तु यह जब अग्नि का स्वरूप बन गया, याज्ञिक स्वरूप बन गया, तो मेरे प्यारे! दैत्य इसे छेदन नहीं कर सका, और याज्ञिक यह बन सकती है प्राण शक्ति के द्वारा। तो मेरे प्यारे! देखो,! प्राण देवताओं का उद्गीत गाने लगा, देवताओं के लिए गाने लगा। यह वाणी मानो पवित्रता को प्राप्त हो गई। इसीलिए मेरे पुत्रो! प्रत्येक मानव को यह विचार विनिमय करना है कि हमें अपनी वाणी को पवित्र बनाना है। और वाणी को हम प्राण शक्ति के द्वारा पवित्र बनाएं। क्योंकि केवल वाणी को असुर छेदन कर सकते हैं और यदि यह वाणी प्राण शक्ति के द्वारा अग्नि का स्वरूप बन जाती है। तो बेटा! इसे दैत्य छेदन नहीं कर सकते। इसीलिए वाणी गाती रहती है। शब्द गतियां करते रहते हैं। कैसा वह मेरा प्यारा प्रभु वैज्ञानिक है पुत्रो! शब्छज्ञें की रचना कठ के द्वारा हो रही है। शब्द के चित्र बन करके अन्तरिक्ष में प्रवेश कर रहे हैं। प्रत्येक शब्द ध्वनि के साथ में। ध्वनि पर ध्वनि गति कर रही है प्राण शक्ति के द्वारा। वह कैसी पवित्र ध्वनि है कि मानव के कठ को सजातीय बना देती है। मानव के कठ को महान् और पवित्र बना देती है। तो मेरे प्यारे! देखो,! कटम् ब्रह्मेः वृताम् देवत्यौ लोकाः। मेरे प्यारे! मुनिवरों! देखो, जितने भी ऊपर वाले लोक लोकान्तर हैं उन पर बेटा! उस ऋषि का अधिपथ्य हो जाता है। उनके ऊपर वह अनुशासन करने वाला बन जाता है। जो बेटा! वाणी को याज्ञिक बना करके, वाणी को यौगिक बना करके प्राण के द्वारा प्रत्येक वाणी का शब्द प्राण के सहित होगा, तो बेटा! जितने भी अग्नि तत्त्व प्रधान लोक लोकान्तर हैं उनके ऊपर वह ऋषि अनुशासन हो जाता है, अनुशासन करने लगता है।

बेटा! मैं आज तुम्हें ऋषि बनाने आया हूँ। ऋषि मानव कैसे बनता है? मेरे पुत्रो! ऋषि अपने पन को देख करके, अपने में ही दृष्टिपात करता है। वह अग्नि को अपने में ही दृष्टिपात करता है। और जब अग्नि को अपने में ही दृष्टिपात करता है, तो जब वाणी प्राण से सुशोभित हो करके गति करती है तो बेटा! इस वाणी को पान करने के लिए मृगराज इसके समीप आ जाते हैं। सर्पराज इसकी ध्वनि को श्रवन करने लगते हैं।

मृगराज आते हैं, सिंहराज आते हैं वे ध्वनि को श्रवण कर रहे हैं।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि भृगु मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। महर्षि भृगु एक समय साम गान गाने लगे। जब वाणी से साम गान गाने लगे, ध्वनियां गतियां करती रहीं। तो मुनिवरों! देखो,! वहाँ जब वाणी का इतना प्रभाव, इतनी ओजस्वी पवित्र वाणी द्वारा जब परमाणुओं की गति होने लगी। तो मेरे पुत्रो! वहाँ सर्पराज आ करके उस ध्वनि को श्रवण कर रहे थे। वहाँ कोई भी मनुष्य नहीं था। कौन? प्राणी आ गए। वहाँ भयंकर वनों से प्राणी उस ऋषि वाणी को श्रवण कर रहे थे। ऋषि सामगान का रहे थे। प्राणों से मिली हुई, प्राणों से सम्बन्धित हुई यह वाणी गतियां कर रही थीं। उसके परमाणु चल रहे थे। सर्पराज श्रवण कर रहे थे। मेरे पुत्रों! देखो,! सिंहराज आ करके हिंसा को त्याग करके अहिंसा में परणित हो गए। उसे किसी प्रकार का भी भय भक्षणाकृति कृति देवाः किसी प्रकार का भी भय नहीं रहा। वे अपने में निर्भयता को प्राप्त हो गए।

निर्भयता उसी के समीप आती है जो इस वाणी को प्राण के साथ में गति कर देता है। प्राण के साथ एक सूत्र में इसको मन के की भांति, एक माला बना करके और उस प्राणी रूपी सूत्र में जब यह पिरो दिया जाता है, तो बेटा! उसे किसी प्रकार का भय भय नहीं होता। इसलिए मेरे पुत्रों! देखो,! मानव को चाहिए कि वह वाणी में इतना महान् बन जाए। वह वाणी देवता बन करके देखो,! हम ऋषित्व को प्राप्त हो जाएं। ऋषि वही होता है, मुनि वही होता है। जैसे बालक अशुद्ध उच्चारण कर रहा है। वह भी माता पिता को प्रिय होता है और शुद्ध उच्चारण कर रहा है, प्राण से पिरो रहा है। मेरे पुत्रो! वह भी निष्कपट और निःस्वार्थवादी जो वाणी है वह माता पिता को, गुरुजनों को कितनी प्रिय होती है। इसी प्रकार मुनिवरों! देखो,! मुनि की जो वाणी होती है वे प्राण रूपी सूत्र में पिरोई हुई वाणी बेटा! बालक वस्तु को प्राप्त करा देती है।

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं अपने विचारों को दूरी में न ले जाऊँ। विचार विनिमय क्या? हम इस वाणी को जो प्राणों से गति कर रही थी, प्राणों से इसका मिलान हो रहा था। अब वाणी पवित्रता को प्राप्त हो जाती है। इसके पश्चात् मेरे पुत्रो! देखो, जब वाणी को

अग्नि जान लिया ऋषियों ने कि यह वाणी तो अग्नि का स्वरूप है, यह वाणी हमारे तक ही सीमित नहीं है। यह वाणी तो अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली है चित्रों को ले करके। यह वाणी तो मानो अग्नि ही अग्नि अग्नि स्वरूपा बन जाती है। वाणी पर संयम करने वाला अग्नि् तत्व प्रधान वाले जितने भी मण्डल हैं, जितने भी लोक हैं, उनके ऊपर उसका अनुशासन हो जाता है।

विचार विनिमय मेरे पुत्रो! क्या? कि आगे चल करके अप्रण अब्रहिः लोकम् देवत्यम् लोकत्रहिः। मुनिवरों! देखो,! अब प्राण ने वाणी को जब मृत्यु से दूर कर दिया, तो इस घ्राण को अपने समीप लाने का प्रयास किया। और प्राण के द्वारा कहा कि घ्राणप्रभि वृताम् देवाः मृत्युः हे मृत्यु से छेदन होने वाली घ्राण! आ, तू मेरे समीप आ। तो मुनिवरों! देखो,! घ्राण जब प्राण से छेदन हो गई, तो वह जो पाप से छेदन, दैत्य, असुरों ने की थी, वे असुर दूर चले गए। वे असुर नहीं रहे। वह दुर्गन्ध नहीं रही। बेटा! देखो,! घ्राण शक्ति में सुगन्धि ही सुगन्धि आने लगी। वह जो हम दुर्गन्धि इसको स्वीकार करते थे, वह भी याज्ञिक रूप में सुगन्धि में परिवर्तित हो गई और वह कैसे परिवर्तित हुई? तो विचारा ऋषि मुनियों ने कि हम योगी बनना तो चाहते हैं, परन्तु हम घ्राण के द्वारा योगी केवल नहीं बन पा सकते, जब तक इसके साथ में प्राण का समन्वय नहीं होगा। जब तक प्राण इसके समीप नहीं आएगा।

तो मेरे पुत्रो! इसीलिए ऋषिजन प्राणायाम करते हैं। बेटा! देखो, नाना प्रकार के प्राणायाम होते हैं। जैसे 1. चन्द्र आकृति 2. अदिति आकृति और 3. स्वातम् ग्रहीवां 4. ग्रहीवाण स्यहिः। मेरे पुत्रो! ये नाना प्रकार के प्राणायाम के स्वरूप माने गए हैं और प्राणायाम जब तक नहीं होता मुनिवरों! जब तक प्राण और घ्राण दोनों का समन्वय न हो। दोनों का ज ब समन्वय हो गया तो बेटा! देखो,! वे योगीजन विद्यमान होकर के अपने एक आसन पर सबसे प्रथम वे मूलाधार में प्रवेश करता है। मूलाधार में प्रवेश करता हुआ मुनिवरों! देखो,! नाभि चक्र में जहाँ वायु वेग से गति कर रहा है। उसके पश्चात् वह स्वाधिष्ठान चक्रों में गति करता हुआ, अष्ट चक्रों में ये प्राण, अब्रहि लोकाः जो मानो घ्राण के द्वारा ही इस मानवप शरीर में जो नाना क्षेत्र बने हैं। बेटा! इनसे वह

दूर हो जाता है। उनसे वह मृत्यु को विजय करता हुआ वह वायु स्वरूप बन जाता है। जब वायु स्वरूप बन जाता है तो कुम्भाकृत इत्यादि प्राणायाम् के द्वारा 5. स्वीकृति, 6. अस्वातन प्राणायामों के द्वारा स्थूल में ही जब यह जान लेता है कि हम यह जो प्राण शक्ति है इसका मिलान घ्राण के द्वारा हो गया है। तो बेटा! देखो, यह मृत्यु से विजय हो गया है। मृत्यु से विजयी हो करके और इसका उत्थान होने लगता है।

ऋषि कहते हैं जैसे वाणी के द्वारा अग्नि थी ऐसे ही घ्राण में जो विचरण करने वाली घ्राण शक्ति में देखो,! इसका नाम वायु है। वायु स्वरूप है। यह केवल घ्राण ही नहीं है। प्राण से जब इसका समन्वय हुआ तो यह वायुस्वरूप बन गया और कैसा वायु स्वरूप बना है? मेरे पुत्रों! देखो,! प्राणों का मानो परमाणुओं का आवागमन, आदान प्रदान होने लगा जिससे मानव की जीवन शक्ति गति करने लगती है और मृत्यु से विजय होने लगता है। मेरे पुत्रों! देखो,! इसीलिए प्राणायाम करने वाला जो ऋषि होता है, प्राणायाम करने वाला जो पुरुष होता है वह मृत्यु से पार हो जाता है। क्योंकि मृत्यु ही तो मानव को, संसार को रुलाने वाली है, मानव को रुलाने वाली है। जब प्राण से इसका मिलान होता है तो घृणात्वाः कृतं वायुः। मेरे प्यारे! यही घ्राण जो स्थूल में बन करके रहती थी। वह बाह्य जगत् में इस ब्रह्माण्ड में बेटा! वायु बन करके गति कर रही है। बेटा! वायु ही है जो मुनिवरों! देखो,! पृथ्वी के परमाणुओं को अन्तरिक्ष में ले जाती है। जब ग्रीष्म ऋतु आती है अग्नि का मिलान होते ही यह जल के परमाणुओं को अन्तरिक्ष में ओत प्रोत करा देती है। जब वृष्टि काल आता है तो वायु का गीलापन हो करके तेज वायु आदित्यों का ही तेज हो करके प्राण शक्ति के द्वारा वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है।

वेही पृथ्वी के कण, वेही जलों के परमाणु मेरे प्यारे! जो अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो गए थे। वह समुद्रों के जलों का उत्थान किया वायु ने। अग्नि के द्वारा अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो गया है। वही तो वृष्टि का मूल कारण है। उस वृष्टि के द्वारा ही नाना प्रकार की वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं। उससे ही खनिज उत्पन्न होने लगता है। उसी के द्वारा मेरे पुत्रो! मानव का जन जीवन ऊँचा बन जाता है। परिणाम क्या है वाक्य उच्चारण करने का? कि आज हम इस घ्राण को जानने वाले बने। यह घ्राण के द्वारा जब प्राण का

समन्वय होता है तो मानव की मृत्यु नहीं आती वह मृत्यु से पार हो जाता है, वह ऋषि बन जाता है। वह प्राणोष्टि बन जाता है।

मेरे पुत्रो! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय बेटा! महर्षि मुगदल मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। महर्षि मुगदल मुनि महाराज जब वेदों का अध्ययन कर रहे थे, गान रूपों में गान गा रहे थे। उसके पश्चात् वह अन्तर्मुखी हो करके प्राणों के द्वारा, घ्राण के द्वारा, प्राणायाम जब करने लगे। दोनों मानों घ्राण का और प्राण का तब समन्वय हो गया। वे प्राण अपान के द्वारा, उदान के द्वारा, व्यान के द्वारा जब इन प्राणों की एकता में हो करके, जब प्राणायाम होने लगा तो मुनिवरों! देखो,! ध्वनि को श्रवण करने वाला बेटा! वायु देवता बन गया जब श्रवण करने लगा तो मेरे पुत्रों! देखो, जो वह प्राणायाम करते थे, तो प्राणायाम करते ही भयंकर वनों से आ करके सिंहराज जैसे आसन पर ऋषि विद्यमान थे ऐसे उसके आँगन में मृग और सिंहराज विराजमान हो करके वे जो उनकी सूक्ष्म तरंगें प्राण के द्वारा गतियां कर रही थीं। हिंसक प्राणी उनके समीप से अपने में ग्रहण कर रहे थे। वे क्यों कर रहे थे, क्योंकि प्रत्येक जो श्वास आ रह था वह श्वास की गति प्राण से पिरोई हुई थी और वह प्राण प्रत्येक प्राणी मात्र में कार्य कर रहा है। प्रत्येक प्राणी दउससे गुंथा हुआ है, एक एक परमाणु गुंथा हुआ है, एक एक लोक लोकान्तर गुंथा हुआ है। मुनिवरों! देखो,! नाना सूर्यो की किरणें आती हैं वे नाना किरणें भी उस प्राण से ही हमें गुंथी प्रतीत होती हैं। इससे प्राणी मात्र को जीवन प्राप्त होता है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें कहाँ ले गया हूँ? मैं महर्षि मुगदल महाराज का जो सूक्ष्मत्तम रहस्य है, जो प्राण शक्ति के द्वारा आ है, घ्राण के समक्ष प्राणायाम के द्वारा आता है। इसको प्राणी भी कैसे अपने में धारण कर लेते हैं। अपने में ही अपने को दृष्टिपात करने लगते हैं तो आओ! मेरे पुत्रो! जब प्राण देवता ने मृत्यु को, घ्राण को भी पार कर लिया, दूर कर लिया। घ्राण को जैसे दूर किया तो मुनिवरों! देखो,! ये घ्राण इस मानव शरीर में घ्राण बन करके रहता है। और जब याज्ञिक बन करके बाह्य ब्रह्माण्ड में बेटा! यही वायु बन करके रहता है। और नाना प्रकार के रूपों में बेटा! जब स्वरूपों में यह गति

करता है कौन? प्राण! मानों वायु रूपी अब श्वास दस रूपों में प्राण के साथ गति कर रहा है।

तो मेरे प्यारे! गृहस्थी उसी के द्वारा वेद में गति करने वाला और शीतली प्राणायाम करने वाला अपनी क्षुधा को, अपनी तृष्णा को समाप्त कर लेता है। आज मुनिवरों! देखो,! एक योगी विद्यमान है। जल उसके समीप नहीं है, और उसे तृषा आ रही है। जल की पिपासा बनी हुई है, तो मुनिवरों! वह शीतली प्राणायाम करता है अन्तरिक्ष में से, वायु में से जल के परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं। जल के परमाणुओं से बेटा! वह अपनी पिपासा को शान्त कर लेता है। इसी प्रकार परणित हो रहा है। बेटा! प्राण के द्वारा घ्राण से मिलान करता है तो प्राण शक्ति वायु में गति कर रही थी। वह उसकी क्षुधा को नष्ट करने वाले उन परमाणुओं को अपने में धारण कर लेता है। उससे क्षुधा भी समाप्त हो जाती है।

मेरे पुत्रो! यह आज मैं इस भयंकर वन में जाना नहीं चाहता हूँ। यह तो बेटा! भयंकर वन है एक प्रकार का। मैं इस वायु के भयंकर वन में नहीं जाना चाहता हूँ। विचारना यह है कि ऋषियों ने यह विचारा कि यह घ्राण तो वायु का स्वरूप है। इसको हम अपने तक सीमित न रह करके इसको व्यापक बनाना। प्राण के साथ में मिलान करके बेटा! व्यापक बन जाती है और व्यापक बन करके ही प्राणी बेटा! मृत्यु से पार हो जाता है।

घ्राण को मृत्यु से जब मिलान किया, जब उसके पश्चात प्राण देवता न चक्षु को अपने समीप लाने का प्रयास किया और चक्षु से कहा, आओ चक्षु! तुम्हें मैं मृत्यु से पार कर रहा हूँ। मैं मृत्यु से तुम्हें उड़ान ले जा रहा हूँ। तो जब वह चक्षु उनके समीप पहुंचे, तो मेरे पुत्रों! देखो, अब चक्षु के ऊपर अनुसन्धान हुआ, विचारा गया। विचारने से यह प्रतीत हो गया कि चक्षु तो आदित्य हैं। चक्षु तो अदिति हैं। मानो यह तो आदित्य रूप हैं।

मुनिवरों! देखो, जो लोक में, ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाश दे रहा है। ऐसे ही इस मानव रूपी यज्ञशाला में, मानव का जो यह पिण्ड है, इस पिण्ड में चक्षु ही तो सूर्य का कार्य कर

रहा है। मेरे पुत्रो! अब जब यह याज्ञिक बन गया तो प्राण का इससे समन्वय हुआ। एक मानव दृष्टिपात कर रहा है। माता को दृष्टिपात कर रहा है। पुत्रों! को दृष्टिपात कर रहा है। पत्नी को दृष्टिपात कर रहा है। पुत्र को कर रहा है। अपने कुटुम्ब को अपने में दृष्टिपात कर रहा है। तो मेरे पुत्रो! जब वह दृष्टिपात कर रहा है तो उसमें शुद्धव्रताः। वह दृष्टिपात करने को शुद्धता है पवित्रता है। वे प्राणों के द्वारा है।

मुनिवरों! देखो,! उसी को जब संकीर्णता से दृष्टिपात करता है तो उसमें मृत्यु रूप आ जाता है। संकीर्णता में मृत्यु रूप बन गया है। मेरे प्यारे! जब उसने याज्ञिकवाद से विचारा कि यह तो आदित्य है। यह तो सूर्य है, यह तो एक सा ही प्रकाश देने वाला है। यही सूर्य है। मेरे पुत्रो! देखो,! कहीं खनिज का निर्माण किसी किरण के द्वारा है। किसी क्रान्ति के द्वारा मेरे पुत्रो! देखो, अन्न की उत्पत्ति हो रही है। नाना प्रकार के खनिज, खाद्य पदार्थों का उत्पत्ति का मूल कारण सूर्य है। इसी प्रकार हमारे इस मानवप शरीर में मुनिवरों! ये जो चक्षु हैं ये भी एक खनिजों का निर्माण करते रहते हैं, दृष्टिपात करते रहते हैं।

मेरे पुत्रो! जब प्राण से इसका छेदन, देखो,! प्राणरूपी क्षब्धों ने बेटा! जब चक्षुओं का छेदन कर दिया, तो मेरे पुत्रो! ये चक्षु भी मृत्यु से पार हो गए। संकीर्णता समाप्त हो गई। वे जो क्षुब्ध था, वे जो पापों ने, मानो असुरों ने इसे पाप से छेदन कर दिया था। अशुद्धऋ संकल्प, अशुद्धता में दृष्टिपात कर रहा था। तो बेटा! वह भी समाप्त हो गया। जब वह समाप्त हो गया, वह भी समाप्त हो गया। जब वह समाप्त हो गया, समाप्त हो गया, समाप्त होने के पश्चात मुनिवरों! देखो, केवल चक्षुओं से शुभ दृष्टिपात करने लगा। मानव की दृष्टि कहाँ चली जाती है बेटा! ऋषि एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष की, अन्तरिक्ष में जितने लोक लोकान्तरों की माला है पुत्रो! उसकी वह दृष्टिपात करने लगता है। क्योंकि प्राण शक्ति इसके द्वारा है। मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! यहाँ उद्दालक गोत्र में श्वेतकेतु ऋषि हुए हैं और श्वेतकेतु ऋषि महाराज, उनकी पत्नी स्वेलता थी। अपने एक आसन पर विद्यमान हो करके देखो, बाह्य याग कर रहे थे और चक्षु के प्राण से छेदन कर रहे थे तो मुनिवरों! देखो,! प्राण शक्ति के द्वारा एकान्त

स्थली पर विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष की यात्रा कर रहे थे। चक्ष! जब अन्तरिक्ष को दृष्टिपात कर रहे थे, तो महात्मा ध्रुव का एक यान था, जो ध्रवमण्डल की परिक्रमा कर रहा था। तो वह मुनिवरों! देखो,! करोड़ों योजन की दूरी वाला यान उन्हें नेत्रों से दृष्टिपात होने लगा। अब मेरे पुत्रो! इतना व्यापक, इतनी याज्ञिक उनकी दृष्टि बन गई केवल प्राण को छेदन करने से।

ब्रह्मचरी कृतिग् देवत्यम् लोकाः। मेरे प्यारे! देखो,! ब्रह्म की चरी को चरने वाला ही तो बेटा! प्राण शक्ति को अपने में धारण कर सकता है। मेरे पुत्रो! उन्होंने ब्रह्म की चरी, दोनों पति पत्नियों को बेटा! 40 40 वर्ष हो गए अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए। नेत्रों से वे प्राण शक्ति के द्वारा इस संसार को दृष्टिपात करने लगे। मण्डलों को दृष्टिपात करने लगे। ऋषि को बेटा! इतनी महत्ता आ जाती है, जब वह चक्षुओं को प्राण से छेदन कर देता है। मुनिवरों! देखा। जितना भी यह मण्डल है और जितने भी देखो,! ये अग्नि तत्व, वाले क्या? आदित्य जितने भी सूर्य मण्डल हैं ये नाना सूर्य उसे दृष्टिपात आने लगते हैं। मुझे स्मरण है ऋषि ने यह कहा है, उद्दालक गोत्रीय ऋषियों ने यह कहा है कि हमें नाना प्रकाश गंगाएं बिना यन्त्रों के दृष्टिपात आती हैं। उन आकाश गंगाओं में जितने सूर्य हैं अरबों खरबों सूर्य हमें एक ही आकाश गंगा में बिना यन्त्रों के दृष्टिपात आते हैं।

मेरे पुत्रो! देखो,! ऋषि कहते हैं कि वे जो वाणी के द्वारा, शब्दों के द्वारा, अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके जो शब्द अन्तरिक्ष में चित्रण हो रहे हैं, वे चित्रण भी हमें अपने इस मानव रूपी जो ब्रह्माण्ड बना हुआ है इस ब्रह्माण्ड में, बाह्य ब्रह्माण्ड को आन्तरिक ब्रह्माण्ड में जब प्रवृत्तियों को ले जाते हैं तो हमें सब दृष्टिपात होने लगता है। मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। एक एक वस्तु का बेटा! यह तो भयंकर वन है। पुत्रो! आज मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा हूँ कि मुनिवरों! देखो,! कौन? इस प्राण रूपी देवता ने बेटा! कौन से? देखो, चक्षुओं को मृत्यु से उड़ान दिया। मृत्यु से वही तो पार होता है, जो बेटा! संकीर्णता को त्याग देता है। मृत्यु से वही पार होता है जो याज्ञिक वाद में परणित हो जाता है। तो बेटा! नेत्रों को उन्होंने अग्नि अदिति

बनाया और अदिति बेटा! देखो,! आदित्यां ब्रह्म कृताम् देवाः। अब सूर्य बन करके बेटा! यह मानव रूपी ब्रह्माण्ड में अपना कार्य कर रहा है। अपनी प्रतिभा मानो परणित करा रहा है।
बेटा! देखो,! ऋषि विद्यमान हो करके याग के जो परमाणु थे उन परमाणुओं में उन्हें स्पष्ट दृष्टिपात आता। यह परमाणु द्यु लोक को जाएगा, यह परमाणु पृथ्वी लोक में जाएगा। मानो देखो,! नाना लोकां के परमाणु थे वे याज्ञिक स्वरूप बन करके, नेत्रों को प्राण से छेदन करके नेत्र को एक मनका बना करके, प्राण रूपी सूत्र में पिरो करके बेटा! प्रत्येक परमाणु उस ऋषि के समीप नृत्य करने लगा। जब नृत्य करने लगा तो ऋषियों के लिए यन्त्र बनाना, यन्त्रों का निर्माण करना कोई असम्भव नहीं रहा। उन्होंने बेटा! देखो,! परमाणुवाद को जाना किसके द्वारा? बेटा! प्राण शक्ति के द्वारा। मानो वे भी तो, परमाणु भी तो प्राण शक्ति है। याज्ञिक रूप में परणित हो करके मेरे पुत्रो! जितना यह ज्ञान, जितना यह विज्ञान है। चित्र बनाना चित्रावलियों से वायु यानों में गति करना। वायुयानों का निर्माण करके ध्रुव मण्डल में जाना और भी नक्षत्रों में प्रवेश करना यह सब योगी के लिए कोई असम्भव नहीं रह जाता।
विचार विनिमय क्या? इन प्रत्येक इन्द्रियों को याज्ञिक रूप धारण करा देता है और प्राण से इनको छेदन करा देता है। मेरे पुत्रो! ये जितने भी सूर्य आदित्य सम्बन्धी मण्डल हैं उनके ऊपर ऋषि का अधिपथ्य हो जाता है।
आओ! मेरे पुत्रो! आज मैं विचार विनिमय क्या दे रहा था? देखो, प्राण देवता ने, प्राण देवतव ने चक्षुओं को मृत्यु से पार कर दिया और मृत्यु से पार होने वाला इस संसार सागर से पार हो जाता है। क्योंकि जब अन्धकार ही नहीं रहेगा उसे बाह्य जगत् में भी, आन्तरिक जगत् में भी निर्माण में भी, परमाणु वाद में भी जब एक ही प्राण शक्ति चैतन्य दृष्टिपात आने लगेगी। गति होता हुआ ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आने लगता है। जब शून्य नहीं रहेगा, अन्धकार नहीं रहेगा तो मेरे पुत्रो! वहाँ मृत्यु क्यों आयेगी?
मुनिवरों! देखो,! मृत्यु से पार होने वाले सर्वत्र ब्रह्म वेत्ता बने। नाना ब्रह्मवेत्ता इस प्रकार अपनी आभाओं में सदैव परणित होते रहे हैं। आज बेटा! मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा

था। आज मैंने देखो,! तीन मनकों की चर्चाएं दीं। वेद का ऋषि एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ रहा है। वह याज्ञिक रूप से इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात कर रहा है। कौन? उद्दालक गोत्रीय ऋषि। चित्रों में, नाना प्रकार के चित्र अन्तरिक्ष में दृष्टिपात कर रहा है।

आओ मेरे पुत्रो! आज का विचार क्या कि मैंने आज केवल तीन मनकों की चर्चाएं की हैं। प्राण से हमारे, ये प्राण रूपी सूत्र के तीन मनके हैं मैं दो मनकों की चर्चायें कल प्रकट करूंगा। आज का ये वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या? कि हम परम पिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण गान गाते हुए, याज्ञिक रूप से इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करते हुए बेटा! हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह हमारा ही कर्त्तव्य है। मानव का इस संसार में आने का उद्देश्य केवल अपने में अपने को जानना है। अपने पन में जब प्रभु को दृष्टिपात करते रहोगे और प्रभु को अपने में दृष्टिपात करते रहोगे तो बेटा! एक समय आयेगा कि तुम इस सागर से पार हो ही जाओगे। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। आर्यसमाज, शक्तिनगर अमृतसर

११ 22 04 1979 पुष्प 37 प्राण का महत्व

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से ही वेदों की जो पठन पाठन की पद्धति है, उसके भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गएं हैं। क्योंकि वेदों का पठन पाठन भी दस प्रकार से किया जाता है जैसे जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, संहिता पाठ, उदात्त और अनुदात्ता आदि। और भी उच्चारण करने के नाना प्रकार के भेदन हैं। आज मैं इन भेदनों में नहीं जाना चाहता हूँ। क्योंकि वेदों का प्रत्येक मन्त्र एक मनके के रूप में होता है। क्योंकि नाना प्रकार के मनके एक सूत्र में पिरोने से माला बन जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक वेद का मन्त्र मनका बन करके बेटा! एक ओम रूपी

सूत्र में पिरोया हुआ है।

इसीलिए प्रत्येक यौगिक, वेद के उच्चारण करने वाला प्रायः वेदों की ध्वनि करता है। वह इनकी ध्वनि क्यों कर रहा है क्योंकि सर्वत्र ब्रह्माण्ड ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोया हुआ है, और प्रत्येक वेदमन्त्र आध्यात्मिक वाद और भौतिक वाद का वर्णन कर रहा है। आध्यात्मिक वाद और जितना भी इसमें ज्ञान है और जितना विज्ञान है वे इस सर्वत्र एक एक कण जितना भी इस पृथ्वी पर है। वह इस कण कण में व्यापने वाला ओ३म् रूपी सूत्र है।

इसीलिए मेरे पुत्रो! प्रत्येक वेद मन्त्रः उस ओ३म् रूपी धागे में पिरोया हुआ है और उसकी एक माला बन जाती है। ओ३म् रूपी सूत्र के द्वारा मनके रूपी वेद की ऋचा, बेटा! जो इस प्रकार की माला को कठ में धारण कर लेता है वह मृत्यु को विजय कर लेता है। क्योंकि उसके सर्वांग में प्रकाश होने लगता है। वह ज्ञान और विज्ञान में रमण करने लगता है।

तो हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत अनुसन्धान किया। और अनुसन्धान करके उन्होंने कहा कि हमें अपने कण्ठ में माला को धारण करना चाहिए। परन्तु वह माला ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोई होनी चाहिए। क्योंकि ओ३म् रूपी सूत्र नहीं रहेगा तो हमारा कण्ठ यह सजातीय नहीं होगा। इसमें महत्ता नहीं आ पाएगी।

तो मेरे पुत्रो! आओ! आज हम उस महामना देव की महिमा का गुणगान गाते चले जा रहे हैं। उस मेरे प्यारे! प्रभु ने बेटा! यह वेदों का ज्ञान प्रत्येक आभा को पिरोया हुआ प्राणी मात्र को प्रदान किया है। क्योंकि ज्ञान और विज्ञान की दृष्टि से ही उसे प्रायः दृष्टिपात किया जाता है।

आओ! मेरे पुत्रो! आज तुम्हें मैं बिखरे हुए मनकों के वाक्य प्रकट कराने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें उन ऋषियों के आसन पर ले जाना चाहता हूँ, जहाँ बेटा! ऋषि मुनि विद्यमान हो करके एक दूसरे की सम्मति, एक दूसरे की सुगठितता, अपनी उस विचार धारा में उड़ान उड़ते थे वह उड़ान कितनी विचित्र और कितनी दार्शनिकता में परणित

होती रही है। क्योंकि ज्ञान और विज्ञान तो मानव का यौगिक गुण है।

कोई भी मानव इस संसार में जब आता है, तो उसके दो ही क्रिया कलाप होते हैं, जिससे वह ज्ञान और विज्ञान दोनों प्रकार से वह इस संसार को जानने की इच्छा करता है। अपना कोई भी कर्म करता है उस कर्म को करके उसको वह दृष्टिपात करता है। मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें विशेषता में नहीं ले जाऊँगा।

केवल वाक्य ये प्रकट करने के लिए कि हमारे जीवन के जितने भी देवता हमारे जीवन की जितनी भी आभायें हैं वे उस मेरे प्यारे! प्रभु से सुगठित हैं। वह जो चैतन्य देव है, उसकी प्रतिभा प्रत्येक कण कण में ओत प्रोत हो रही है। प्रत्येक इन्द्रिय उसी के आश्रित हो करके अपना कार्य कर रही है। मेरे पुत्रो! देखो,! उसमें हमें संलग्न होना है, उसमें लग्नता से हम विचार धारा को अपनी गम्भीरता से और अपने को दृष्टिपात करेंगे, तो बेटा! उसमें हम भी एक सूत्र के मनके होंगे। हम भी बेटा! सूत्र के मनके हैं। इसी सूत्र में पिरोएं हुए हैं। मेरे पुत्रो! इस सूत्र और मनके दोनों को हमें जानना है।

आओ! मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें उस महा ऋषि, मनीषि के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ महामना प्रभु की महिमा का गुण गान गाया जाता है। जहाँ देव के ज्ञान और विज्ञान की प्रायः चर्चाएं की जाती हैं। मेरे प्यारे! देखो,! कौन? महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज। मैं उनकी चर्चाएं कर रहा हूँ। उनका ज्ञान और विज्ञान दोनों नितान्तता में रहे हैं। दोनों के ऊपर अनुसन्धान होता था। परन्तु ऋषि वह विचारता है कि यह भी प्रभु का एक ज्ञान है और ज्ञान और यौगिकता में प्रवेश होने के पश्चात् भी यह विचारता है, यह भी प्रभु की ही प्रतिभा है। और मैं भी प्रभु की प्रतिभा हूँ। अपने को वह प्रभु में दृष्टिपात कर रहा है और प्रभु को अपने में दृष्टिपात कर रहा है।

मुनिवरों! देखो,! जिससे उनमें निराभिमानता, निर्भीकता थी ऋषि यह कहता है कि प्रभु का राष्ट्र जैसे अनन्त उसकी प्रतिभा है अथवा उसकी रचना है। इसी प्रकार वह अनन्त है। वह भी अनन्त है और उसकी महिमा भी अनन्तवत् मानी गई है। मेरे पुत्रो! जब हम उसके मनके हैं तो हमें अभिमान किसका होगा? यह कहाँ से अभिमान व्याप गया है? यह अन्धकार रूपी अज्ञान कहाँ से आ गया है जिससे हम अपने को प्रभु से दूर स्वीकार

कर रहे हैं? मेरे पुत्रो! देखो,! यह अज्ञान कहाँ से आया है? इसी का चिन्तन न करना। यह इसका चिन्तन करना, मनन करना यह हमारा कर्त्तव्य है।
तो आओ! मेरे पुत्रो! देखो,! वैशम्पायन ऋषि और आदि ऋषि बेटा! उनके आसन पर आते रहते थे। त्रीतकेतु ऋषि महाराज, गोग्रीवांछन ऋषि महाराज हरितत गोत्रीय उनके द्वार पर आते रहे। और नित्य प्रति बेटा! विचार विनिमय होता रहा। विचार विनिमय यह हो रहा था कि हम योगी कैसे बनें? हम अध्यात्मिक वैज्ञानिक कैसे बनेंगे? हमारा आध्यात्मिक विज्ञान क्या है? बेटा! योग योग इस चेतना के तन्तु पर्व में जो वस्तु है उसको जानना और जान करके उसमें समावेश करने का नाम मेरे पुत्रो! यह आध्यात्मिक विज्ञान है।
भौतिक विज्ञान क्या है? भौतिक विज्ञान एक परमाणु, द्वयणाक, चतेस्रेणा, पञ्चम परमाणु, त्रसदेणु, त्रसरेणु और पञ्चम त्रसरेणु, इनको जानते रहना और आगे को हमारी गति रहना। वह गति होते होते हम यन्त्रों में उनको एकत्रित करके, उनके यन्त्रों को, हम उनसे यन्त्रों का निर्माण करते हुए और इन यन्त्रों का हम राष्ट्र को अर्पित कर देते हैं मेरे प्यारे! राष्ट्र को भ्ी अर्पित न करो तो अपने द्वारा एकत्रित करते रहो उनसे नाना प्रकार के चित्र क्रियात्मक जो ब्रह्माण्ड में गति हो रही है उसको जानना। यह सर्वत्र भौतिकवाद कहलाता है। यह सब भौतिक वाद है। एक दूसरे के लिए या यंत्रों का निर्माण करना और मृत्यु के लिए, समाप्ति के लिए।
परन्तु देखो,! वही जो उसका यन्त्र है वह उसको अपने में समावेश कर लेता है। वह जो आग्नेयास्त्र बना है वरुणास्त्र ऐसा निर्मित किया है वैज्ञानिकों ने कि वह अग्नि, अग्नि वाला यन्त्र वह वरुणास्त्र में समाहित हो जाता है। तो जहाँ केवल मृत्यु ही मृत्यु थी वहाँ द्वितीय आभा में जीवन भी आ गया परन्तु देखो,! इस प्रकार विज्ञान को जानना इस प्रकार आभा में परणित होने का नाम भौतिकवाद कहलाता है।
मुनिवरों! देखो,! भौतिक विज्ञान के मार्ग से होते हुए, इस भौतिक विज्ञान को जानते हुए, आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश होने का नाम बेटा! यौगिकता मानी जाती है। उसको हम यौगिकता कहते हैं, क्योंकि इस यौगिकवाद के मार्ग से हो करके ही मानव जब

आध्यात्मिक वाद में प्रवेश करता है तो वहीं से वह मृत्यु को विजय करता है। मेरे प्यारे! इस भौतिकवाद में मृत्यु को विजय नहीं कर सकता। है। परन्तु जब इसके मार्ग से होते हुए, इसको जानते हुए और आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है तो वहाँ एक केवल मृत्यु रह जाती है। जिसको हमें विजय करना है।

मेरे पुत्रो! कौन सी मृत्यु? जो इन्द्रियों को पाप से छेदन कर देती है। मेरे पुत्रो! जैसे मैंने वाणी, घ्राण और चक्षु की चर्चाएं कीं। ये तीनों को पाप से असुरों ने छेदन कर दीं। परन्तु जब, प्राण रूपी जीवन उन्हें प्राप्त हुआ सूत्र में पिरोई गई, तो उन्हें बेटा! कोई असुर पाप से छेदन नहीं कर सका। पाप से जब तक छेदन होती है जब तक ये केवल्य (उकांकी) रहती हैं। और जब इन्हें किसी का सन्निधान मात्र प्राप्त होता है, तो असुर इसको छेदन नहीं कर सकते! बेटा! चेतना का, प्राणत्व का, जब प्राण देवता का इन्हें सम्पर्क प्राप्त हो गया तो उसे असुर छेदन नहीं कर सकते।

बेटा! योग में जाने वाला ऋषि इन इन्द्रियों के दोनों प्रकार के स्वरूपों को जानता है। दोनों प्रकार के स्वरूपों को जान करके अग्रणीय बन जाता है। बेटा! मुझे स्मरण है, जब वेद का ऋषि यह विचारने लगा कि यह जो श्रोत्र इन्द्रियां हैं। जैसे चक्षु बाह्य जगत् में आदित्य बन गया। इस मानव पिण्ड में वह चक्ष बना हुआ है। ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों की एकता आ गई। एकता के सूत्र में ये पिरोएं गये। मेरे पुत्रो! जब अदिति बन गया जो अदिति मेरे प्यारे! जो संसार, नाना प्रकार के जिसमें लोक में इसका प्रकाश जाता है, वही निर्माण होता है। क्योंकि प्रकाश से ही तो निर्माण होता है। यदि प्रकाश नहीं होगा तो बेटा! निर्माण भी नहीं होगा।

तो इसीलिए देखो, आदित्य बन गया। बाह्य जगत् में वह आदित्य है और सूर्य है। मेरे प्यारे! आन्तरिक जगत् में वह ही नेत्र बन करके इस मानव को पथ दर्शन कराता है। मानो पथ दर्शन, पथ का दर्शन करने लगता है। यह कौन करा रहे हैं? यह चक्ष करा रहे हैं।

इसी प्रकार हमारे यहाँ श्रोत आ जाते हैं। श्रोत ये क्या हैं? मुनिवरों! जिसे हम श्रवणेन्द्रियां कहते हैं। वे श्रोत ही हैं जिसे कण कहते हैं। इसमें शब्द ओत प्रोत हो गया ये शब्द

उच्चारण कर रहा था उच्चारण करते हुए जो इसमें स्वार्थपरता आई, तो दैत्यां ने इसे छेदन कर दिया। यह कैवल्य मय था। जब प्राण देवता ने यह विचारा यह तो दुखित हो रहा है, पापाचार में है, दुष्वाक्य श्रवण करता रहता है, शुद्ध भी श्रवण करता है, परन्तु शुद्ध शब्द को यह त्याग देता है और अशुद्धता, पापाचार शब्दों को यह ग्रहण करके आवागमन के संस्कारों को यह चित्त में विद्यमान कर रहा है।

मेरे प्यारे! जब प्राण देवता ने यह दृष्टिपात किया तो इसे अपने द्वारा आमंत्रित करके कहा, हे कर्णा! जहाँ दर्शनों की विवेचना श्रवण करते हो बुद्धिमानों के द्वारा वहाँ तुम पामरों (नीचों) के द्वारा अशुद्ध शब्दों को भी ग्रहण करते हो और उसमें तुम तन्मय हो जाते हो। जिस बुद्धिमान की तुमसे वार्त्ता श्रवण की है, जिस प्राण की, जिस देवता की चर्चा प्राप्त की है उसे तो तुमने समपन कर दिया है और जो पामर व्यक्तियों की वार्त्ता श्रवण की उसमें तन्मय हो गया है। आवागमन के संस्कारों को जन्म देने लगे। मृत्यु के मुखार बिन्दु में चले गएं हो, मृत्यु तुम्हें निगल जाएगी।

मेरे पुत्रो! जब श्रोत्रों से यह ऐसा कहा गया तो श्रोत्र प्राण के समीप आ गए। प्राण के समीप आ करके, देवता प्राण ने इसे अपने में परणित कर लिया। और मुनिवरों! देखो,! यही तो इसके व्यापक स्वरूप की जानकारी है। ऋषियों की जानकारी हुई। और क्या जानकारी हुई? मुनिवरों! देखो,! यही जो श्रोत्र, श्रोत्रेन्द्रियां हमारे इस पिण्ड में बन करके श्रोत्र श्रवण करता है। वही शब्द मेरे प्यारे! इसकी वही दिशाएं बन गईं। बेटा! वही दिशाएं बन गईं प्राची दिग् दक्षिणी दिग्, प्रचीती दिकृ और उदीची दिक्, ध्रुवा और ऊर्ध्वा। ये छह दिशाएं बन गईं, इनका निर्माण हो गया।

मेरे पुत्रो! इन कर्णेन्द्रियों ने, इन श्रवणेन्द्रियों ने, इनका व्यापक स्वरूप बन करके बेटा! जहाँ ये केवल श्रवण ही करते थे। अब ये विचारने लगा ऋषि कि यह शब्द कहाँ से आता है? इस शब्द की उद्बुद्धता कहाँ से होती है? जो श्रोत्रों में पहुंचा है इसका सम्बन्ध कहाँ से है? तो बेटा! देखो,! ये दिशाएं प्राप्त हो गईं। दिशाएं क्यों प्राप्त हुई हैं? जब ये पिण्ड में बन करके रहीं पिण्ड ही जानते रहे इस मानव शरीर को। तब तक मेरे प्यारे! ये श्रोत्रेन्द्रियां बनी रहीं। और जब ये ही ब्रह्माण्ड में परणित होने लगीं, ब्रह्माण्ड के

आँगन को दृष्टिपात करने लगीं तो मेरे पुत्रो! ये ही दिशाएं बन गईं।

कैसी अमूल्य दिशाएं बनीं? बेटा! यहाँ हम ध्रुवा और उर्द्धवा को जानते हैं। हम प्रकृति के प्रत्येक गतियों को जानने लगे कि इस प्रकृति में कितनी गति है? बेटा! ध्रुवा है, उर्द्धवा है, प्रसारण है, और मेरे प्यारे! गति है और मुनिवरों! देखो,! आकुंचन है। ये पांचों प्रकार की गति कहाँ से उसे प्राप्त हो गईं। और जितना भी भौतिक विज्ञान है मेरे पुत्रो! इन पांचों गतियां में निहित रहता है।

मेरे प्यारे! एक समय महर्षि कणाद अपने आसन पर विद्यमान थे। अपने आसन पर रह करके मौन थे। शान्त मुद्रा में विद्यमान थे। श्वेत केतु, ब्रह्मचारी कवन्धी, (श्रुवाचक) पनपेतु मुनि की कन्या शबरी। कुछ और ऋषिवर, ब्रह्मचारी महर्षि कणाद ऋषि के द्वार पर पहुंचे। कणाद मुनि से कहते हैं, कणाद ऋषि के द्वार पर पहुंचे। कणाद मुनि से कहते हैं, कणाद ऋषि ने इससे पूर्व मौन कर लिया था, वे मौन थे मेरे पुत्रों! देखो,! उन्होंने जाकर यह प्रश्न किया, ब्रह्मचारी कवन्धी ने, कि महाराज! प्रकृति की कितनी गतियां हैं? तो उस समय ऋषि ने अपने भुजों के बीच कृतियों से उन्हें निर्णित करा दिया। मेरे प्यारे! प्रसारण, गति, ध्रुवा और उर्धवा, और आकुंचन मेरे प्यारे! ये प्रकृति की चार गतियां हैं।

धनं धनं कृतिः देवाः। उन्होंने कहा ये तीन गतियां तो जन्म में कहलाती हैं। और दो गतियां ऊर्वत कहलाती हैं। मेरे प्यारे! ये प्रकृति की 5 गति ऋषि ने ब्रह्मचारियों को वर्णित करा दीं और ब्रह्मचारी ये जान गए जितना भी मुनिवरों! भौतिक विज्ञान वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों में रमण करता रहता है ये पांचों गतियों में गति करता रहता है, नृत्य करता रहता है।

विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो,! ऊर्ध्वा में, उर्द्धवा में, ध्रुवा में आंकुचन और प्रसारण गति इत्यादि ये सब गतियां मानी गई हैं। प्रसारण उसे कहते हैं जो इसका फैलाव कहते हैं। हमारे यहाँ वैदिक प्रसार शब्द आता है स्त्री। स्त्री का अभिप्रायः है जो प्रसारण करने वाली हो। प्रसारण एक से बहुधा की गति आती है। अनेकता में दृष्टिपात आने लगता है। उसे हम गति, उसे हम प्रसारण कहते हैं गति थी जो प्राणत्व कृतियों

में जो गति करता है। उर्द्धवा, गुरूतव, लघुत्व जो रमण करता है वह ऊर्द्धवा, ध्रुवा में रहता है। इनको सबको समेट करके आंकुचन प्रवृत्ति बन जाती है उसको आकुंचन कहते हैं।

मेरे पुत्रो! बहुत से महापुरुष हमारे यहाँ ऐसे हैं जिन्होंने आकुंचन शक्ति के ऊपर बहुत अनुसन्धान किया। जैसे महाराजा हनुमान थे। हनुमान जी जब आकुंचन शक्ति के ऊपर अध्ययन करते थे। उनकी आकुंचन शक्ति बेटा! उनकी बलवती बन गई थी। मुझे स्मरण आता रहता है, त्रेता के काल में जब महाराज हनुमान आकुंचन शक्ति के ऊपर अनुसन्धान करते थे। अपने शरीर को विशाल बनाना और सूक्ष्म बनाना। ये गतियां योगाभ्यास के द्वारा आती हैं।

मेरे प्यारे! देखो,! योगीजन जब अनुसन्धान करते हैं, और योगेश्वर बनते हैं, तो आकुंचन इसमें प्रवेशता आ जाती हैं आकुंचन पना आ जाता हैं यहाँ तक योगी सूक्ष्म बन सकता हैं ऊर्ध्वा मुख में उसके मुख में अर्पित भी कर सकता है। इतना सूक्ष्म बन सकता है। इतना विशाल भी बन सकता है। परन्तु मैं इस भयंकर वन में पुत्रो! जाना नहीं चाहता हूँ। यह तो भयंकर वन है।

आज मैं इस वन के लिए नहीं आया हूँ। विचार देने तुम्हें इसीलिए आया हूँ कि इसका व्यापक स्वरूप बन गया। ये जब दिशाएं बन गईं। इस मानव का शरीर दिशायें मानव के श्रोत्र दिशायें बन गए। तो इससे प्राकृति की गतियों की प्रतीति होने लगी। ऋषियों को इन गतियों की प्रतीति होने लगी कि इस प्रकृति में कितनी गति ह। ै

तो मेरे प्यारे! ध्रुवाः अग्रताम् देवाः। यह प्राची दिग्, उदीचि दिक्। ये प्रतीत भी होने लगता है कि प्राची से प्रकाश आता है और दक्षिण विद्युत भण्डार है और प्रतीचि दिक् में अन्न का भण्डार है और उदीचि से विद्युत और ज्ञान का प्रकाश आता है, और ध्रुवा में आसनम् सिद्धम होता है ऋषि का आसन सिद्ध ध्रुवा से होता है। और प्राण की गति जब ऊर्ध्वा में होती है तो उस समय उर्ध्वा गति से बेटा! ऋषि उड़ान उड़ने लगता है।

तो मेरे पुत्रो! इन दिशाओं का ऋषियों में ज्ञान उस काल में हुआ जबकि उनका जीवन इस पिण्ड से बाह्य ब्रह्माण्ड में जब वह गति करने लगा हैं पिण्ड को उसने पिण्ड ही

स्वीकार कर छवि का स्वीकार कर लिया, और बाह्य जगत् में अपने को व्यापकवाद में ले गया तो मुनिवरों! देखो,! उसे ये ब्रह्माण्ड पिण्ड और ब्रह्माण्ड की दोनों को एक सूत्र में पिरोने की क्षमता उसके द्वारा आ गई।

ऋषियों ने, अनुसन्धान वेत्ताओं ने जिन्होंने आध्यात्मिक विज्ञान का अनुसन्धान किया, उन्होंने केवल एक चक्षु श्रोत्रों से ही इस संसार को जानने की इच्छा की है। इसकी जानकारी हो गई, इसका अनुभव हो गया कि सारा ब्रह्माण्ड तो दिशाओं के ऊपर विद्यमान है। एक मानव शब्द को उच्चारण करता है वह शब्द गति करता जिसका पर्यायवाची शब्द है उसी के द्वार पर जाता है। ऋषियों ने यहाँ तक भी अनुसन्धान किया कि यह शब्द हम अन्तरिक्ष में हमारा शब्द व्याप्य बन जाता है। यह शब्द अब हम उच्चारण कर रहे हैं दूरी तक जाता है इसको हम तंतुओं पर विद्यमान करके यह शब्द, ब्रह्माण्ड में व्यापक बन जाता है। व्यापक बन जाता है जिस लोक के द्वारा। यहाँ तक मुनिवरों! देखो, ऋषि मुनियों को जीवन मुक्त आत्माओं का बेटा! आह्वासन (आह्वान) करते रहे हैं समय समय पर।

विचार विनिमय बेटा! क्या? मैं तुम्हें एक अलौकिक चर्चा प्रकट कर रहा हूँ और उसमें अलौकिकता क्या है? मेरे पुत्रो! देखो,! ऋषिजन जो अनुसन्धानवेत्ता हैं, आत्म वैज्ञानिक हैं उनके समीप जो जीवन मुक्त आत्मायें अन्तरिक्ष में गति करती रहती हैं वे भी मेरे पुत्रो! देखो,! आह्वान मन्त्र इस प्रकार के हैं, जिनसे मन्त्रणा की जाती है मेरे पुत्रो! देखो,! वे भी उनके समीप आ जाते हैं।

आओ! मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने के लिए नहीं आया हूँ। विचारना केवल यह है कि हमारी जो श्रोत्र इन्द्रियां हैं उनके ऊपर हमारा कितना अधिपथ्य होना चाहिए। मेरे प्यारे! ये जो दिशायें हैं प्रत्येक शब्द जो आ रहा है प्रत्येक शब्द व्यापक बन करके प्राण के द्वारा गति कर रहा है। प्राण की ध्वनि रचनाओं में ओत प्रोत हो करके उत्तरराणाम् बृहिः कृतिः। उस ध्वनि को हम श्रवण करने लगते हैं। यहाँ तक हम बेटा! देखो, जो भी ध्विन जो प्राण की शक्ति को जानता है वह प्राण के द्वारा ही बेटा! प्रत्येक प्राणी नृत्य कर रहा है। प्रत्येक प्राणी अपनी अपनी भाषा में अपना भाष्य कर

रहा है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिजन तो, जो योगी होते हैं, इस श्रोत्र को प्राण से जो सम्बन्ध कर लेते हैं। तो इन दिशाओं में, जिनका, जिसका पर्यायवाची शब्द उसी वाची शब्द को जान जाते हैं। सर्प की भाषा को भी योगी जानता है। वह सिंहराज की भाषा को भी जानता है। जो क्रीड़ा करने वाला प्राणी है, उसकी गति जो प्राण से ध्वनि हो रही है, प्राण को जानने वाला इन गतियों को जानता है।

आओ! मेरे प्यारे! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट कराने नहीं आया हूँ। आओ! मैं तुम्हें बेटा! एक ऋषि की चर्चा प्रगट करने आया हूँ। एक समय तुम्हें प्रतीत होगा, तुमने श्रवण भी किया होगा। एक समय महर्षि भृगुमुनि महाराज प्राणायाम् कर रहे थे और प्राण का सन्निधान केवल श्रोत्रों से अपना मिलान मिला रहे थे। इसके ऊपर उन्हें लगभग 101 वर्ष हो गये, तपस्या करते हुए। एक सौ एक वर्ष जब बेटा! तपस्या करते हुए, तो जिस आसन पर विद्यमान थे वे इतना प्राणों में तन्मय हो गए कि उन्हें एक महत्ता ही महत्ता दृष्टिपात आने लग, उन्हें तपस्या करने के पश्चात।

एक समय वे इस श्रोत्र इन्द्रियों की विवेचना करने लगे। और श्रवण करने वाले कौन? भयंकर वन के जितने प्राणी थे। प्रत्येक प्राणी आसन पर मौन हो गए। प्राण से सन्निधान कराने लगे। तो विचार क्या? महर्षि जब ये वर्णन करते कि वाणी अपने में श्रवण कर रहे थे, तो उनको अपनी वाणी का प्रतिपादन मानो उनकी वाणी से प्राणियों को संतोष दे रहे हैं। आश्वासन दे रहे थे कि यह वाणी है तुम्हारी। यह वाणी मैंने तुम्हारी जानी है। तो वे ऋषि जन कण्ठम् ब्रह्मः लोकाः तथा इस वार्त्ता को महाराजा शिव भी जानते थे।

तुम्हें प्रतीत है कि महाराजा! शिव तथा उनकी धर्म देवी जी अपने में तपस्या में परणित रहते थे। दोनों पति पत्नी तपस्या चर में रहते थे। ब्रह्मचर्य व्रत में रहते थे। जब वे योग के क्षेत्र में पहुंचे। प्रत्येक इन्द्रियों को ओइम् से बिंध हुआ उन्होंने दृष्टिपात किया और श्रोत्रेन्द्रिय पर जब अनुसन्धान करने लगे तो इन श्रोत्र इन्द्रियों के द्वारा उनके कण्ठ में सर्पों की माला बन गई। सर्पों की माला बन गई तो मेरे प्यारे! देखो,! वे सर्पराज

उनकी वाणी के द्वारा जो शब्द उच्चारण होता तो उसे श्रवण करते रहते थे।

त्रिशूल

मेरे पुत्रो! जो बाह्य जगत् आन्तरिक जगत् में त्रिगुण बन गया था, जिसे हमारे यहाँ रजोगुण, तमोगुण कहते हैं उसका योगी के द्वारा त्रिशूल बन करके रहता है। त्रि विद्या के रूपों में रहता है त्रिशूल के रूप में वे दृष्टिपात आता है। बेटा! जो प्राण की ध्वनि हो रही थ्री, वे शिवजी का डमरू बन करके रहता है, उसमें ध्वनि उत्पन्न हो रही हैं वह ध्वनि ऋषि अपने में पान कर रहा था। मेरे पुत्रो! जो संसार रूपी जो जगत् है, संकीर्णता रूपी जो विष था, बेटा! वो शिव ने उसे पान कर लिया।

मेरे पुत्रो! आज जब हम यौगिक क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं तब हमें ये सब प्रत्यक्ष दृष्टिपात होने लगता है। यह संसार व्यापकता में ही तो अपने में ही दृष्टिपात आने लगता है और जब तक संकीर्णता रहती है तब तक मानव इस संसार में कुछ नहीं जान पाता। और जब व्यापकवाद आता है तो यह संसार ब्रह्माण्ड और पिण्ड एक सूत्र में पिरो करके इनके मनके बना करके इनको धारण कर लेता है।

तो मुनिवरों! देखो,! सर्पराजों की माला क्या? यह मनम् बृहिः कृताम् देवाः मेरे पुत्रों! देखो,! सर्पों की माला बन जाती है, आभूषण बन जाता है। उस आभूषण को अपना करके योगी निर्द्वन्द्व हो करके, निष्कपट, निर्भय हो करके वह अपने में समाहित हो जाता है। इस ब्रह्माण्ड को अपने में ही दृष्टिपात करने लगता है।

तो मेरे पुत्रो! योगी किसे कहते हैं? योगी उसे कहते हैं जो विष को पान करने वाला हो। बेटा! जो दुर्गुणों को, इस संकीर्णता को, अपने द्वारा उन्हें नहीं रहने देता। वह विष को पान कर लेता है। पान करने का अभिप्रायः क्या है? मानो उसे पान कर के उसे त्याज्य बना करके बेटा! त्याग देता है। जैसे विवेक में, विवेकी पुरुष बेटा! इस संसार रूपी सागर को खारी बना करके त्याग देता है।

मेरे पुत्रो! देखो,! इसी प्रकार आज हमारा अपनी श्रोत्रेन्द्रियों के ऊपर अनुसन्धान होना चाहिए। और वह प्राण रूपी देवता जब श्रोत्रेन्द्रियों को अपने द्वारा लाया तो उसको मृत्यु

से पार कर दिया। वह मृत्यु से पार हो गया। कौन मृत्यु से पार हो गया बेटा! श्रोत्रः। श्रोत्रेन्द्रियां जो पापाचार के शब्दों को ग्रहण कर रही थीं। जो वासना में परणित हो रही थीं जो वासना रूपी शब्दों को ग्रहण कर रही थीं। वह इससे दूर हो गया।

विचार क्या! मुनिवरों! देखो,! नाना ऋषि इस प्रकार के हुए हैं जिन्होंने बेटा! बहुत अनुसन्धान किया है, विचार विनिमय किया है, विचारवान बनना ही मानव का कर्तव्य है पुत्रो!

आओ बेटा! आज का विचार विनिमय क्या? मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक इन्द्रिय पर हमारा अनुशासन होना चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय बेटा! प्राण रूपी सूत्र से ध्वनि में पिरोई हुई होनी चाहिए। जिससे हम प्राण देवता को अपने में अपना करके प्राणायाम करके प्रत्येक इन्द्रिय प्राण से ओत प्रोत होनी चाहिए।

मेरे पुत्रो! आज का विचार विनिमय क्या? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए श्रोत्रेन्द्रियों को हम मृत्यु से पार ले जाएं। मृत्यु इनके समीप न आ जाए क्योंकि श्रोत्रेन्द्रियां जब अशुद्ध शब्दों को ग्रहण करने लगती हैं वासनामय शब्दों को ग्रहण करने लगती हैं, तो ये मृत्यु से पिरोई जाती हैं। और जब ये दर्शनों में चली जाती हैं व्यापकता में प्रवेश हो जाती हैं, तो उस समय मेरे प्यारे! ये श्रोत्र ही ब्रह्माण्ड और पिण्ड में दोनों को एक सूत्रीय आभा में परणित हो जाते हैं।

आओ! मेरे पुत्रो! आज का विचार विनिमय क्या? मैं विशेष चर्चा तुम्हें नहीं प्रगट करने आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को अनुसन्धान करना है। प्रत्येक मानव जो संसार में आता है, यह मानव शरीर जो मानव को प्राप्त होता है यह ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों को एक सूत्र में लाने के लिए होता है। इसीलिए प्रत्येक मानव को, प्रत्येक मेरी मात शक्ति को मेरी पुत्रियों को सदैव इस मानव शरीर को जानते हुए हम यौगिकता में प्रवेश कर जाएं।

मेरे प्यारे! देखो,! इसको व्यापक प्रसारण ही कर तो रहे हैं। परन्तु प्रसारण करके अपने को इतना आकुंचन भा बना लें जिससे हम आकुंचन बन करके हम प्रभु की महिमा का

गुण गान गा सकेंगे। हम प्रभु की आभा का वर्णन कर सकेंगे। मेरे प्यारे! देखो,! ऋषिवर अपने में ही नहीं परन्तु इस संसार को अपने में दृष्टिपात करके ऊर्द्धवा कल्पना, आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश होना। उसमें आभायित होना प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है।

मेरी प्यारी माता, मैं चाक्राणि की चर्चा भी करता रहता हूँ, माता मंदालसा की चर्चा भी करता रहता हूँ, माता मंदालसा जब विद्यालय में अध्ययन करती थी तो बेटा! वे जब पूयज्यपाद श्वेतकेतु ऋषि महाराज के द्वारा अध्ययन कर रही थीं तो बेटा! वो अध्ययन करती करती वेद का मन्त्र श्रोत्रम् दधच्छता देवत्यम् लोकाः। मानो यह जो शब्द अश्रिका स्मरण आयी तो ऋषि से प्रश्न करने लगीं। ऋषि ने कहा इसके ऊपर साधना करो। तो बेटा! मंदालसा 12 वर्ष तपस्या में परणित हो गई। तपस्या में जब परणित हो गईं, जब तप करने लगीं। तप किसे कहते हैं? प्रत्येक इन्द्रिय को तपाना, प्रत्येक इन्द्रिय व्यापक स्वरूप को जानने का नाम तप कहलाता है। उसके ऊपर अनुसन्धान करना, विचारना और उसके सूत्र में जिसका वो मनका है उसी सूत्र में पिरो देने का नाम तप कहा जाता है।

अब मंदालसा जब तपने लगी तो 12 वर्ष पश्चात बेटा! जब उसने इन्द्रियों को प्राणत्व में तिरोहित कर दिया तो जब वो श्रोत्र में पहुंची तो उसे ब्रह्माण्ड दृष्टि पात आने लगा। मेरे पुत्रो! देखो, ये शब्द, विचार भगवान् कृष्ण जी के द्वारा भी थे, वे भी इनको पिरोना जानते थे। मेरे प्यारे! देखो,! इसीलिए तो भगवान कृष्ण ने अर्जुन को बृहद रूप का वर्णन कराया था। इन्हीं रूपों में बेटा! वृहद्, जब छह दिशा प्रतीत होने लगीं तो बेटा! उसी में अग्नि व्याप्त हो रही है, उसी में अमृत गण विद्यमान है, उसी में मेरे प्यारे! संवतसर विद्यमान हो रहा है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड बेटा! उसमें दृष्टिपात हो जाता है। तो मेरे प्यारे! इसी से मानव का विराट स्वरूप है। इस विराट स्वरूप को भी जानना चाहिए। आओ! मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं आगे बेटा! एक मनका और रहा है उस मनके की चर्चा, तुम्हें चर्चा तो नहीं कर सकता आज भी मैंने उस रूप से चर्चाएं नहीं कीं। परन्तु कल बेटा! मैं तुम्हें

मन रूपी मनके की चर्चा कल प्रकट करूंगा।

आज का विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो,! प्राण ने उसे श्रोत्रेन्द्रियों को मृत्यु से पार कर दिया। बिना प्राण के बिना संसर्ग के हम ऊर्ध्वा में नहीं जा सकते। हम ऊधर्वा में जाना है तो हमें अपने में वह जो दो वस्तुओं का संसर्ग हो रहा है जिनका विभाजन हो गया था जिनके स्वरूप बन गएं थे उन स्वरूपों को पुनः से हमें एक सूत्र में पिरोने के पश्चात हम महान् और देवता बनेंगें यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा। आर्य समाज, शक्ति नगर अमृतसर समय सुबह 8 बजे

१२ 23 04 1979 पुष्प 37 प्राण का महत्व

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन किया जाता है अथवा उसके गुणवादन और उसकी पर्यायवाची आभाओं का प्रायः वर्णन आता रहता है।

जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि परमपिता परमात्मा का जो यह ब्रह्माण्ड है, यह विज्ञान मय स्वरूप माना गया है। प्रत्येक मानव परम्परा से ही अनुसन्धान करता रहा है। मानव के अनुसन्धान जो की परम्परा से शैली रही है वह बड़ी विचित्र रही है। दोनों प्रकार के विज्ञान में रमण करने वाले नाना ब्रह्मवेत्ता हुए जो ब्रह्म की धारा को भी जानते और प्रकृति के परमाणुवाद में भी अपनी उड़ान उड़ते रहे।

आज मैं पुत्रो! तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हमारे यहाँ प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि मण्डल परम्परा से ही दोनों प्रकार का विज्ञान प्रायः उनके मस्तिष्कों में रहा। वेद की नाना प्रकार की आख्याकियाएं दोनां प्रकार की धाराओं को जन्म देती रही हैं।

तो मेरे पुत्रो! विचार क्या? हमारे यहाँ, तुम्हें स्मरण होगा बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल

में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था, कि हमारे यहाँ नाना रूपों की उड़ान उड़ने वाले आकुंचन, प्रसारण, उर्द्धवा, ध्रुवा गति वाले और अपने मनस्तत्व पर उसकी विचार धारा, और उसकी धाराओं को अर्पित करने वाले नाना वैज्ञानिक और ब्रह्मनिष्ठ हुए हैं। आज मैं तुम्हें यह उच्चारण विशालता से नहीं केवल परिचय देने के लिए आया हूँ। क्योंकि हमारे यहाँ ऋषि मुनि वेदों का अध्ययन करते हुए, वेदों की नाना प्रकार की साधाओं के ऊपर उनका चलन और उनकी आभाएं रही हैं।

विज्ञान काण्ड में से कुछ साधनों का निकास हुआ कुछ ज्ञान काण्ड में से और कुछ उपासना काण्ड में से। और ब्रह्म काण्ड में से भी कुछ शाखाओं का निकास हुआ। ऋषि मुनियों ने अपनी व्याख्याएं की हैं। और वे जो व्याख्याएं वह बड़ी विचित्र हैं और परमात्मा के स्वरूप का उन्होंने वर्णन किया है। क्योंकि ब्रह्माण्ड का उन्होंने बेटा! पिण्ड से इसका समन्वय किया हैं क्योंकि जब तक ब्रह्माण्ड का पिण्ड से समन्वय नहीं होगा तब तक मेरे पुत्रो! हम योगेश्वर नहीं बन सकते। क्योंकि हमारे यहाँ, परम्परागतों से जितने भी साधक जन हुए हैं अथवा तपस्या चर वाले हुए हैं उन्होंने एक इन्द्रिय के ऊपर गहन किया है और उनको याज्ञिक बना करके बेटा! याज्ञिकता से उन्होंने इसको दृष्टिपात करके अपनी सीमा में रहे। उन्होंने ब्रह्माण्ड की अनेकता को एकता में परिणित करने का प्रयास किया। और एकता को अनेकता में दृष्टिपात भी किया।

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जिस क्षेत्र की चर्चाएं बेटा! प्रारम्भ हो रही थीं। जिन चर्चाओं में मृत्यु से पार होने के लिए मानव परम्परा से प्रयास करता रहा है। यह मृत्यु ही तो रूला देती है प्राणी को यह मृत्यु ही थी जो बेटा! प्रलय रूप में मानो सर्वत्र दृष्टिपात होने वाला पदार्थ मृत्यु के मुख में चला गया है। मृत्यु के कारण ही ये मानव मानो रूदन करता रहता है, कि मेरी मृत्यु नहीं आनी चाहिए। प्रत्येक मानव के हृदयों में आशंका बनी रहती है कि मेरी यदि मृत्यु आ गई तो मेरे इस कुटुम्ब का क्या बनेगा? मृत्यु आ गई तो जिस ज्ञान और विज्ञान को मैंने प्राप्त किया है यह मेरे से पुनः ओझल हो जाएगा।

मेरे पुत्रो! मृत्यु से ही मृत्यु को पुकार रहा है। परन्तु यह विचारना भी चाहिए कि मृत्यु

क्या पदार्थ है? यह भी तो विचार का विषय है। प्रत्येक मानव को यह विचारना है कि यह मृत्यु क्या है? 1. किन्हीं आचार्यों ने बेटा! इसको मिलन से बिछुड़न कहा है 2. किन्हीं आचार्यों ने शरीर के अन्त को ही मृत्यु माना है। परन्तु देखो, 3. यहाँ ऋषियों का मन्तव्य यह है कि जिस इन्द्रिय के द्वारा पाप वस्तुओं ने जिसको छेदन कर दिया वही मृत्यु को प्राप्त हो गया। 4. जिस मानव के द्वारा असुरपना आ गया है, उसके आहार में, उसके व्यवहार में, उसके क्रिया कलाप अर्थात् प्रत्येक क्रिया कलाप में वह प्रभु की महिमा को, अपने में अपने को दृष्टिपात न कर सका। वह मृत्यु के आँगन में चला गया हैं उसे मृत्यु माना है। क्योंकि मृत्यु ही संसार को निगलती रहती है। अंधकार को निगलती रहती ह। ै संवत्सर के आधार पर यह जीव अक्षत बना हुआ है।

मेरे पुत्रो! मैं विचार यह देने जा रहा था। श्रोत्रेन्द्रिय का बेटा! पाप से छेदन होता है और मृत्यु से पार होने के लिए प्राण देवता को अपने समीप लाने का प्रयास किया और समीप ला करके उन्होंने श्रोत्र को मृत्यु से उलांघ दिया, मृत्यु से पार कर दिया। अंधकार नहीं रहा। क्योंकि जो शरीर में सर्वत्र श्रवण इन्द्रिय बनी हुई थी, वह बाह्य लोक में ब्रह्माण्ड से जब इसका मिलान किया गया, ब्रह्माण्ड से जब इसका समन्वय किया गया, ब्रह्माण्ड को जब अर्पित की गई तो मेरे प्यारे! श्रोत्रेन्द्रिय छह दिशा बन करके रह गई और उसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड प्रकाश ही प्रकाश में दृष्टिपात आने लगा। तो बेटा! जब प्रकाश ही प्रकाश हो गया तो मृत्यु वहाँ न रही। मृत्यु का विनाश हो गया।

मेरे प्यारे! देखो,! मृत्यु का यहाँ जब अन्धकार ही नहीं तो मृत्यु कहाँ रहेगी। मृत्यु तो अन्धकार ही में रहने वाली है। मृत्यु तो अज्ञान में रहने वाली है। वह ज्ञान में रहने वाली नहीं मैं मार्कण्डेय ऋषि के द्वार पर तुम्हें ले जा रहा था। उनकी चर्चाएं प्रारम्भ हो रही थीं। जो बेटा! भौतिकवाद में भी पारायण और आध्यात्मिकवाद में भी पारायण थे। मेरे पुत्रो! देखो, और भी नाना ऋषि विद्यमान हो गए। उनके समीप आ गए। चिन्तन मनन चल रहा था। विचार होने जा रहा था। तो मेरे प्यारे! देखो,! मनस्तत्व पर आ गए। यह मनस्तत्व क्या है? जो यह मन बेटा! देखो,! शरीर में गति कर रहा है। यह मन जब मेरे प्यारे! इस मानव पिण्ड में मन बन करके जब तक रहता रहा, तब तक

असुरों ने इसे छेदन कर दिया था। असुरों ने इसे पाप से छेदन कर दिया। जहाँ मुनिवरों! देखो,! यह मन विशाल ऊँचा संकल्प करता था वहाँ विकल्प और अशुद्धता भी आ गई। यह जहाँ जहाँ दर्शनों की विवेचना कर रहा था, वहाँ यह अशुभ विवेचना भी करने लगा। यह जब अशुभ विवेचना करने लगा तो वहीं यह पाप से छेदन हो गया। मानो! मृत्यु ने इसको अपने में जकड़ लिया। मृत्यु ने अपने में अपना ग्रास बना लिया। अपना भोज्य बना लिया मृत्यु ने। मृत्यु को जब क्षुधा लगी तो बेटा! इस मन को निगल लिया। मन को निगलती हुई बेटा! कहाँ चली गई? वह अपने असुरों के द्वार पर चली गई।

मेरे पुत्रो! विचार आता रहा ऋषियों को कि यह जो मन है इसको हमें जानना है। इस मन को बेटा! जब प्राण रूपी देवता ने अपने समीप लाने का प्रयास किया और प्राण रूपी देवता ने कहा, मन! तुझे मैं मृत्यु से पार ले चलूं। बेटा! जब यह मन प्राण रूपी देवता के द्वार पर पहुंचा तो मेरे प्यारे! देखो,! इस प्राण देवता ने अपने ऊर्ध्वा में अर्पित करते हुए यह जहाँ शरीर में, पिण्ड में यह मन बन रहा था। जब यह बाह्य जगत् में ब्रह्माण्ड में दृष्टिपात किया तो यही चन्द्रमा के रूप में बन गया। यह मन चन्द्रमा बन गया। सोम की वृष्टि करने लगा। मेरे प्यारे! प्राण का जब मिलान हुआ तो मन का जो वास्तविक स्वरूप था वह चन्द्रमा के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा।

मेरे पुत्रो! जब चन्द्रमा सोम की वृष्टि करता है। उस सोम को योगीजन पान करते हैं। जैसे माता वसुन्धरा के गर्भ स्थल में जब कृषक बीज की स्थापना कर देता है तो मेरे पुत्रो! चन्द्रमा से सोम की वृष्टि होती है। और सोम को पा करके कृषि उपजाऊ, उपयोगी बन जाती है। नाना प्रकार की सोमलताएं उत्पन्न हो जाती हैं। मेरे प्यारे! वे जो सोमलताएं हैं, वे जब मानो! उर्द्धवा में आने लगी तो वही मानव का अन्नमय प्राणों को संचालित करने वाला, मन में स्मरण शक्ति लाने वाला मेरे प्यारे! वह मनस्तत्व है वह अन्न मय बन गया और वह मनस्तत्व को प्राप्त होने लगा।

मेरे प्यारे! वह कौन है? वह मन की एक धारा है, वह मन का स्वरूप है कि वह सोम की वृष्टि करने लगा क्योंकि प्राण का सन्निधान हो गया। अथवा प्राण देवता ने जब

उसके चन्द्रमा के स्वरूप का वर्णान कराया, चन्द्रमा दृष्टिपात करने लगा तो, बेटा! वह सोम को पान करने लगा। उसी सोम के द्वारा, बेटा! जब योगीजन समाधिस्थ होते हैं समाधिस्थ जब होने लगते हैं तो बेटा! वे मूलाधार, मूलाधार से नाभि चक्र, नाभ्चिक्र से स्वाधिष्ठान चक्र, से हृदय चक्र, हृदय से कराठ चक्रों में रमरा करता हुआ बेटा! घ्रारा के द्वारा चला जाता है और घ्रारा के द्वार पर यह त्रिवेणी में चला जाता है। जहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों का, तीनों नदियों का मिलान होता है।

इस मानव शरीर रूपी पिराड में मेरे प्यारे! तीन नाड़ियां कहलाती हैं एक गंगा है, एक यमुना है और एक सरस्वती। इसको मुनिवरों! देखो,! इडा पिंगला और सुषम्ना कहते हैं मेरे पुत्रो! जब यह मनस्तत्व, प्राण देवता के समीप मिलान करता हुआ जब यह त्रिवेणी में जाता है तो वहाँ पर ये तीनों नदियां एक हो करके त्रिमार्ग में रह करके एक हो करके ये ब्रह्मरन्ध्र में चली जाती हैं।

जब यह ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है, तो ब्रह्मरन्ध्र की जो पंखुड़ियां हैं वे गति करने लगती हैं। जब गति करने लगती हैं तो ब्रह्मरन्ध्र के उर्ध्वा भाग में पी आशा क्रेत केतु एक स्थान कहलाता है जिसमें बेटा! सोम रहता है। जब वे पंखुड़ियां गति करती हैं तो उसमें वे अमृत रूपी परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

किन्हीं किन्हीं ऋषियों का यह मत है कि वे रसना के अग्र भाग से उसको पान करता है। परन्तु जिन ऋषियों का यह मत है कि परमाणु जब गति करने लगते हैं, तो वे योगी ब्रह्माराड को, लोक लोकान्तरों को दृष्टिपात करना उनके लिए खिलवाड़ बन जाता है।

जब ब्रह्मरन्ध्र से वे नाड़ियां त्रिवर्धा एक बन करके गति करती हैं तो मुनिवरों! वे जब सोमरस को पान करती हैं, तो मुनिवरों! देखो, एक धारा में सहस्रों क्या? अरबों खरबों धाराएं जन्म ले करके उर्ध्वा गति में उनका समन्वय हो जाता है। जब समन्वय होता है तो उसके लिए जो नाना लोक लोकान्तर हैं, वहाँ उनका क्रिया कलाप, उनमें जो गतियां हैं हो रही हैं, उनमें जो प्राणी मात्र हैं, योगी जब उसको दृष्टिपात करने लगता है। वह सोमरस कहलाता है। वह सोमरस कहाँ से आता है? पुत्रो! वह चन्द्रमा का

उज्ज्वल स्वरूप माना गया है।
हमारे आचार्यों ने चन्द्रमा की दो व्याख्याएं की हैं। एक व्याख्या यह है कि यह चन्द्र मण्डल है। एक व्याख्या यह है कि जब सोम की वृष्टि होती है तो यह ब्रह्माण्ड एक चन्द्र स्वरूप बन करके सोम की वृष्टि करता रहता है। जैसे पृथ्वी को यह चन्द्रमा सोम से भर देता है। इसी प्रकार जब योगीजन योगाभ्यास करते हैं, ब्रह्मरन्ध्र के द्वार पर जाते हैं तो मुनिवरों! देखो, प्राणत्व, मनस्तत्व इन दोनों का सन्निधान हो करके, मिलान हो करके यह जो पिपाद स्थान है जिसमें से सोम की वृष्टि होती है, सोम के परमाणु झरने लगते हैं उसको मेरे प्यारे! ऋषि जन अन्तर्मुखी हो करके पान करते हैं। अन्तर्ध्यान हो करके पान करने लगते हैं। मेरे प्यारे! देखो,! वहाँ आवागमन की प्रतिभा भी समाप्त हो जाती है।
मेरे प्यारे! यही मन है। वही मनस्तत्व है जिसके ऊपर चिन्तन करना है आज हमें इस मन को। यह मन जब चन्द्रमा बन गया पिण्ड के स्वरूप में से ओझल हो करके वह याज्ञिक बन गया तो बेटा! चन्द्रमा बन गया। चन्द्रमा सोम की वृष्टि करने लगा। यह सोम प्रत्येक वनस्पतियों में पान करता रहा। यह सोम ही प्रत्येक वनस्पतियों में आभायित कराता रहा।
मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें ऐसे आसन पर ले गया हूँ जहाँ सोम की वृष्टि होती रहती है। मुझे बेटा! जब अपने पूज्यपाद गुरुओं के आसन पर जाने का सौभाग्य प्राप्त था, तो सोम के जहाँ परमाणु बिखर रहे हों बेटा! वहाँ हिंसक प्राणी भी मौन हो करके उनको पान करने लगते हैं।
मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण है। एक समय महर्षि दधीचि अपने आसन पर विद्यमान थे। महर्षि दधीचि बेटा! आसन पर विद्यमान हो करके वे सोम को पान कर रहे थे। मेरे प्यारे! जो मन चन्द्रमा बन करके सोम की वृष्टि करने लगा तो सबसे प्रथम वे मूलाधार में पहुंच गएं थे। मूलाधार जब अनुभव कर रहे थे। जहाँ इस मूलाधार में प्रवेश करने से मनस्तत्व, प्राणतत्व चन्द्रमा का जितना रस इस पृथ्वी के गर्भ स्थल में नृत्य कर रहा था वह उस ऋषि को बेटा! मूलाधार में ही स्मरण होने लगा। उन्हें वह दृष्टिपात होने लगा। भू तल

की वार्त्ता, भूतल का विज्ञान उसके समीप आ गया।
उसके पश्चात् वे नाभिचक्र में चले गये। नाभिचक्र में जहाँ वायु गतियां कर रही थीं। भिन्न भिन्न प्रकार की वायु बेटा! दस (10) प्रकार की वायु गति कर रही थीं। उन वायु की तरंगों में भी उन्हें सोमरस दृष्टिपात आ रहा था। वे सोम को पान कर रहे थे।
मेरे प्यारे! जब नाभि केन्द्र से वे स्वाधिष्ठान चक्र में आ पहुंचे तो वहाँ अग्नि का प्रकाश, अग्नि प्रचण्ड हो रही है। अग्नि अपने वेग में। मेरे प्यारे! अग्नि में भी सोम दृष्टिपात आ रहा था। सोम जब अग्नि बन करके सोम उसमें दृष्टिपात हो रहा था ऋषि को। ऋषि ने उसमें आगे गति की।
आगे चल करके हृदय चक्र में प्रवेश किया तो बेटा! हृदय जो गति कर रहा था उसमें एक चित्रिकाम् ब्रह्म लोकाम् अन्तरिक्षाम् देवाः। अन्तरिक्ष विद्यमान था। अन्तरिक्ष में जहाँ शब्द स्थित रहता है। जहाँ शब्दों की धाराएं रहती हैं। जब शब्द चित्र के समीप रहते हैं। जहाँ शब्द अपनी अपनी आभा में गति करने लगता है। मेरे पुत्रो1 जहाँ से जो संजीवित है वहाँ वह पितर लोकों को प्राप्त कर, पितर लोकों को दृष्टिपात करने लगता है। शब्दों के द्वारा, अन्तरिक्ष के द्वारा। मेरे प्यारे! अन्तरिक्ष का जो सूक्ष्म मण्डल है वह हृदय चक्र में से हृदय आभा में और उस अन्तरिक्ष में बेटा! उसे सोम दृष्टिपात आ रहा है।
वह सोम को पान करता हुआ कण्ठ चक्र में पहुंच गयां जहाँ मेरे पुत्रो! देखो,! चित्त में जहाँ उदान प्राण का वास रहता है। प्राण की एक धारा का नाम है उदान। जब यह मानव शरीर को त्यागता है प्राणी, तो उदान, चित्त का मण्डल अश्राम् ब्रह्मयेः मनस्तत्व सोमम् बृहिः यह सोम। जब यह आत्मा उससे निकल जाता है उदान प्राण के द्वारा चित्त का मण्डल प्राणों से गुंथा हुआ। वह चित्त से दृष्टिपात होने लगता है योगी को।
यह जो चित्त दृष्टिपात आ रहा है इस चित्त में बेटा! करोड़ों करोड़ों जन्मों के संस्कार विद्यमान होते हैं। उस योगी को कण्ठ चक्र में जाते ही करोड़ों जन्मों के जो संस्कार चित्त में विद्यमान हैं बेटा! उसे साक्षात्कार होने लगते हैं। मुनिवरों! वह साक्षात्कार करने

लगता है।

मेरे पुत्रो! देखो, जब कण्ठ चक्र से मैं तुम्हें परिचय करा रहा हूँ व्याख्या नहीं दे रहा हूँ उसके पश्चात् जब यह कण्ठ चक्रों से ऊर्ध्वागति में घ्राण चक्रों में जाता है, तो अन्तरिक्ष से जितने परमाणु आते हैं, आदान प्रदान घ्राण के द्वारा हो रहा है। परमाणुवाद मानों यातायात बना हुआ है। परमाणुओं के साथ में उस मानव का चित्र, जिसमें चित्र जन्म जन्मान्तरों की आभा में वायु मण्डल में प्रवेश कर गएं हैं, वे घ्राण चक्र में जाते ही बेटा! उसे साक्षात्कार होने लगते हैं।

मेरे पुत्रो। आगे जब ये त्रिवेणी में जाता है, तो जितनी त्रिविद्या है, संसार का जितना भी ज्ञान और विज्ञान है वह सब त्रिविद्या में माना गया है मेरे पुत्रो! ज्ञान, कर्म, और उपासना इन तीनों का जब त्रिवेणी में स्थलियों में प्राप्त होने लगता है तो मुनिवरों! देखो,! यह संसार त्रिविध दृष्टि पात होने लगता है। आत्मा, परमात्मा और प्रकृति। बेटा! ये तीनों उस ऋषि को साक्षात्कार अर्थात् ये जो स्वरूपों में दृष्टिपात होने लगता है।

मेरे प्यारे! और इसके पश्चात् जब ये त्रिवेणी को भी त्याग देता है। नाना कृतिकायें होती हैं। इस त्रिवेणी के स्थान में। परन्तु मैं इन कृतिकाओं की व्याख्या में नहीं जाऊँगा। तुम्हें परिचय कराने के लिए आया हूँ। व्याख्या तो मैं किसी काल में करूंगा जब वेदों का मन्त्र आता रहेगा, विचार विनिमय करता रहूँगा। आज तो मैं केवल तुम्हें परिचय करा रहा हूँ।

पुत्रो! उसके पश्चात यही वृतम् देवाः जब ये ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है, तो सर्वत्र उसको सोम ही सोम दृष्टिपात होने लगता। एकांकी चरण बन गया है। अनेकता में एकागी चरण बन करके सर्वत्र सोम ही सोम जैसे जलाशयों में जल ही जल तुम्हें प्रतीत होता है। नाना तरंगां में भी अमृत दृष्टिपात होता है।

इसी प्रकार वहाँ पिपाद और ब्रह्मरन्ध्र दोनों का समन्वय हो करके अमृतमय हो जाता है। तो परिणाम क्या? वेद के ऋषियों ने यह कहा है, हे मानव! मैं महात्मा दधीचि की चर्चा कर रहा था। महात्मा दधीचि बेटा! देखो,! मूलाधार से लेकरके ब्रह्म रन्ध्र, पिपाद स्थान तक सोम को ही दृष्टिपात करते रहे। यह सोम दृष्टिपात तब होता है जब मुनिवरों!

यह मन और प्राण दोनों का समन्वय होने पर ये मृत्यु को उलांघ देता है। इसकी मृत्यु नहीं होती। मेरे पुत्रों! देखो,! एक सूत्र में मनका बन करके रह करके माला के सदृश बन जाता है। तो मेरे पुत्रों! विचार विनिमय क्या? मैं तुम्हें यह विचार देने जा रहा था, कि यह मन है जिस मन को, प्राण को संयम से यह संसार अमृतमय बन जाता है। हमें अमृत को पान करना है। इसी को बेटा! ऋषिजन, इस संसार रूपी सागर को खारी बना करके बेटा! जैसे महर्षि दधीचि ने सर्व को जाना। यह महर्षि अगस्त्य मुनि ने जाना।

अगस्त्य मुनि जब इसका अनुसन्धान करने लगे योग मन और प्राण का। दोनों का अनुसन्धान करने से उन्होंने रत्नार्थ बनते हुए इस संसार रूपी समुद्र को जैसे उपस्थ इन्द्रिय के द्वारा जन्म ब्रह्मः कृत्याः खारी बना करके त्याग देता है।

इसी प्रकार महर्षि अगस्त्य मुनि ने बेटा! इस संसार को अपने विवेक, ज्ञान के द्वारा इससे अमृतमय संसार से अपने को बनाते हुए संसार से पान हो गये। यह संसार रूपी जो सागर है इसमें मान नहै, कहीं अपमान हो रहा है, कहीं घृणा से दृष्टिपात कर रहा है कहीं अधृणा आ रही है, कहीं मेरे प्यारे! लोलुपता में परणित हो रहा है। यह जो संसार रूपी नाना प्रकार की तरंगें मानव को प्रभावित करती रहती हैं। मन और बुद्धि को प्रभावित करती रहती हैं। जब ये मन अपनी चतुष्बुद्धियों (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) को ले करके प्राण देवता के समीप चला गया तो मेरे प्यारे! यह संसार रूपी सागर को खारी बना करके जैसे, अगस्त्य मुनि के जीवन में आता है कि उन्होंने इस संसार रूपी सागर को खारी बना करके त्याग दिया, वैसे ही योगी मानव को त्याग देता है।

इसी प्रकार हमें भी अपने जीवन में संसार रूपी सागर को खारी बना करके त्याग देना है। इससे उदासीन होना है। उदासीन होकर के ही मृत्यु से पार हो सकोगे। मानव का उद्देश्य संसार में क्या है? ये व्याख्यायें ऋषियों ने क्यों की हैं? क्यों इसको जानने का प्रयास किया है। क्योंकि संसार का कोई प्राणी मृत्यु को नहीं चाहता है। वह मृत्यु को उलांघना चाहता है, मृत्यु से पार हो जाना चाहता है। मेरे पुत्रो! मृत्यु से पार तुम कैसे

होगे? जब तक जीवन अमृतमय नहीं बनेगा। अमृत ही अमृत हमें दृष्टिपात करना है। इसके पश्चात, मेरे पुत्रों! विचार विनिमय क्या? कि हमें अमृत को दृष्टिपात करना है अमृतमय बनना है। अमृतमय कौन बनता है? मेरे प्यारे! जो योगी होता है। योगी कौन होता है? जो प्राण देवता के द्वार पर चला जाता है। उससे अपना समन्वय कर लेता है। प्राण देवता मृत्यु से उलांघ देते हैं। क्योंकि प्राण के समीप असुर नहीं आते। क्योंकि असुर तो उसके समीप इसलिए नहीं आते कि वे प्राण असुरपन को स्वीकार नहीं करते। अतः उनका साहस नहीं बनता, वे स्वार्थी ही को देखना चाहते हैं। परन्तु प्राण देवता तो ऐसा देवता है मुनिवरों! देखो,! यह पाप से छेदन नहीं होता। यह सदैव अमृत ही बना रहता है। यह सदैव निःस्वार्थ रहता है। स्वार्थ त्याग का आदर्श है। यह सर्वत्र आभा में गति करने वाला है। सदैव निःस्वार्थ रहता है।

इसी प्रकार मुनिवरों! देखो,! प्रत्येक प्राणी को प्राण की भांति निःस्वार्थ हो करके अमृत को पान करना है। सोमरस को पान करते हुए बेटा! इस संसार सागर से पार होना है। मेरे प्यारे! मन की बहुत सी आभाएं हैं। समय आता रहेगा मैं तुम्हें प्रगट करता रहूँगा। आज तो मैंने तुम्हें बेटा! संक्षिप्त परिचय कराया है। अब इसके आगे की जो चचाएं हैं, मैं चर्चाएं करता रहूँगा। आज का विचार विनिमय क्या? कि जब हम देवता प्राण के समीप पहुंचे तो वह मन एक मनका बन करके सूत्र में पिरोया गया। मेरे प्यारे! ये पांच मनके हैं। जो इन पांचों मनकों को बेटा! प्राण रूपी देवता के समीप और उस सूत्र में पिरोएं जाते हैं। वही बेटा! सोमरस को पान करता है और जो सोमरस पान करता है बेटा! वही मोक्ष को चला जाता है। वह ही मोक्ष में प्रवेश कर जाता है। और जो मोक्ष में जाता है वह ही परमानन्द का आनन्द लेता है बेटा! वह ही आवागमन के क्षेत्र से दूर हो जाता है। यह है पुत्रो! आज का हमारा वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि मैंने बेटा! तुम्हें श्रोत्रों से चलकर मन रूपी मनका, प्राण रूपी सूत्र में पिरोने का प्रयास किया और मेरे प्यारे! वह भी अनुसन्धान की दृष्टि से। यही मुनिवरों! देखो, योगी क्या, ये ही वैज्ञानिक जनों की भी

एक आभा बन करके रहती है। आओ मेरे पुत्रो! आज का विचार समाप्त। अब मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं इस मन के सम्बन्ध में कल प्रगट करूंगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। स्थान : आर्य समाज, शक्तिनगर, अमृतसर समय : सुबह 7 बजे।

१३ 03 11 1979 पुष्प 38 वाणी की महत्ता पुष्प उपलब्ध नही है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुण गान गाया जाता है क्योंकि जो देवत्य रूपों में रमण करने वाला है अथवा जो देवताओं के हृदय में समाहित हो रहा है आज हम उस देव की महिमा का गुण गान गाने के लिए आयें हैं जो सर्वत्र आभा में रमण करने वाला है।

हमारे आचार्य बहुत परम्परागतों से ही, नाना प्रकार का अनुसन्धान करते चले आए हैं। हमने इससे पूर्व काल में तुम्हें वर्णन करते हुए कहा था कि मानव को धर्म को अपना लेना चाहिए। परन्तु धर्म की मीमांसा करने वालों ने धर्म के सम्बन्ध में अपनी बहुत सी मीमांसाएं की हैं। किन्हीं आचार्यों ने बेटा! धारण करने का नाम ही धर्म कहा है, परन्तु धर्म एक ऐसी प्रतिभा है जो धारण नहीं किया जाता वह तो स्वतः ही उनमें समाहित रहता है। क्योंकि जिस वस्तु का जन्म होता है वह उसका धर्म माना गया है। यदि उसमें धर्म नहीं होगा तो उसका जन्म लेना भी नहीं बन पाता। इसीलिए धारण करने की वस्तु धर्म नहीं होती। क्योंकि वह तो स्वतः ही विद्यमान है और जो वस्तु स्वतः विद्यमान रहती है उसके धारण करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। परन्तु किन्हीं आचार्यों ने का मन्तव्य है कि यह जो संसार है इसको जानने का नाम धर्म है। परन्तु यदि वेदमन्त्र के ऊपर विचार विनिमय प्रारम्भ करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह संसार तो स्वतः ही अपने रूपों में विद्यमान है। इसका जानने का नाम भी धर्म नहीं बनता। क्योंकि जानने का नाम धर्म इसलिए नहीं बनता कि मानव जो अपने ऊपर अनुसन्धान

करता है, अपने ऊपर स्वतः अपना दर्शन करना प्रारम्भ करता है, वह इसको जानना चाहता है। वह तो स्वतः इसमें विद्यमान रहता है और जिसमें जो विद्यमान है वह बाहरीय रूपों में उसे जानना चाहता है, तो यह धर्म नहीं बनता।

तो इसलिए मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें कुछ ऐसे स्थलों पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ वाणी के सम्बन्ध में मैं अपने वाक्य कुछ प्रकट करने के लिए आया हूँ। यह जो मानव के मुखारबिन्दु से शब्द अथवा ध्वनि उत्पन्न हो रही है उस ध्वनि को जानना, उसकी जो प्रतिभा है वह जो इस संसार में शब्द बन करके ओत प्रोत हो रही है उस ओत प्रोत हुए भौतिक जगत से हम अध्यात्मिकता से उसका समन्वय चाहते हैं क्योंकि प्रत्येक मानव की एक आकांक्षा बनी रहती है कि मैं अपने स्वरूप को दूरिता में दृष्टिपात करना चाहता हूँ। तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें ऋषियों के आश्रम पर ले जाऊगा जहाँ बहुत से ऋषियों ने इस सम्बन्ध में अनुसन्धान किया है। परन्तु वाणी के सम्बन्ध में वाणी जितनी भी मानव की पवित्र होती है उतना ही वह हिंसा से दूर हो जाता है और अहिंसा उसमें समाहित हो जाती है। और वह अहिंसा उसके हृदय से उसका आयतन रहता है उसी में उसका वास रहता है।

तो मेरे प्यारे! यह जो वाणी है यह वाणी के कारण ही इस संसार को विजय किया जाता है, लगभग एक लोक को विजय किया जाता है। द्यौ मण्डल को विजय किया जाता है। तो हमें उस वाणी के ऊपर अनुसन्धान करना है। क्योंकि प्रत्येक मानव कुछ अनुसन्धान करने के लिए संसार में आता हैं उसके आने का उद्देश्य क्या है? केवल यही उद्देश्य नहीं कि संसार में आए हैं अपने उदर की पूर्ति करके यहाँ से चले जाना है। यह मानव का उद्देश्य नहीं है।

मानव का यदि कोई उद्देश्य है तो अपने ही पन में अपने को जानना है। मेरे प्यारे! देखो, यह केसा आश्चर्य है? प्रत्येक मानव जिस स्थली में रहता है, वास करता है उसी को नहीं जान पाता। यह केसा आश्चर्य है? इस मानव शरीर में नाना प्रकार की नस नाड़ियां हैं। रक्त संसार हो रहा है। हृदय विद्यमान है। हृदय रूपी गुफा में वह तत्त्व विद्यमान है जिससे बेटा! हृदय गतिशील हो रहा है, जिससे यह मानव शरीर गतिशील

हो रहा है। उस गतिशील हुई वस्तु को बेटा! हम दृष्टिपात नहीं कर पाते। यह केसा आश्चर्य है? तो मुनिवरों! इस आश्चर्यजनकता को हमें दृष्टिपात करना है। हमारा उद्देश्य, केवल आने का अभिप्राय यही है कि हमें उसे जानना है।

तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा में नहीं ले जा रहा हूँ। केवल वाक्य यह प्रकट करने के लिए आया हूँ। कि मुनिवरों! इस वाणी के ऊपर हमारे यहाँ, परम्परागतों से ऋषियों ने बहुत अनुसन्धान किया है। ऋषि मुनियों ने हिंसा का जो प्रादुर्भाव माना है वह वाणी ही प्रमुख माना है। क्योंकि वाणी से मानव कटु उच्चारण करता है उस कटु उच्चारण करने से ही हिंसा बन जाती है। उत्तेजना आ जाती है। तो इसीलिए वाणी इतनी मधुर, इतनी प्रिय होनी चाहिए जिससे हम वाणी के पृथ्वी मण्डल को विजय करने वाले बन सकें। मेरे प्यारे! यही वाणी शब्द बन करके द्यौ लोकों में रमण करता है। दूसरे प्राणियों के हृदय में हम वाणी के आयतन को शोधन कर लेते हैं अथवा पवित्र बना देते हैं तो वह हमारे अन्तर्हृदय में वाणी का जो रूप बन गया है, उसे बाहरीय जगत में हिंसक प्राणी भी स्वीकार करते हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! महर्षि रेवक मुनि महाराज का जीवन। महर्षि रेवक मुनि, महाराज ने जब अपने गृह को तिलांजली दी और उन्होंने अपने मन में यह विचारधारा बना ली कि मुझे तो प्रभु! को प्राप्त होना है और प्रभु के द्वार पर जाना है और मानव दर्शन का हमें दिग्दर्शन करना है। ऐसा जब रेवक मुनि महाराज के हृदय में यह समाहित हो गया, उन्होंने बेटा! अपने मातृ गृह को त्याग दिया और यह विचार लिया कि मैं ब्रह्म का चिन्तन करूंगा और चरि को जानने का मैं प्रयास करूंगा। मेरे प्यारे! अपने मन में यह धारणा बना कर कि मैं अमृतमयी ज्योति बनना चाहता हूँ, मैं वर्चस्वी बनना चाहता हूँ क्यों कबाल्यकाल में वेद का अध्ययन करते थे। माता पिता का संसर्ग उन्हें जब प्राप्त हुआ तो माता के चरणों में, पिता की आभाओं में वह सदैव संलग्न रहते थे। वह दोनों ही वेद के मन्त्रों के दृष्टा थे। दोनों ही अनुसन्धान करने वाले थे। वह बाल्यकाल में भी अनुसन्धान करते थे। और माता यह कहा करती थी कि हे बालक! मेरा यह गर्भाशय तब पवित्र बनेगा जब तू विवेकी और ब्रह्मवेत्ता बनेगा। क्योंकि ब्रह्मवेत्ता

बनना एक महत्ता कहलाती है।

हमारे यहाँ तीन प्रकार की ऐषणा कहलाती है। बेटा! सबसे प्रथम हमारे यहाँ पुत्रेष्णा है, द्वितीय वितेषणा है, तृतीय लोकेषणा मानी जाती है। आचार्यों ने यह कहा है, ऋषियों ने यह कहा है तीनों ऐषणाओं को त्यागने का नाम ब्रह्म की पिपासा में जाना है। ब्रह्म जिज्ञासु बनना है। पुत्रेषणा बनती है। वितेषणा बनती है और लोकेषणा बनती है। ै मानो पुत्रेषणा क्यों बनती है? क्योंकि वह अपने को इकाई स्वीकार करता है इसलिए उसे बहुधा की इच्छा बनी हुई है। उस एक से द्वितीय की इच्छा बनती है, स्वतः बनती रहती है। मुनिवरों! जब वह और ऊर्ध्वा में गति करता है तो वित्तेषणा बन जाती है। क्योंकि उससे वह कर्म करने के लिए तत्पर हो जाता है। एक से बहुत बनने की कामना यह उत्सुकता बनी तो उसी से वित्तेषणा। क्योंकि उससे वह कर्म करता है। वह याग करता है, इसी से अपने मानव जीवन को सौभाग्यशाली स्वीकार करता है। द्वितीय जो ऐषणा है वह मेरे पुत्रो! लोकेषणा बन जाती है। लोकेषणा उसे कहते हैं कि लोकों में मेरी कान्ति होनी चाहिए। मेरी महत्ता मेरा मान जो जीवन है वह समाज मेरी कीर्ति करने वाला हो। तो मुनिवरों! उसे हमारे यहाँ लोकेषणा कहते हैं। लोकेषणा में राष्ट्रीय भाव भी आता है। लोकेषणा में विज्ञान भी आता है। और विज्ञान के साथ में मुनिवरों! यह जो राष्ट्रीय आभा है यह भी उसी लोकेषणा में समाहित हो जाता है। मेरे पुत्रो! यह तीन प्रकार की ऐषणा कहलाती है।

रेवक मुनि महाराज की माता शाकुन्तलम कहती थी कि हे पुत्र! मैं तीनों ऐषणाओं से तुम्हें ऊर्ध्वा गति में दृष्टिपात करना चाहती हूँ। मेरे प्यारे! माता की पुत्र के लिए यह कामना सदैव बनी रहती है। वह चाहती है कि मेरा पुत्र ऐषणाओं से ऊर्ध्वा हो क्योंकि वित्तेषणा तो निकृष्टता है और वित्तेषणा एक मात्र ही व्रत कहलाती है परन्तु लोकेषणा एक मान और अपमान की आभा कहलाती है। तो मेरे पुत्रो! इन ऐषणाओं से मानव ऊर्ध्वागति में जाना चाहता है। ै महर्षि रेवक मुनि महाराज इनको विजय करके मेरे पुत्रो! भयंकर वनों में गान गाते थे। गान एक स्थली है मेरे पुत्रो! उसमें गान गाते रहते थे क्योंकि गान वही गाता है जो एकान्त अपने प्रभु से वार्त्ता प्रकट करता है। अपने प्रभु

से वार्त्ता प्रकट करने का नाम ही बेटा! उसका गान गाना है।
गान कौन गाता है? वाणी उद्गीत गा रही है, गीत गा करके वाणी सुगन्धित होती है। वाणी सुगन्धित कैसे होती है? मेरे प्यारे! आन्तरिक जगत में जब गान गाने वाले में अहिंसा परमो धर्म, आ जाता है। अहिंसा परमो धर्मः आ जाता है, परम धर्म आ जाता है तो वाणी की स्वतः सुगन्धि होती है। क्योंकि वाणी से ही तो पिण्ड की गाथा गा रही है। ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। जैसे यह पृथ्वी है, यह पृथ्वी ब्रह्म की गाथा गा रही है, नाना प्रकार के खनिजों के द्वारा, वनस्पति के द्वारा, समुद्र इत्यादियों के द्वारा। जब मुनिवरों! वैज्ञानिक इसके गर्भ में प्रवेश करते हैं तो यह पृथ्वी ब्रह्म की गाथा गाती हुई दृष्टिपात आती है। इसी प्रकार मेरे प्यारे! रेवक मुनि महाराज ने जब अपने आन्तरिक जगत को महान बनाया तो पिण्ड की गाथा यह वाणी गा रही थी।
मानो उद्गीत गा रही है। मानो गान रूपों में गा रहीह ै जहाँ उसके गान को श्रवण करने के लिए जब यह वाणी शुद्ध विशुद्ध रूपों से गान गाती है, इसको मृगराज, सर्पराज, सिंहराज आ आ करके बेटा! उस गान को श्रवण करने लगते हैं। वह गान, वह अहिंसा परमो धर्म बेटा! उसके हृदय में समाहित हो गया है। वही देखो, वाणी उसका रूप बन करके बाहरीय जगत में सुगन्धि बन करके रहता है और वह सुगन्ध मेरे प्यारे! निर्शत्रुता में परिवर्तित हो जाती है। उसका कोई शत्रु नहीं रह जाता। अहिंसा परमो धर्मः है। महत्ता है, उज्ज्वलता पवित्रता है, ओजस्विता है, तेजोमयी वर्चस्वी कहलाती है।
तो आओ मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा हूँ कि रेवक मुनि महाराज इन ऐषणाओं से ऊर्ध्वा गति में एकान्त स्थली में गीत गा रहा है। वेद का ऋषि, मन्त्र दृष्टा गीत गाता हुआ भयंकर वनों में कौन है? भयंकर वनों में बेटा! शून्यता छायी हुई है। परन्तु ध्वनि आ रही है। ध्वनि का प्रसार हो रहा है। योगेश्वर को यह ज्ञान हो गया है विवेकी को यह ज्ञान हो गया है कि तेरी जो वाणी है यह अन्तरिक्ष में लय हो जाएगी। अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाएगी। तो देखो, महर्षि रेवक मुनि महाराज अपनी वाणी को अन्तरिक्ष में ओत प्रोत करा रहे थे। ब्रह्म मण्डल में उनकी

आभा प्रकट हो रही थी। मानो उसी में समाहित होने जा रहे थे।
मेरे पुत्रो! देखो, रेवक मुनि महाराज एक समय गान गा रहे थे। जब वह उद्गीत गा रहे थे तो बेटा! सोमभानु ऋषि महाराज बारहस्वी गोत्र में उत्पन्न हुए। वह भ्रमण कर रहे थे, वह ब्रह्म जिज्ञासु थे। जिनके मनों में एक धारणा बनी हुई थी। क्या? मैं किसी ब्रह्म वेत्ता के समीप जाना चाहता हूँ। तो मुनिवरों! वह भ्रमण करते हुए रेवक मुनि महाराज के द्वार पर पहुंचे महर्षि रेवक मुनि महाराज बोले तुम्हारा आगमन कैसे हुआ ब्रह्म जिज्ञासु? उन्होंने कहा कि हे भगवन! आप तो ब्रह्म वेत्ता हैं। रेवक मुनि महाराज ने कहा कि यह कैसे प्रतीत हुआ कि मैं ब्रह्म वेत्ता हूँ। उन्होंने कहा आप की जो वाणी की सुगन्धि है आप की उच्चारण करने की जो प्रतिक्रिया है, उसने मेरे हृदय को विदीर्ण कर दिया है। मेरे हृदय को उसने प्रभावित कर दिया है। आपकी ब्रह्मो मयी जो शब्दावली है वह मेरे अन्तःककरण में समाहित हो गई है। जब मैं अपने पित्रों के द्वारा विद्यमान हो करके शिक्षा ग्रहण करता था, तो ब्रह्म वेत्ता की जो उन्होंने मीमांसा की है वह मीमांसा मुझे स्मरण है। इस आधार पर मैंने आपको ब्रह्मवेत्ता कहा है। आपके चरणों में ओत प्रोत हो करके मैं ब्रह्म की आभा को जानना चाहता हूँ।
मेरे प्यारे! वही वाक्य उन्होंने उच्चारण कर दिया कि वाणी से उद्गीत गाते हैं। मेरे प्यारे! वह बारहस्वी ऋषि ब्रह्म की गाथा गाने लगा। मानो उद्गीत गाने लगा। मेरे प्यारे! जो विशुद्ध रूपों से वाणी से उद्गीत गाता है, ध्वनि उच्चारण होती रहती है वही ध्वनि मेरे प्यारे! वायु मण्डल को पवित्र बना देती है। वायु मण्डल कैसे पवित्र होता है? यह वाणी के द्वारा होता है। यह उसके मन के, आन्तरिक जगत का भाव है। जब तक उसके आन्तरिक जगत में अि हंसा न आ जाए, हिंसा का भाव समाप्त न हो जाए, तब तक वह ब्रह्म जिज्ञासु अथवा ब्रह्म की आभा में रमण करने के लिए तत्पर नहीं और द्वितीय जो स्वरूप है, मेरे प्यारे! जैसे यह मनका है वाचा कहलाता है। वाचा में हमारी वाणी में मधुरपन होना चाहिए। हमारे व्यवहार में कुशलता होनी चाहिए, जिससे व्यवहार कुशल प्राणी साधारण लोकों को विजय कर लेता है। हमारे यहाँ वाणी से उच्चारण करने वाला दूसरों के हृदयों को परिवर्तित कर देता है। एक मानव अशुद्ध उच्चारण कर रहा

है। परन्तु विशुद्ध रूप जब वाचा उसके समीप आता है तो उसका हृदय, उसका वाक्य भी स्वीकार कर लेता है कि वास्तव में तू अशुद्ध है।
मेरे प्यारे! एक कर्मणा होता है। कर्म में भी मेरे प्यारे! कोई इच्छा नहीं होनी चाहिए। यह मनसा, वाचा, कर्मणा मानो उन तीन रूपों से हिंसा प्रारम्भ करता है। अहिंसा में तीन ही रूप आ जाते हैं। इन तीनों रूपों से मानव के कर्म में, वचन में और मुनिवरों! आन्तरिक जगत में तीनों भाव एक रूप होने चाहिए।
यह मैं महर्षि रेवक मुनि महाराज के जीवन के ऊपर कुछ विवेचना कर रहा था। वह अपने जीवन में सदैव ऐषणाओं को त्याग करके ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होने लगे। उनका इतना मनोमयी उत्थान हो गया, अदम्य ज्योति उनके हृदय में समाहित हो गई। मेरे प्यारे! वह एकान्त एक गाड़ी के नीचे अपने जीवन को व्यतीत करते रहते थे। एक सौ एक वर्षों तक गाड़ी के नीचे तपस्या करते रहे। उद्गीत गाते रहे। प्राणी आते, उनके गीत को श्रवण करके अपने आश्रम को प्रस्थान करते, एक मानव ही नहीं, प्राणी मात्र उस गीत को श्रवण करता रहता।
तो आओ मेरे प्यारे! मैं आज तुम्हें देखो, दूरी ले गया। कल मैंने तुम्हें उच्चारण किया था, यही शब्द है जिसके ऊपर हम संयम करते हैं, विचार करते हैं तो विज्ञान के युग में भी प्रवेश करते हैं। बेटा! मैंने तुम्हें उच्चारण किया था यह उद्दालक गोत्र इन ऋषियों का। मैंने तुम्हें उनकी वार्त्ता प्रकट कराई उद्दालक गोत्र का ऋषि बेटा! एक समय याग कर रहा था। जब वह याग कर रहा था तो यज्ञशाला में आहुति दे रहा था। जब अग्नि में आहुति दे रहा था, तो प्रार्थना कर रहा था। वेद का ऋषि, हे अग्नेय! तू देवताओं का मुख है, तू सूक्ष्म बना करके देवताओं को प्रसाद रूप में प्रदान कर देता है। तू प्रसाद देता है। हे अग्नि देव तू भस्म नहीं कर देता है। तू प्रसाद देता है। हे अग्नि देव तू भस्म नहीं करता परन्तु सूक्ष्म बना देता है। मानो सूक्ष्म बना करके वह पर्जन्य रूपों में कहीं परिवर्तित हो जाता है। कहीं वायु मण्डल में मिश्रित हो करके वह सुगन्ध के रूप को धारण कर लेता है। तो मुनिवरों! देखो, वेद का ऋषि यह प्रार्थना कर रहा था, हे अग्नि देव! तू मेरे देव! आज मैं तेरे ऊपर अनुसन्धान करूंगा अवश्य करूंगा। तो बेटा! वह

पति पत्नी दोनों याग कर्म करते थे। पति पत्नी का कर्त्तव्य है एक दूसरे को सहकारिता में, सहयोगता में अपने को समाहित कर देने का नाम ही पति पत्नित्व माना गया है। वेद का ऋषि कहता है, दोनों का स्वरूप एक दूसरे में आभायित रहना चाहिए और वेद की आख्याकियाओं को विचारना चाहिए। देव पूजा और याग होने चाहिए। जो देव हमारे हृदय में कार्य कर रहे हैं, जिनसे हमारा जीवन संचालित हो रहा है, वह देवता पौष्टिक बन करके, हमारे जीवन के साथी बन करके एक महान और पवित्रता को धारण कराने वाले हों। तो मेरे प्यारे! मानो पति पत्नी दोनों याचना कर रहे थे।

बेटा! एक समय देवी ने कहा, हे प्रभु! मेरी इच्छा यह है चलो हम भयंकर वनों में याग करेंगे। अग्नि की पूजा करेंगे। अग्नाध्यान करके हम पूजा करेंगे, उसको हम देव पूजा कहेंगे। मेरे प्यारे! देखो, वह उद्दालक गोत्रीय ऋषि और उनकी पत्नी भयंकर वन में जा पहुंचे। उनके द्वारा एक कामधेनु पशु था। गऊ थी उस कामधेनु के दुग्ध के द्वारा नाना साकल्य एकत्रित करके वह याग कर्म करते थे। जब वह याग करने वाले बने तो मुनिवरों! याग में जो परमाणु उत्पन्न होता था, उन परमाणुओं के ऊपर वह अनुसन्धान करने लगे। एक समय अनुसन्धान करते हुए उन्हें एक परमाणु दृष्टिगोचर हुआ क्योंकि उनकी दृष्टि सूक्ष्म थी। हमारे यहाँ याज्ञिक दृष्टि सूक्ष्म बन जाती है। उसके लिए कोई परमाणु असम्भव नहीं रहता। वह उसके गर्भ में प्रवेश कर जाता है। उन्होंने परमाणुओं के गर्भ में प्रवेश किया। तो मुनिवरों! सृष्टि का चित्र उन्हें दृष्टिपात आने लगा। मेरे प्यारे! उन परमाणुओं को उन्होंने एकत्रित किया और एकत्रित करके उन्होंने दूर दृष्टि नाम के एक यन्त्र का निर्माण किया। इसमें वह परमाणु एकत्रित करने लगे। उन परमाणुओं के मिलान से कुछ पार्थिव तत्त्व परमाणुओं का समन्वय किया और उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया। उन्होंने उस यन्त्र का निर्माण किया तो बेटा! वह यन्त्र त्रितकेतु भेष्टअनवतहः नचकेतु नाम का वह परमाणु था उसमें नाद होता था। शब्द की प्रतिभा उससे उत्पन्न होती रहती थी। उस शब्द का जाना तो उन्हें नाना प्रकार के शब्दों से आभा प्राप्त होने लगी। जैसे मानव जब योगाभ्यास करता है, योगेश्वर जो अपने नाद को स्वीकार करता है वह प्राणों की ध्वनि है, मन का समन्वय है। मेरे प्यारे! वह जो

ध्वनि है मस्तिष्क के ऊपरले भाग में, ब्रह्मरन्ध्र से ऊर्वा गति से नाना प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती हैं। उन्होंने एक और यन्त्र का निर्माण किया बेटा! जिसमें ध्वनि के चित्र उनमें प्रवेश करने लगे। चित्र आभा में रमण करने लगे। पति पत्नी याग कर रहे हैं, वही स्वरूप उन्हें यन्त्रों में दृष्टिपात आ रहा है। उन्होंने इस विज्ञान के ऊपर अनुसन्धान किया। एक बार उनकी देवी ने कहा प्रभु! हमने यह जो विज्ञान को जाना है इससे आध्यात्मिकवाद से इसका क्या समन्वय है? क्या सम्बन्ध है प्रभु! मेरे प्यारे! ऋषि पत्नी कहती है इसका समन्वय होना चाहिए। मेरे प्यारे! ऋषि कहता है, हे देवी! हम यह जो याग कर रहे हैं यह देव पूजा कर रहे हैं। इसका मानव दर्शन से समन्वय है। परन्तु मानव दर्शन में जो चेतना है उस चेतना से मानव दर्शन का सम्बन्ध है। तो हे देवी! यह जो मानव शरीर में चेतना विद्यमान है और बाहरीय जगत का जो भौतिक विज्ञान है इसका समन्वय यह है। विज्ञान जो हमने जाना है, अपने विचारों को इतना व्यापक बनाया है, अपने क्रिया कलापों को बनाया है, यह इतना व्यापक बन गया है, जहाँ यह समाप्त होगा। वहाँ से हम आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर जाएंगे। आध्यात्मिक युग में जब प्रवेश करेंगे, आत्म विज्ञान में, आत्म विज्ञान वहाँ से प्रारम्भ होता है जहाँ भौतिक विज्ञान समाप्त हो जाता है। जब मानव की आभा समाप्त हो जाती है वहाँ मानव बाहरीय जगत से मौन हो जाता है और आत्मस्वरूप में अपने में अपने का दिग्दर्शन कर लेता है। मेरे प्यारे! इसको आध्यात्मिक ज्ञान कहते हैं।

तो आओ मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हमें जहाँ भौतिक विज्ञान में प्रवेश होना है, वहाँ आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों का समन्वय करके ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों की आभा में परणित हो जाना है। प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या को विचार विनिमय यह करना है कि हम प्रभु की आभा में रमण करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। आओ मेरे प्यारे! पुत्रो! आज मैं तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ और परिचय क्या है? कि वाणी पवित्र होनी चाहिए। वाणी में महत्ता होनी चाहिए। क्योंकि वाणी ही विज्ञान के युग में कहाँ कहां प्रवेश कर जाती है। कैसे चित्र आते हैं? वह सब विज्ञान का विषय बन

जाता है। परन्तु देखो, इन मानव ऐषणाओं से तुम्हें ऊर्ध्वागति को प्राप्त होकर के अपना मानव दर्शन करना है। यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। विनय नगर

१४ 10 11 1979 पुष्प 38 आयुर्वेद-रावण का निधन कैसे?

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। उसके ज्ञान और विज्ञानमयी आभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है। प्रत्येक वेदमन्त्र के ऊपर चिन्तन करने से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उसका यह अखण्ड जो ब्रह्माण्ड है, यह अनुपमता में दृष्टिपात आता है।

आज का हमारा वेदमन्त्र कुछ हमें प्रेरणा देता चला जाता है। आज हमारे यहाँ एक वेदमन्त्र आया। जिन वेदमन्त्रों में कुछ लोक लोकान्तरों की भी चर्चाएं थीं। कुछ बुद्धिमानों के संकेत हैं। मानो कुछ व्यावहारिक संकेत हैं। मेरे प्यारे! जब इन संकेतों के ऊपर हमारे ऋषि मुनि, एकत्रित हो करके मनन और चिन्तन करते रहे हैं। उसके ऊपर उनकी उड़ान रही है और ऊर्ध्वा उड़ान वेत्ताओं ने बहु बहु कृतां देवाः बेटा! बहुत प्रकार से उड़ान उड़ी है। जैसा मैंने बहुत पुरातन काल में, तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था। एक समय बेटा! ब्रह्मचारी कवन्धि और गार्गेपथ्य भारद्वाज मुनि के यहाँ विज्ञान में पारायण थे। परन्तु याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ भी, उनका कुछ शिक्षण हुआ। परन्तु वह यह कहा करते थे वेदमन्त्र के ऊपर उड़ान उडते हुए, विश्वं ब्रह्म विशश्वं आकाश ब्रहे वृणाति सृष्टं देवां स्हस्राणि मेरे प्यारे! यह वेदमन्त्र प्रायः उच्चारण करते रहे हैं, और ब्रह्मचारी कवन्धि इसके ऊपर अनुसन्धान करने लगा। एक वेदमन्त्र के ऊपर वर्षों अनुसन्धान होता रहा। परन्तु जब नक्षत्रों की वार्त्ता आई, वेदमन्त्र यह कहता है एक

आकाश गंगा है और उस आकाश गंगा में नाना सूर्य गति करते हैं। अदिति विश्रां वृहि अदिति अपने प्रांगण में गति करने वाले है।
मेरे प्यारे! मुझे यह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में ऋषि अपने यन्त्रों के द्वारा एक समय बेटा! आकाश गंगा का दिग्दर्शन करने लगा। तो उनकी विज्ञानशाला में, भारद्वाज की विज्ञानशाला में मेरे प्यारे! छह सौ बहत्तर आकाश गंगाएं दृष्टिपात आती थीं और एक आकाश गंगा का जब वर्णन करने लगा ऋषि तो वर्णन करता हुआ कहता है कि एक समय में सूर्यों की गणना करने लगे एक आकाश गंगा में पांच खरब, पचानवे अरब उन्नतीस करोड़, उन्नंचस हजार, पांच सौ बावन मैंने एक आकाश गंगा में सूर्यों की गणना की। परन्तु जब मैं उन सूर्यों की गणना करता रहा तो अन्त में मैं मौन हो गया। मुझे जब एक आकाश गंगा में इतने मण्डल हैं और यह सूर्य मण्डल कितना विशाल है जिस सूर्य में मुनिवरों! जैसा हमारा यह पृथ्वी मण्डल है ऐसी ऐसी तीस लाख पृथ्वियाँ एक सूर्य में समाहित हो जाती हैं। तो यह प्रभु को कैसा अनन्तमयी जगत् है? वह प्रभु कितना वैज्ञानिक है? वह कितना विज्ञान में गति करने वाला है।
मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें लोक लोकान्तरों की गणना कराने के लिए नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें विज्ञानशाला में नहीं ले जा रहा हूँ। ये तो एक वेदमन्त्र का कुछ मानो वाक् कृति उसका परिचय कराया है, और बेटा! तुम्हें पुरातनकाल में बहुत सी विवेचनाएं दीं। आज मुझे इतना समय नहीं। हम तो केवल अपना परिचय देते हैं, अहा! वैदिकता का परिचय देने के लिए चले आते हैं और वह परिचय क्या है? कि यह ब्रह्माण्ड अनन्तवत माना गया है। यह ब्रह्माण्ड एक महान आभा में गति करने वाला है। मेरे प्यारे! देखो, योगेश्वर और वैज्ञानिक, अध्यात्मिक, विज्ञानवेत्ता और भौतिक विज्ञानवेत्ता, इन दोनों का जब तक समन्वय नहीं होता। मुनिवरों! राष्ट्र और समाज कोई अपने में उन्नत स्वीकार नहीं करता। क्योंकि विज्ञान के साथ में, यदि आध्यात्मिकवाद नहीं है तो मुनिवरों! अध्यात्मिकवादम् ब्रह्मेः यह विज्ञान अपंग बन जाता है और यदि योगेश्वर इस भौतिकवाद के मार्ग से हो करके अध्यात्मिकवाद में प्रवेश नहीं करता तो अध्यात्मिक

विज्ञानवेत्ता भी अपंग बन जाता है।

बेटा! विशेषता में मैं तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार क्या है? कि जितना भी यह व्यापार, भौतिक विज्ञान का है, इसका सम्बन्ध मन से माना है और मन की प्रतिक्रिया तो जब तक पूर्ण रूपेण जानकारी उसे नहीं होती तब तक वह अध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर ही नहीं सकता। आज मैं बेटा! तुम्हें यौगिक क्षेत्रों में नहीं ले जा रहा हूँ। केवल विचार क्या कि मानव को अपने जीवन को किस मार्ग पर ले जाना है? यह मन्त्र कहता है। मैंने बहुत पुरातन काल में कहा है, आज भी हमारा वेदमन्त्र कह रहा है कि मानव को अपने जीवन को रूढ़ि नहीं बना देना चाहिए। व्यापक हृदय से इस संसार के सम्बन्ध में प्रत्येक मानव को, प्राणी को विचार विनिमय करना चाहिए।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जा रहा हूँ बेटा! मैं अपनी विवेचनाएं प्रकट कर रहा था। महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज की विवेचना चल रही थी। मेरे प्यारे! देखो, महा अब्रहे मुझे स्मरण है महात्मा दधीचि की भी चर्चाएं। परन्तु वह अश्विनी कुमार, महात्मा भुंजु के, दोनों पुत्र कहलाए जाते थे, अश्वनि और कुमार यह आयुर्वेद के महापंडिता थे। पाण्डितव की दृष्टि से, जब उनको अंकित किया जाता है, तो मुनिवरों! उन्होंने एक सौ एक वर्ष तक महर्षि श्वेतकेतु के यहाँ आयुर्वेद का अध्ययन किया और उनके अध्ययन की जो शैली थी क्योंकि प्रत्येक वनस्पति को जानना, उसके गुणों पर विचार विनिमय करना। प्रत्येक जो खनिज है, उसके गुणों को जानना और उसका पिपाद बना करके उसे क्रिया में लाना यह सब आयुर्वेद कहलाता है।

मेरे प्यारे! देखो, नाना प्रकार की औषधियों से जिनमें चन्द्रमा रस देता है, सूर्य जिसे तपायमान करता है वह सब आयुर्वेद की आभा में रमण करता है। हमारे यहाँ नाना प्रकार की चिकित्साएं परम्परागतों से मानी हैं। हमारे राजा रावण के यहाँ भी तीन प्रकार की चिकित्सा कहलाती थी। एक चिकित्सा हमारे यहाँ नस नाड़ियों की गति से मानी गई है और एक प्राण की आभा से, नाना औषधियों से उसको आयु देना, प्राण को सुचारू रूप से संचारित करना ये सब वनस्पतियों से होता रहा है। एक चिकित्सा हमारे यहाँ प्राण चिकित्सा कहलाती है। बेटा! प्राण चिकित्सा उसे कहते हैं जिसका प्राणों से

निदान होता है। प्राणों का समन्वय करके और मुनिवरों! उससे प्राण और मन दोनों की आभा को, दोनों मनकों को एक सूत्र में लाया जाता है। सूत्र में लाने से मुनिवरों! वह प्राण चिकित्सा कहलाती है।
हमारे यहाँ कई प्रकार के प्राणायाम होते हैं। जैसे हमारे यहाँ भस्त्र वृत्तिका एक प्राणायाम होता है। एक प्राणायाम हमारे यहाँ रेंगनी, रेखांकनी सृणी प्राप्त व्यापति वृत्तिका प्राणायाम होता है। एक शीतली प्राणायाम होता है। एक अग्नि प्रदीप्त प्राणायाम होता है, एक मानो शीतला वृत्तिका प्राणायाम होता है। उनमें बेटा! नाना प्रकार के भेदन माने गएं हैं। आज मैं उन भेदनों में जाना नहीं चाहता हूँ। तुम्हें तो पुत्र! प्रतीत होगा, जब महाराजा अश्वपति के यहाँ मानो इस प्राण चिकित्सा के ऊपर बेटा! मैं विद्यालय में क्रिया कराता रहा हूँ। वह समय कितना भव्य था, आज मैं, उस समय की प्रतिज्ञा करता रहता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता रहता है जैसे आज मैं अश्वपति के विद्यालय में प्राण चिकित्सा का आचार्यवत हो करके, प्रजा को शिक्षित बना रहा हूँ। आज मैं बेटा! इस सम्बन्ध में भी तुम्हें विवेचना यह तो नाना प्रकार की चिकित्सा कहलाती है। परन्तु प्राणायाम के द्वारा जो चिकित्सा होती है उससे मानव का दर्शन मानव के समीप आना प्रारम्भ हो जाता है। हम मन और प्राण को अच्छी प्रकार उसको निदान में लाते हैं। उसे अपनी आभा में परणित करने लगते हैं।
आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें प्राणों के सम्बन्ध में एक वार्त्ता भी प्रकट करूंगा। मेरे प्यारे! तुम्हें आज मैं तुम्हें राजा रावण के उस क्षेत्र में ले जा रहा हूँ जब राम और रावण दोनों का संग्राम हुआ था। दोनों ने एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने के लिए नाना वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर वह संग्राम हुआ। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है जब राम और रावण का संग्राम हुआ तो रावण मत्यु को प्राप्त नहीं हो रहा था। जब रावण मृत्यु को प्राप्त नहीं हो रहा था तो मेरे प्यारे! अब मुनिवरों! देखो, रात्रि का काल था। मानो प्रातः मध्य रात्रि समाप्त हो चुकी थी। उस काल में भगवान राम ने एक सभा की और सभा में महाराजा जामवंत और महाराजा हनुमान, लक्ष्मण राम अमृतम और भी जो नाना विशेषज्ञ थे, वशिष्ठ थे उन सबकी एक सभा हुई और उस सभा में यह

निर्णाय होने लगा कि रावण को हम कैसे विजय कर सकते हैं? क्योंकि रावण विजय नहीं हो रहा है। मेरे प्यारे! उस समय महाराजा विभीषण ने एक वाक्य कहा। उन्होंने कहा कि ब्रह्मं ब्रीहि व्रतां मानो यह जो रावण है उसके द्वारा कुछ यन्त्र हैं और वह यन्त्र इस प्रकार के हैं जिनका सम्बन्ध महारानी मन्दोदरी से है। यदि वह यन्त्र किसी प्रकार उनसे प्राप्त किए जाएं तो रावण की मृत्यु हो सकती है। मेरे प्यारे! वह कैसे हो सकता है? अब मुनिवरों! देखो, उन यन्त्रों का किसी को प्रतीत नहीं था जो यन्त्र इतने गोपनीय थे मेरे प्यारे! उन यन्त्रों में यह विशेषता थी कि जिससे वह यन्त्र सम्बन्धित होता है मेरे प्यारे! जो उसकी नाभि में जो भी होता है उसका एक नाभि केन्द्र होता है और नाभि केन्द्र में जो उदर में रहने वाला प्राण है उस प्राण से यन्त्र का समन्वय होता है। उन परमाणुओं को जब हम एकत्रित कर लेते हैं तो मुनिवरों! कोई वैज्ञानिक होता है उस वैज्ञानिक से उसका समन्वय हो करके उसे शक्ति प्राप्त होती है। उन्होंने कहा यह यन्त्र कैसे हम प्राप्त कर सकते हैं? कहा वह यन्त्र? उन्होंने कहा इसकी युक्ति महाराज शिव वर्णान कर सकते हैं।

मेरे पुत्रों! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, महाराजा शिव को निमन्त्रण देने के लिए यत्न किया गया। मुझे स्मरण है महाराजा हनुमान और महाराजा जामवंत दोनों ने अपने अपने स्वरूप को परिवर्तित किया और परिवर्तित करके वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए वह कैलाश पर जा पहुंचे। माता पार्वती और शिव दोनों विद्यमान हैं। मेरे प्यारे! महाराजा शिव ने उनका स्वागत किया, कहा आओ, मेरे प्यारे! वह विराजमान हो गए। विचार विनिमय होने लगा। मुनिवरों! देखो, उन्होंने एक वाक्य कहा कि महाराज! रावण और राम का संग्राम चल रहा है। रावण का कुटुम्ब समाप्त होने जा रहा है। हे प्रभु! आप तो उनके राष्ट्र के आचार्य रहे हैं। आपको उस कुटुम्ब से परम्परा से स्नेह है। आप उनकी सहायतार्थ के लिए क्यों नहीं अपनी शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं? महाराजा शिव ने कहा हे विप्रो! अग्राहं मैं इसलिए उनकी सहायता नहीं कर रहा हूँ क्योंकि जो राजा अपने उद्देश्य से दूरी चला जाता है, जो राजा अपने उद्देश्य को मानो द्वितीय स्वरूप को धारण कर लेता है, मानो उस सभा में मुनिवरों! बुद्धिमानों को और जो

विचारक पुरुष होते हैं उनकी सहायतार्थ को नहीं जाना चाहिए। इसलिए मैं गमन नहीं कर रहा हूँ। उन्होंने कहा, क्या आप राजा रावण का समाप्त होना स्वीकार करते हैं? ऐसा आपके मनों में है? मुनिवरों! महाराजा शिव कहते हैं हां, ऐसा ही है, क्योंकि मुझे स्मरण है मैं उस कुटुम्ब के बहुत निकट रहा हूँ। परन्तु राजा रावण ने इस समाज के चरित्र की रक्षा करने में उन्होंने समाज का दुरूपयोग किया है। इसलिए मैं उस वाक्य को स्वीकार नहीं कर रहा हूँ। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि महाराज! हमने तो कुछ ऐसा श्रवण किया है कि रावण का अन्त नहीं हो रहा है। अहा! यह क्या है? मेरे प्यारे! अब महाराजा शिव के हृदय में कुछ कल्पना जागी। उन्होंने कहा ऐसा प्रतीत होता है तुम विप्रो के रूप में कोई और ही हो। तुम कौन हो, मेरे प्यारे! उन्होंने अपना वर्णन दिया, उन्होंने अपना भेदन स्पष्ट किया। उन्होंने कहा एक हनुमान है, एक जामवंत है। उन्होंने कहा अच्छा। तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? देखो, उन्होंने कहा कि महाराज! हम इसलिए आए हैं कि भगवान राम ने आपको निमन्त्रित किया है कि उनकी सभा में कुछ अपना विचार प्रकट कर जाएं कि क्या करना चाहिए? क्योंकि महाराजा! शिव का स्नेह अयोध्या के राजाओं पर भी विशेष रहा है। रघुवंश से भी उनकी विशेष अनुपमता रही है। मेरे पुत्रो! उन्होंने कहा अच्छा प्रियतम! मैं यहा से गमन करूंगा। मेरे प्यारे! मैं तुम्हारा पश्चात् गमन कर रहा हूँ। मेरे प्यारे! जैसे उन्होंने गमन किया उसके पश्चात् महाराजा शिव ने भी गमन किया।

मुनिवरों! भ्रमण करते हुए अपने यानों में विद्यमान हो करके महाराजा शिव, भगवान राम के समीप आ गए। उनका विचार विनिमय चल रहा था। एक दिवस समाप्त हो गया था, द्वितीय दिवस आ गया और महाराजा शिव जो उनकी गोपनीय सभा होने वाली थी। उसमें वह सम्मिलित हो गए और विचार विनिमय होने लगा। विचार विनिमय प्रगट करते हुए भगवान राम ने उनके चरणों की वन्दना की, और यह कहा कि महाराज! भगवन्! मैं रावण को कैसे ह्रास कर सकता हूँ? मुझे इसका कोई यत्न प्रहा अपनी वाणी से उच्चारण कीजिए मैं क्या करूं? मेरे प्यारे! जब उन्होंने यह वाक्य स्वीकार किया कि हे राम! तुमसे यह रावण विजय नहीं हो सकेगा। उन्होंने कहा क्यों? क्योंकि उनकी

नाभि में अमृत कहलाया जाता है। इसका जो नाभि केन्द्र है, उसमें अमृत क्या, सबसे प्रथम तो इन्होंने बाल्यकाल में योगाभ्यास किया। उसके पश्चात् जब मेरे सम्पर्क में आए तो मैंने इनको एक यन्त्र दिया था और वह यन्त्र महारानी मन्दोदरी, दोनों को समर्पित किया था और उस यन्त्र में यह विशेषता है, इनका जो राष्ट्र गृह है और राष्ट्र गृह में जो एक स्तम्भ है मध्य का, उस मध्य में यह यन्त्र लगा हुआ है और यन्त्र में यह शक्ति है कि वह रावण को सहायता देता रहता है। उसमें इतना परमाणु मानों वह शक्ति से चलता है कि इसकी नाभि की जीवनी जो शक्ति है उससे समन्वय है इसलिए कोई यन्त्र यहाँ कार्य नहीं कर पाता। मेरे प्यारे! जब उन्होंने यह वाक्य प्रकट किया, कहा महाराज! यह कैसे हो सकता है? उन्होंने कहा जामवंत और हनुमान दोनों ऐसे हैं जो महारानी मन्दोदरी की वन्दना करके, क्योंकि मन्दोदरी जहाँ विदुषी है, पवित्र है, वहाँ दानी भी बहुत है। यदि उसने अपने सुहाग का दान तुम्हें प्रदान कर दिया तो तुम राजा रावण को विजय कर सकते हो और यदि सुहाग प्रदान नहीं किया तो तुम रावण को किसी भी काल में विजय नहीं कर सकते। मेरे प्यारे! यह वाक्य महाराजा शिव ने प्रकट किया।

उन्होंने कहा हे राम! तुम्हें प्रतीत है मैंने और मार्कण्डये ऋषि महाराज ने हमने दोनों उस यन्त्र का निर्माण किया था। तुम्हें प्रतीत होगा, मानो श्रवण भी किया होगा जिस समय देखो, अन्तरिक्ष में जा करके यन्त्र को दृष्टिपात किया था मानो देखो, एक समय महाराजा शिव और पार्वती दोनों विद्यमान थे। तो पार्वती अन्तरिक्ष में कुछ दृष्टिपात करने लगी। दिव्य दृष्टि से, यन्त्र दृष्टि से दृष्टिपात किया उन्हें एक यन्त्र मानो देखो, सूर्य की आभा में अकृत होता हुआ दृष्टिपात हो रहा था। माता पार्वती ने महाराजा शिव से कहा कि महाराज! यह क्या है अन्तरिक्ष में? मैं क्या दृष्टिपात कर रही हूँ? उन्होंने कहा चलो देवी! इसको दृष्टिपात करेंगे। तो भगवान शिव और पार्वती अपने यान में विद्यमान हो करके मुनिवरों! देखो, उन्होंने अन्तरिक्ष यात्रा के लिए गमन किया। भ्रमण करते हुए जहाँ पृथ्वी और चन्द्रमा दोनों की आकर्षण शक्ति का समन्वय होता है वहाँ दोनों की आकर्षण शक्ति से बेटा! एक यन्त्र विद्यमान था। और यन्त्र में कौन? महर्षि मार्कण्डेय

ऋषि महाराज और महर्षि शौनक ये दोनों विद्यमान हो करके अनुसन्धान कर रहे थे। मेरे प्यारे! देखो, वहाँ इस यन्त्र का निर्माण हुआ जो उन्होंने हमें प्रदान किया। हमने यह रावण को प्रदान किया था। मेरे प्यारे! यानां ब्रह्मः कृतं देवः अब महाराजा शिव कहते हैं मैंने यन्त्र इसे प्रदान किया है। यह तुमसे लिया जाए तो इसे अपने में अपना लो। अन्यथा इसकी मृत्यु नहीं होगी।

मेरे प्यारे! अब महाराजा राम ने कहा अब इस पर विचारा जाय। महाराजा शिव ने इतना उच्चारण करके वह तो यान में विद्यमान हो करके कैलाश के लिए अपने आसन के लिए उन्होंने प्रस्थान किया। राम रात्रि समय यह चिन्तन करते रहे मानो कैसे अपनाया जाए? मन्दोदरी से कैसे भिक्षा प्राप्त की जा सकती है? मुनिवरों! राष्ट्रीय विचारों से सब प्रकार की आभा प्रकट की जाती हैं महाराज जामवंत और हनुमान दोनों ने यह स्वीकार किया कि महाराज! आप चिंतित न होइए। हम लंका में प्रवेश करेंगे और इसको अपनी आभा में प्रगट करके कोई न कोई यत्न करेंगे।

मेरे प्यारे! दोनों ने ब्राह्मण के स्वरूप को धारण करके, क्षत्रियपन को त्याग करके क्योंकि दोनों बुद्धिमान थे, क्योंकि जामवन्त भी वेदों के ऊपर अनुसन्धान करने वाले थे। हनुमान ने सूर्य की विद्या पर अनुसन्धान किया था। आज मुझे इतना समय नहीं है, कल मुझे समय मिलेगा, मैं हनुमान जी के जीवन के ऊपर अपनी आभा प्रकट करूंगा। जिन्होंने बेटा! मानो देखो, बारह बारह वर्षों का अनुष्ठान करके सूर्यमण्डल, सूर्य की नाना प्रकार की किरणों के ऊपर नाना प्रकार का अनुसन्धान किया। उन आभाओं पर कैसे यह सूर्य किस प्रकार अपनी किरणों चन्द्रमा को तपाता है किस प्रकार यह सूर्य पृथ्वियों को तपाता रहता है? मेरे प्यारे! इस विज्ञान को हनुमान जी भली भांति जानते थे। जामवंत का चन्द्र विद्या पर अधिपथ्य रहा है। आज मैं वैज्ञानिकां के युग में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। मुझे जब बेटा! वह काल मुझे स्मरण आता है, आज मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे मैं लंका में ही उन विचारकों में विद्यमान हूँ।

अब हनुमान और जामवंत दोनों ने गमन किया और भ्रमण करते हुए लंका में पहुंचे। लंका में जाने के पश्चात् वह महारानी मन्दोदरी के यहाँ पहुंचे। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने

भिक्षामयी, अपनी ध्वनि उच्चारण की। एकोकी स्वर में उनका स्वर माधुर्य था। वह राजलक्ष्मी, राजकृतिभा नाना स्वर्ण की आभाओं में वह उन्हें दक्षिणा देने के लिए तत्पर हो गई उन्होंने कहा नहीं हम ब्राह्मण हैं इसको स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने कहा क्या चाहते हो? उसे यह लगा हुआ था कि हो सकता है राजं ब्रह्मेः नष्ट करने के लिए बहुत से यत्न सोचता रहता है, शत्रु। उन्होंने यह विचारा कि ऐसा न हो यह राम की सेना के कोई हों। उन्होंने कहा मैं इसे प्रदान कर रही हूँ, स्वीकार करो। उन्होंने कहा यह हमें स्वीकार नहीं है। उन्होंने कहा क्या चाहते हो? ब्राह्मण ब्रहे क्या तुम वास्तव में ब्राह्मण हो? उन्होंने कहा हां। तो क्या चाहते हो? उन्होंने कहा हमारी इच्छा यह है आपम् ब्रह्मणाः वचनतम् ब्रही आप अपनी वाणी से हमें दूरिता न करें तो हम अपनी वाणी से कुछ वाक्य उच्चारण करें। महारानी मन्दोदरी ने कहा, यह राज लक्ष्मियाँ अपने वचनों से दूरी नहीं हुआ करतीं। यह इनका आभूषण है। यह इनका धर्म है। यह इनकी मानवता है। यह राष्ट्र की मर्यादा होती है। यदि राष्ट्र की मर्यादा वाक्य उच्चारण करके उसे समाप्त कर दिया जाए तो वहाँ राष्ट्र की मर्यादा समाप्त हो जाती है। इसलिए मैं अपने वाक्य से दूरी नहीं हो सकूँगी। ब्राह्मण! तुम उच्चारण करो।

मेरे प्यारे! उन दोनों ने एक स्वर में कहा कि हम आपसे अपने सुहाग का दान चाहते है। सुहाग की दक्षिणा चाहते हैं। मेरे प्यारे! महारानी मन्दोदरी मौन हो गई और मौन हो करके यह कहा, यह गोपनीय विषय तुम्हें किसने उच्चारण किया है? तुम ब्राह्मण नहीं हो, जो गोपनीय विषय तुम्हें किसने उच्चारण किया है तुम ब्राह्मण नहीं हो मुझे ऐसा प्रतीत होता है तुम्हारे ही शब्दों से कि तुम ब्राह्मण नहीं हो मानो ये गोपनीय विषय मुझे और मेरे पति देव को प्रतीत है और एक यह गोपनीय विषय महाराजा शिव को प्रतीत है, चतुर्थ को प्रतीत नहीं, तुम्हें किसने यह मार्ग दिया है? हो सकता है मेरा पति तो इस वाक्य को वर्णन नहीं करेगा। अहा! तुम उच्चारण करो। दोनों ने एक स्वर में कहा शिवं ब्रह्मः अस्वतां महाराजा शिव ने यह वाक्य प्रकट किया है। अब महारानी मन्दोदरी मौन रह करके बोली। अहा! यथार्थ है। मैं अपने सुहाग की दक्षिणा तुम्हें दे चुकी हूँ। मानो मैंने तुम्हें यह दान प्रदान कर दिया है क्योंकि महाराजा! शिव की ही जब यह

इच्छा नहीं रही कि मेरा पति रावण संसार में जीवित रहे तो मेरे प्रभु जो चेतन देव हैं उनकी कोई और इच्छा है, उनका समय आ गया है क्योंकि जिस वस्तु का निर्माण होता है उस वस्तु को मानो जिन परमाणुओं का संग्रह हुआ है, निर्माण हुआ है उसका विकृत होना भी अनिवार्य है। मेरे प्यारे! हनुमानजी ने बीच के खम्ब के मुनिवरों! देखो, हनुमान जी ने मुनिवरों! देखो, दो भाग किए उसके मध्य में वह यन्त्र विद्यमान था।
मुनिवरों! मैं ऐसी वार्त्ता तुम्हें प्रकट कर रहा हूँ विज्ञान की। जब तुम विज्ञान के ऊपर विचार करोगे तो, सहस्रों वर्षों तक इस विज्ञान को विचारते रहोगे तो और विज्ञान इसकी ईकाई में भ्रमण करता रहेगा। मेरे प्यारे! ऐसा भी परमाणुवाद है जो एक मानव के जीवन से सम्बन्धित है। मुनिवरों! वह परमाणुवाद उसे प्राण शक्ति देता है। प्राण शक्ति दे करके जीवन को ऊचा बना रहा है। अब मुनिवरों! देखो, उन्होंने यन्त्र को प्रदान कर दिया और यन्त्र ले करके दोनों राम की सेना में आ गए। अपने कक्ष में आ गए। राम को प्रदान कर दिया और कहा लीजीए भगवन! मेरे प्यारे! राम प्रश्न युक्त हो गए और प्रश्न युक्त हो करके और उस यन्त्र को छिन्न भिन्न किया उसके पश्चात् मुनिवरों! राजा रावण की मृत्यु हुई।
तो मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार क्या है? मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि रावण की नाभि में अमृत का एक भण्डार है। मेरे प्यारे! देखो, एक उनके यहाँ भण्डार था तपस्या का जो बाल्यकाल में महाराजा ब्रह्मा के द्वारा जब उन्होंने शिक्षा प्रदान की थी। तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा कि हमारे यहाँ एक उपाधि है उस उपाधियों में जगत, यह राष्ट्र का निर्माण, यह राष्ट्र अपनी क्रिया करता रहता है। मुनिवरों! देखो, जैसा मैंने इससे पूर्व काल में तुम्हें यह निर्णय कराया था। जैसे ब्रह्मा एक उपाधि। ब्रह्मा परमपिता परमात्मा को भी कहा जाता है। ब्रह्म नाम आत्मा को भी कहा जाता है परन्तु ब्रह्मा लौकिकता में, रूढ़ि में बेटा! वेद के प्रकाण्ड, वेद के गर्भ को जानने वाले ब्राह्मण को भी ब्रह्मा की उपाधि प्रदान की जाती है। परन्तु आज मैं बेटा! तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। क्योंकि ब्रह्मा से ले करके बेटा! नाना ऋषि हुए जिन्होंने बहुत सी उपाधियाँ प्राप्त की हैं। ब्रह्मा इत्यादि की उपाधि परम्परा

से चली आ रही हैं। सबसे प्रथम जो ब्रह्मा हुए उनके पुत्र क नाम था अथर्वा और महाराजा अथर्वा के पुत्र का नाम हरितत केतु नामक पुत्र था और उससे मुनिवरों! नाना प्रकार के गोत्रों का निकास हुआ जैसे दद्दड़ गोत्रीय है जैसे कृति आस्तां है, जैसे अंगरिस गोत्र है और वायु गोत्र है। जैसे स्वाति गोत्र है यह नाना गोत्रों का निकास उसके पश्चात् चला आ रहा है।

यह परम्परा में, विशेषता में तुम्हें नहीं ले जा रहा हूँ। विचार विनिमय क्या मुनिवरों! देखो, उस नाभि में क्योंकि चन्द्रमा से भी अमृत को ले करके, नाभि केन्द्र में एकत्रित लिया जाता है। वह कैसे होता है? मैंने तुम्हें कई काल में कहा है कि पूर्णिमा के दिवस मानव समुद्र के तट पर विद्यमान होता है और समुद्र के तट पर विद्यमान हो करके क्योंकि वह पूर्णिमा और चतुर्दशी के दिवस चन्द्रमा सोम रस को लेता है और वह समुद्रों से जलों का उत्थान और अपनी कांति में सोम को ले लेता है। उस सोम में कृतिभा एक सतो पिपलादी हम सतो वृत्तिका खेचरी प्राणायाम करके मुनिवरों! हम उन परमाणुओं को रसना के साथ में रसना के निचले भाग में चन्द्र वाहक एक नाड़ी होती है। उस नाड़ी का सम्बन्ध पुरातन नाम की नाड़ी से होता है, इंगला, पिंगला, सुषुम्णा नाम की नाड़ियों से होता है, एक नाड़ी पिंगला से चलती है जो कृति घ्राण नाड़ी कहलाती है उसका अग्रात सम्बन्ध मानव की नाभि से होता है। तो मुनिवरों! देखो, आज मैं तुम्हें कुछ यौगिक आचार्यों की आभा प्रकट कर रहा हूँ। जो उन्होंने मुझे निर्णय कराया है। मुनिवरों! वह उसे अमृत को नाभि में एकत्रित करते हैं।

हमारे यहाँ नाभि के दो केन्द्र माने जाते हैं। हमारे आचार्यों से जब यह कहा गया कि नाभि केन्द्र को इतनी विशेषता क्यों दी गयी? तो हमारे ऋषियों ने दो नाभियाँ मानी हैं इस मानव शरीर की। एक नाभि ब्रह्मरन्ध्र माना है और एक नाभि उदर के मध्य माना है। परन्तु योगियों की जो नाभि है जहाँ अमृत एकत्रित किया जाता है वह ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है। जिससे वह सोम रस को पान करता है साधारण मानव जो प्राणायाम करने वाले नाभि केन्द्र में अमृत को एकत्रित शारीरिक आभा में एकत्रित करने वाले होते हैं वहाँ प्राण को एकत्रित किया जाता है उस प्राण में शीतलता शीतो प्राणायाम करके

इस नाभि केन्द्र को ऊर्ध्वा में लाने के लिए वही अमृत का गमन मुनिवरों! ब्रह्मरन्ध में होता है। ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्वा भाग में एक सतो पिप्लाद अवृत नाम का स्थान है। जहाँ मुनिवरों! सोम रस भरण हो जाता है। वहाँ अमृत एकत्रित हो जाता हैं योगीजन जब इस त्रिवेणी के स्थान में गमन करके जब ऋतिका मानो जब अपनी क्रीड़ा करने लगते हैं क्योंकि प्राण और मन की धुक धुकी के द्वारा वह ब्रह्मरन्ध्र में जा करके जब पंखड़ियाँ गति करती हैं तो वह जो अमृत है वह झरना प्रारम्भ हो जाता है। झरना जब प्रारम्भ हो जाता है तो उसमें से सोम की वृष्टि होती है उसको योगीजन मेरे प्यारे! उस सोमरस को पान करते हैं और यह जो ब्रह्माण्ड है, लोक लोकान्तर हैं, मुनिवरों! ब्रह्मरन्ध्र की गति होते ही पिपाद स्थान में परमाणु जब झरने लगता है तो बेटा! जितना यह ब्रह्माण्ड है, लोक लोकान्तर हैं, यह आकाश गंगाएं हैं, इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को योगी अपने मस्तिष्क में अपने नाभि केन्द्र हृदय में मुनिवरों! सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने में समाहित कर लेता हैं।

आज मैं बेटा! यौगिक विचारों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हमारे यहां परम्परागतों से ही, विचारक रहे हैं, अनुसन्धान करते रहे हैं, अनुसन्धान वेत्ताओं ने इस मानव शरीर के ऊपर अनुसन्धान करने लगे, अनुसन्धान होता रहा तो मुनिवरों! दो प्रकार की नाभि इस मानव शरीर में स्वीकार की है। देखो, पाण्डितव की दृष्टि से जो मानव का नाभि केन्द्र जो उदर के मध्य में रहता है, शरीर के भी मध्य में रहता है, एक हृदय को नाभि माना है जो ब्रह्माण्ड की नाभि बन करके बेटा! इस ब्रह्माण्ड से उसका समन्वय होता है। मेरे प्यारे! जितना नाभि चक्र है। उसका सम्बन्ध तो नाना प्रकार के पदार्थों से जिन्हें हम पान करते हैं उनसे रहता है। वायु का, अग्नि का और पृथ्वी का वहाँ केन्द्र बन जाता है और जब इस केन्द्र को ऊर्ध्वा में बनाया जाता है, ऊर्ध्वा में बनाने वाले जो ऋषि जन होते हैं। वह इसी नाभि के अमृत को जब ब्रह्मरन्ध्र में ले जाते हैं तो बेटा! उसकी वह योगी की नाभि कहलाती है।

इन दो प्रकार की नाभियों का वर्णन मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें वर्णन भी किया है। आज इतना समय मुझे नहीं है। जो अपने विचारों को मैं अग्रणीय बनाता रहूँ। आज

के विचारों का अभिप्रायः क्या मुनिवरों! जो समाज में, राष्ट्र में, चरित्र की स्थापना नहीं ला सकता। उनके महापुरुष भी उनसे दूरी हो जाते हैं और मुनिवरों! देखो, उनका शरीरान्त बहुत ही शीघ्र समय में अपने को प्राप्त हो जाते हैं।
परिणाम क्या? कि राष्ट्र का जो निर्माण है राष्ट्र की जो आभा है वह चरित्र के लिए निर्माण होता है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा, राष्ट्र का निर्वाचन करना है, राष्ट्र को चुनौती प्रदान करनी है तो मुनिवरों! देखो, वह सदाचार, शिष्टाचार, मानवता की रक्षा करने के लिए है और जब मुनिवरों! देखो, राष्ट्र का निर्वाचन हुआ और राष्ट्र समाज की, चरित्र की रक्षा नहीं कर सकता। ऐसे राजा को हे ब्राह्मणो! तुम चुनौती प्रदान न करो।
मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? आज कह रहा था मैं अपने प्रारम्भ के विषय से द्वितीय विषय प्रकरण इस प्रकार का आया, आज मैं बेटा! तुम्हें महात्मा भुंजु अश्विनी कुमारों की चर्चा जिन्होंने ब्रह्म विद्या महर्षि दधीचि से प्राप्त की थी। वेदमन्त्र में दधीचि के भी कई प्रकार के स्वरूप आए हैं। दधीचि नाम के ऋषि भी हुए हैं, दधीचि वज्र को भी कहते हैं, दधीचि नाम सूर्य का भी है, दधीचि नाम आकाश गंगाओं में एक दधीचि नाम का मण्डल होता है उसे भी कहते हैं। यह चर्चाएं बेटा! मैं कल करूंगा। आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है आज के विचारों का अभिप्राय क्या है? आज मैं तुम्हें यह प्रकट करा रहा था कि नाभि केन्द्रों में नाभि कैसे ऋषियों ने स्वीकार की है और मुनिवरों! महाराजा शिव कितने वैज्ञानिक थे? अपनी आभा में रमण करते रहे हैं। आज मुझे वह काल स्मरण आ रहा था।
वेद का मन्त्र भी इस प्रकार का था मानो देखो, जो उन विषयों पर, मैंने कुछ विचार तुम्हें प्रकट किए। विचार क्या, परिचय दिया है। विचार तो बहुत दूरी में आभा में रहते हैं। आज का विचार हमारा समाप्त होने जा रहा है। कल मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं बेटा! हम कल प्रकट करेंगे। आज का विचार समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन

होगा।

१५ 15 08 1981 पुष्प 38 रक्षा बन्धन पुष्प उपलब्ध नही है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव जो सर्वत्र व्यापक हैं, उस मेरे देव का जो ज्ञान और विज्ञान है, वह प्रत्येक वेदमन्त्र में निहित रहता है, क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस प्रभु की गाथा गा रहा है और गाता ही रहेगा। मानव जब वेद मन्त्रां के ऊपर विचार विनिमय करना प्रारम्भ करता है तो इन वेद मन्त्रों से ज्ञान और विज्ञान की तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं। मानव उन ज्ञान और विज्ञान की तरंगों में सदैव रमण करता रहता है।

बहुत पुरातन काल की वार्त्ताएं हैं, ऋषि मुनियों का समूह विद्यमान है। उन ऋषि मुनियों के समूह को जब हम दृष्टिपात करते हैं अथवा उनकी वार्त्ताएं स्मरण आने लगती हैं तो ऐसा प्रतीत होने लगता है। जैसे इस विश्व का सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में विद्यमान है। क्योंकि वह सदैव एक एक वाक्य के ऊपर विचार विनिमय करते रहते हैं।

मेरे प्यारे! महानन्द जी ने बहुत पुरातन काल में यागों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की वार्त्ताएं प्रकट कीं। परन्तु आज मुझे पूर्व से कुछ वाक्य स्मरण आने लगते हैं। एक समय जब त्रेता का काल था, त्रेता के काल में एक समय महर्षि कवन्धि और जवाकेतु ऋषि, यह दोनों जिज्ञासु विज्ञान में विचार विनिमय कर रहे थे और वह प्रातःकाल में प्रति याग भी करते थे और याग में जो तरंगें उत्पन्न होती थीं उन तरंगां के ऊपर विचार विनिमय होता रहा। परन्तु एक समय अनुसन्धान करते हुए विचारने लगे क्या यह सूर्य ही अग्नि का या विद्युत का एक प्रकाश है? आदित्य बन करके आ रहा है। तो मुनिवरों! इसके ऊपर विचार विनिमय हो रहा था। परन्तु बहुत समय समाप्त होने के पश्चात् उनके हृदय में कोइ्र समाधान नहीं हुआ। जब न हुआ तो उन्होंने वहाँ से एक दिवस गमन

किया और भ्रमण करते हुए वह पवन पुत्र हुनमान के द्वार पर पहुंचे क्योंकि हनुमान जी के जीवन में एक न एक प्रभु की अनुभूति होती रहती थी। वह सूर्य सिद्धान्त, सूर्य विद्या के ऊपर अपनी लेखनियां बद्ध करते रहते थे। परन्तु उनकी लेखनियां अब अप्राप्य हैं। जब वह ब्रह्मचारी कवन्धि और जवाकेतु उनके द्वार पर पहुंचे, तो उन्होंने उनका स्वागत किया और स्वागत करने के पश्चात् कहा, भगवन्! आप क्या पान करना चाहते हैं। ब्रह्मचारी कवन्धि ने कहा, हे प्रभु! हम वह वस्तु पान करना चाहते हैं जो वस्तु हमें जीवन प्रदान करती है, अर्थात् हमें सूर्य विज्ञान को लेना है। हम उसका जानना चाहते हैं और उसको हम जानना चाहते हैं कि आपने उससे क्या क्या जाना है? तो मुनिवरों! हनुमान जी ने जब यह वाक्य ब्रह्मचारी कवन्धि से श्रवण किया तो उन्होंने कहा कि मैंने अब तक सूर्य विज्ञान को केवल इतना ही जाना है कि मैंने एक यन्त्र निर्धारित किया है। इस यन्त्र में विद्यमान हो करके मैं सूर्य की किरणों के साथ दूरी तक गमन करता रहता हूँ। तो मुनिवरों! ब्रह्मचारी कवन्धि ने कहा यह आपने कौन सा याग करने के पश्चात् उस विज्ञान को जाना? उन्होंने कहा, मैंने इस विज्ञान को अपनी आभा और एक याग होता है जिसको अग्निष्टोम याग कहते हैं। उसको यज्ञमान करता है और यज्ञमान के हृदय में जो अग्नि प्रदीप्त होती है, उस अग्नि की तरंगों को मैंने जाना है। वह सूर्यमयी जो ज्योति है, इस पर राजा जनक की सभा में प्रश्न किया था, यदि मृत्यु से पार होना है, तो हमें याग करना है। तो मुनिवरों! उन्होंने वही याग स्वाति कृति जगतमय उसमें सब सृष्टि की गाथाएं आती रहती हैं। क्योंकि प्रत्येक मानव सदैव यह चाहता है कि मेरा जीवन आनन्दमयी हो। परन्तु आनन्दमयी कैसे होता है? जब तक मानव समष्टि व्यष्टि को नहीं जानता, समष्टि व्यष्टि में रमण नहीं करता। क्योंकि प्रभु का ज्ञान और विज्ञान जितना भी है, वह व्यष्टि और समष्टि में रमण करता है। व्यष्टि और समष्टि ही जीवन है। अर्थात् व्यष्टि से समष्टि में जाना ही मृत्यु से पार होना है, और वही मानव को ऊर्ध्वा में ले जाता है।

महाराजा हनुमान जी ने सदैव इस विज्ञान के ऊपर अनुसन्धान किया। सूर्य की कौन कौन किरणों, कहाँ कहाँ क्या कार्य करती हैं? मुनिवरों! जैसे अग्नि प्रकाश देती है रात्रि

के काल में जैसे विद्युत का प्रकाश गृह को प्रकाशित कर देता है, इसी प्रकार मेरे पुत्रो! दिवस होने पर सूर्य आता है और वह रात्रि को अपने में निगल जाता है और प्रकाश दे देता है। उस प्रकाश को ले करके प्रत्येक मानव के नेत्र ज्योतिर्मय बन जाते हैं और उनसे नाना प्रकार की वनस्पतियां पनपती रहती हैं और उन वनस्पतियों के स्वरूप में एक ज्योतिमर्य प्रकाश जो मानव के जीवन का साथी बन करके आता है, जीवन में नृत्य होना प्रारम्भ हो जाता है। वह नृत्य में ही सदैव रमण करता रहता है। वैज्ञानिक इस विज्ञान को जानने के लिए तत्पर हो जाते हैं अथवा जागरूक हो जतो हैं। तो मुनिवरों! वहीं प्रकाश मानव तो क्या, राष्ट्र सम्पदा विज्ञानमयी बन करके नाना यन्त्रों की उड़ान उड़ने लगता है। वह परमाणुओं को जानता हुआ, विज्ञान में रमता हुआ मुनिवरों! सूर्य की किरणों के साथ उसका वाहन गति करने लगता है। और एक वैज्ञानिक है अपनी विज्ञानशाला में उन्हीं किरणां को, उसी प्रकाश को ले करके, उन तरंगों को ले करके, देखो, वही तरंगें हैं जिनसे नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करता है। एक एक यन्त्र इस प्रकार का महाराजा हनुमान के द्वारा था। उनकी विज्ञानशाला में था, जिस विज्ञान के ऊपर वह अनुसन्धान करते रहते थे।

मुनिवरों! तो जो विज्ञान उनका हुआ अथवा एक पादुका के रूप में जैसे एक पादुका को निर्माण करके धारण करता हुआ और वह अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ता है। इसी प्रकार सूर्य की किरणों में उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था, जिस यन्त्र का नाम स्वातिकृति यन्त्रात कहते थे। उस पर विद्यमान हो करके वह अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ते रहते थे।

तो मेरे पुत्रो! आज मैं विज्ञान की वार्त्ता तुम्हें प्रकट कराने नहीं आया हूँ। विचार यह देने आया हूँ कि यज्ञमान अपनी विज्ञानशाला में जब याग करता है, अपने शब्दों को आंकारित करता हुआ अग्नि की विद्युत धारा पर विद्यमान कराता हुआ अन्तरिक्ष में ओत प्रोत करा देता है। वास्तव में यज्ञमान होना चाहिए। क्योंकि उनके हृदय में एक ऐसी विचित्र अग्नि प्रदीप्त होती है, जिसको श्रद्धामयी अग्नि कहते हैं और वह अग्नि ही शब्दों को ले करके अन्तरिक्ष में ओत प्रोत करा देती है।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है, महाराजा स्वभानु ऋशि ने एक समय जरातकारु के यहाँ एक

याग किया था, उसमें होता बने। होता बन करके उद्गाता का स्वरूप उन्होंने धारण किया और उसी के द्वारा नाना यन्त्रों को निर्माणित करते हुए उन्होंने निर्णीत कराया कि शब्दों का ऐसा वाहन बनता है। उन्हीं शब्दों के वाहन में मानव का आकार बन करके अन्तरिक्ष में, ध्रुव मण्डल में ओत प्रोत हो जाता है। क्योंकि सृष्टि के किए थे। एक द्यौ कहलाता है, एक यह लौकिक कहलाता है। एक अग्नि के रूप में मानो प्राण में विद्युत रमण करती रहती है। यह देखो, प्रभु ने अपने तीन स्वरूपों को धारण किया।

द्वितीय यह ब्रह्माण्ड में रमण कर रहा है क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी नाना प्रकार की वार्त्ताएं प्रकट कराते रहते हैं। देखो, वह यागों के सम्बन्ध में परम्परागतों से ही, विचार विनिमय करते रहते हैं। आज मैं भी उन विचारों में संलग्न होना चाहता हूँ। उन विचारों के ऊपर परम्परागतों से बहुत अनुसन्धान भी किया। विचार विनिमय भी किया। मनस्तत्व, प्राणस्तत्व के ऊपर विद्यमान हो करके उनको महान बना करके सर्वत्र प्रकृति में रमण करने के लिए भी अपना प्रयास किया गया। बहुत परम्परागतों से नाना प्रकार के विद्युत वाहन आभाओं में रमण करते रहे हैं। संसार यह चाहता रहता है कि विज्ञान में रमण करता रहे। प्रत्येक मानव शोकागुल भी होता रहता है। अपनी आभाओं में रमण भी करता रहता है। परन्तु हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय केवल यही है कि मानव को अपने जीवन में सूक्ष्मतम रहस्यों को जानना चाहिए जिससे हम अपने जीवन में अपनी मानवीयता को ऊचा बनाते हुए हम इस संसार सागर से जो हमें दुखद प्रतीत होता रहता है, इस सागर से हम सदैव पार होना चाहते हैं। मुनिवरों! आज मैं कोई विशेष विचार देने नहीं आया हूँ। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी कुछ शब्दों की विवेचना करना चाहते हैं।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! आज हमारी आकाश वाणी जिस स्थली पर रमण कर रही है वहाँ साम गायनों के रूप में एक यागाम् दृष्टिपात हो रहा था। वास्तव में संसारा में भिन्न भिन्न प्रकार के याग हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी विज्ञान मयी यागों का र्वान कर रहे थे। परन्तु इस संसार में केवल यह विज्ञानमयी याग भी होता है और केवल यही याग नहीं होता। संसार भिन्न भिन्न

प्रकार के यागों में परिणित हो रहा है।
मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में प्रकट करते हुए कहा था कि एक यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान होता है। उसके आँगन में विराजमान होने वाली देवी जिसे पत्नि के रूप में परिणित किया जाता है। पत्नी अपनी भावनाओं के द्वारा याग करती है और उसे हमारे यहाँ पुत्र याग कहते हैं। पुत्र याग उसे क्यों कहा जाता है? याग का अभिप्राय है कि उसके हृदय में एक पिपासा होती है और वह पिपासा क्या? कि मेरे संग मेरा यह शरीर रूपी जो वृक्ष है इस वृक्ष का भी याग होना चाहिए। तो वह मेरी प्यारी माता एक याग करती है। आपके समक्ष सर्वत्र याग करती है परन्तु वह जब पुत्र को उत्पन्न करती है तो उसके हृदय में एक भावना होती है। कि मैं अपने में प्रकाशमान हो जाऊ। परन्तु यदि उसमें मां की ममता परिणित हो जाती है तो उसके जीवन का जो शरीर रूपी वृक्ष है उसकी अग्नि मन्द हो जाती है। यदि उसके हृदय में याग की भावना हो और याग की भावना क्या कि मेरा पुत्र राष्ट्र की सम्पदा है, मेरा पुत्र यह जन समूह की सम्पदा है, मेरा पुत्र महान् व्यक्तित्व को प्राप्त करने वाला हो और मेरे गर्भ से जन्म लेने वाला मेरी अन्तरात्मा को दुःखी न करने वाला हो ऐसी जब ममतामयी की भावना होती है तो उसके अन्तर्हृदय का जो वृक्ष है, वह याग जो हो रहा है,
वह एक ऐसा याग है कि उसकी आभा इस संसार में विचरण करती रहेगी। परन्तु देखो,! जब हम यागों में परिणित नहीं होना चाहते, क्योंकि यागों से हम दूरी रहना चाहते हैं। हम अपने में बहुत आभाकृतियां में रहना चाहते हैं। उसके पश्चात् हम यह चाहें कि हम संसार में सुखी, आनन्दवत् को प्राप्त हो जाएं, तो यह वाक्य उस ममतामयी मां को प्राप्त नहीं होता। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मुझे स्मरण आता रहता है कि यह संसार परम्परागतों से चला आ रहा है। लाखों वर्ष हो गए हैं इस संसार को दृष्टिपात करते हुए। परन्तु इस आभा में प्रत्येक मानव रमण कर रहा है।
आज मैं प्रसन्न हो रहा था। हे यज्ञमान! तेरी मनोनीत अन्तर्हृदय की जो आत्मा है, उसकी मेरा देव सर्वत्र इच्छाओं की पूर्ति करता रहता है। परन्तु जब मनोनीत पवित्रता होती है तो मानव के हृदय में एक महत्ता की अग्नि प्रदीप्त हो करके जैसा पूज्यपाद

गुरुदेव अभी अभी प्रकट करा रहे थे। आज मैं यागों का दर्शन करता हुआ परन्तु मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होने जा रहा है कि संसार में कुछ समय ऐसा आ रहा है इस संसार का वायुमण्डल इतना दूषित होता जा रहा है, कि यह याग समाप्त तो नहीं होगा परन्तु ऐसा न हो जाए, वह काल न आ जाए, मानव की गणनामात्र एक याग रह जाए। क्योंकि यह समाज, आज का जो राष्ट्रवाद है आज की जो समाज की प्रतिभा हैं, विज्ञान की दशा उसने अपनायी हैं, जिसे लाखों वर्षों पूर्व से इस दशा को मानव ने नहीं अपनाया।

द्वापर का काल चला गया, त्रेता का काल चला गया, सतोयुग का काल चला गया। इन कालों में मेर पूज्यपाद गुरुदेव मुझे किसी काल में प्रकट कराते रहते थे। सत्युग के काल में ऐसे राजाओं के यहाँ वाहन थे। उन वाहनों में विराजमान हो करके वह लोकों में रमण करते रहते थे। और उसके पश्चात् द्वापर काल में ऐसे वाहन रहे हैं, जिन पर विद्यमान होते और जहाँ इच्छा होता वहाँ स्थगित कर देते। आज भी वर्तमान के काल में भी ऐसे वाहन हैं, परन्तु उनकी विज्ञान की जो धारायें हैं वह एक अशुद्ध मार्ग को चल रही हैं। इससे मानव के चरित्र में, मानव के आहार के ऊपर कोई शुद्धिकरण नहीं हो रहा। क्योंकि विज्ञान एक ऐसी वस्तु है जो मानव के आहार और व्यवहार का शुद्धिकरण करती हुई, समाज को राष्ट्र को ऊचा बनाती हुई मानवीयता में महत्ता का दिग्दर्शन होता रहता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आधुनिक काल का जो विज्ञान में दृष्टिपात कर रहा हूँ, वह एक विचित्र ही मुझे दृष्टिपात होता है। परन्तु पुरातन का विज्ञान एक विशेष विज्ञान के रूप में परणित हो रहा है। मुझे स्मरण आता रहता है, उसके बाद गुरुदेव ने भी मुझे वर्णन कराया था। जब भयंकर वनों में भगवान राम चले गए तो एक समय भ्रमण करते हुए वह अनूसया के आश्रम में पहुंचे। माता अनुसूया ने सीता को उपदेश दिया और उपदेश देते हुए पति प्रतिज्ञा कराई, प्रतिज्ञा करा करके ग्रहों में रमण करने वाला उन्होंने एक यन्त्र को प्रकाशित किया और वह यन्त्र प्रकाशित करके राम को प्रदान करके कहा यह तुम्हारी सहायता करेगा। उस यन्त्र में क्या विशेषता थी? वह जलायास्त्राण कृति कहलाता

था। जैसे अग्नि की वृष्टि हो रही है विज्ञान में अग्नि की वृष्टि होती है जलास्त्रों का, वरुणास्त्रों को प्रतिपादन होता हुआ अग्नि को निगल जाता है। जब वह निगल जाता है तो परमाणु में रमण करने वाली अग्नि शान्त हो जाती है। इसी प्रकार नाना ऋषियों के यहाँ इस प्रकार का विज्ञान जीवन देने वाला, जीवन को संचारित करने वाला विज्ञान इस संसार में रहा है। परन्तु यहाँ जिस समय भगवान राम चेल तो काग भुषण्डी जी उनके द्वार पर आए। ऐसा मुझे स्मरण है, आधुनिक जगत कागभुषुण्डी को कुछ और ही उच्चारण कर रहा है। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि त्रेता के काल में एक ऐसा महान् ऋषि था जिस को औषधियां रात्रि के समय में स्वप्न में उनको उसका ज्ञान होता था और वह यह निर्णय कराती रहती कि मैं अमुक रोग की औषध हूँ। उस औषध के पान करने से मानव रुग्ण से दूरी हो जाता।

काग भुषुण्डी जी की आयु भगवान राम जी के द्वार पर आए तो उनकी 684 वर्ष की आयु थी और वह कितने आयुर्वेद के मर्म को जानते थे। परन्तु जब भगवान राम ने एक समय यह प्रश्न किया कि महाराज! क्या यह जो विज्ञान है, आयुर्वेद का जो औषध कि ज्ञान है इसको आपने पूर्णतया जाना है। उन्होंने कहा कि हे राम! मैंने 400 वर्षों तक इसके ऊपर अनुसन्धान किया है परन्तु मैं कुछ के गुणों का वादन कर सकता हूँ। यह इतना विशाल विज्ञान हे, यह अनुभूति को अस्तित्व में लाता है और इसकी जानकारी क्योंकि किसी में अग्नि है तो किसी में जल है किसी में पार्थिव तत्त्वों का प्रतिपादन हो रहा है। इसलिए मैंने इतना जाना है जो बहुत सूक्ष्म है और उसका विज्ञान और भी आगे अनन्त है। परन्तु देखो, एक ऋषि इतना अनुसन्धान करने के पश्चात भी यह वाक्य कह रहा है।

इसी प्रकार मैं एक आयुर्वेद के मन्त्र को मैं जानता हूँ इसमें कागकृष्णा जी ने यह कहा है कि सूर्य की किरणों में कुछ ऐसे तत्त्व रहते हैं जो मानव के शरीर को शाधन करते हैं। कुछ चन्द्रमा की कान्ति में ऐसे तत्त्व होते हैं जो मानव के रुग्णों को समाप्त करते हैं। आज मैं आयुर्वेद के ऊपर कोई वाक्य उच्चारण करने नहीं जा रहा हूँ। मैं केवल यह

उच्चारण करने के लिए जा रहा हूँ कि मानव का विज्ञान इस संसार में महान रहा है। प्रत्येक औषध और प्रत्येक आभा में रमण करने वाले वैज्ञानिक इस संसार में रह रहे हैं। परन्तु देखो, सूर्य की किरणों में कुछ किरणें होती हैं, कुछ औषधियां भ्रमण करती हैं, क्योंकि जितना रस और स्वादन है वह पृथ्वी ने चन्द्रमा को प्रदान कर दिया है। चन्द्रमा रसों को वाहने वाला है और सूर्य प्रकाश का वहाने वाला है। वह प्राण शक्ति को ओत प्रोत मानो बिखेरने वाला है।

इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आज मैं आपके सम्मुख यह वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूँ जो आप ने मुझे वर्णन कराया। विज्ञान परम्परागतों से मानव के मस्तिष्कों में रहा है। राम लक्ष्मण के व्यक्तित्व में विज्ञान की नाना प्रकार की धाराएं रहीं। इसी प्रकार द्वापर के काल में विज्ञान रहा। जब मैं रमण करने लगता हूँ तो ऐसा ऐसा विज्ञान 18 अक्षौणी सेना को शस्त्रों सहित एक ही शस्त्र समाप्त करने वाला हो। आधुनिक जगत में भी इसी प्रकार के यन्त्र हैं। परन्तु उस यन्त्र में यह विशेषता थी जब वह सेना को समाप्त करता है और वह यन्त्र उसके समीप रहता है। आधुनिक काल का यन्त्र वायु में रमण कर दिया जाता है। आधुनिक काल के विज्ञान की दशा कुछ और मार्ग को प्राप्त कर गयी। परन्तु आज का जो विज्ञान है, मैं बहुत पुरातन काल से अपने पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चारण करता चला जा रहा हूँ आधुनिक यह जो जगत वायु मण्डल में रहा है इसमें कोई शान्ति विद्यमान नहीं। क्योंकि नहीं है क्योंकि विज्ञान का जो मार्ग है वह अपनी कक्षा में तो रमण कर रहा है परन्तु वह कक्षा मुझे और द्वितीय रूपों में प्रतीत हो रही है।

इसलिए मैंने बहुत पुरातन काल में पूज्यपाद गुरुदेव को कहा है कि यह संसार अग्नि के मुख में जा रहा है। अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। बहुत सूक्ष्म समय रह रहा है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यही कहा और यह क्यों कहता रहता हूँ? क्योंकि वायु मण्डल में जो एक वायु चल रही है अन्तरिक्ष के अन्दर जो परमाणु गति कर रहे हैं इनकी दशा एक विशिष्ट बनती जा रही है। तो मैं आज यह अपना वाक्य प्रकट कराने आया हूँ यज्ञमानों के समक्ष, हे यज्ञमान! तेरे मनोनीत मनों की जो भावनाएं हैं। मनोनीत जो

पवित्रताएं हैं वह तेरी ऊर्ध्वा गति में प्राप्त होती रहें। यह मेरी सदैव कामना रहती ह। ै नाना प्रकार के याग परम्परागतों से ही, यज्ञमानों के हृदयों से उत्पन्न होते रहे हैं। नाना प्रकार के याग मेरी प्यारी माताओं के द्वारा से उत्पन्न होते रहे हैं। परन्तु उसमें अपने मनों की, प्राणों की जो वेदना है। जो उसमें एक मानवता की शीलता है वह माता को और पित्रों को समाप्त नहीं कर देनी चाहिए। उनमें शान्तता रहनी चाहिए। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊगा। मैं केवल इतना वाक्य उच्चारण कर रहा था।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज महानन्द जी ने विज्ञान के ऊपर कुछ चर्चाएं कीं। इनके हृदय में जो पिपासाएं हैं वह पिपासा तो मेरा प्यारा प्रभु ही पूर्ण करता है। क्योंकि वह अपने समाज को अपने जगत को समय समय पर सीमा में बद्ध करता रहता है। परन्तु समय आता रहता है, विज्ञान अपनी कक्षा में गतियां, आभा में रमण करता रहता है। आज मैं भी अपने यज्ञमानों को हे यज्ञमान! तेरा सौभाग्य अखंड बना रहे। जीवन की धाराएं महान हों और सदैव अपने जीवन में महान बना रहे। यह आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। समय मिलेगा शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त। रक्षा बन्धन दिवस लाक्षागृह बरनावा समय : दोपहर 3.00 बजे

१६ 24 08 1981 पुष्प 38 आत्मा का भोजन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उन वेद मन्त्रों का पठन पाठन होता रहता है, जिस पठन पाठन में ज्ञान और विज्ञान की आभाओं का प्रादुर्भाव होता रहता है। क्योंकि ज्ञान विज्ञान मानव का एक मौलिक गुण माना गया है। जितना भी मानव अपने पन को विचारने लगता है और विचार विनिमय करता हुआ उस आभामयी बिन्दु पर स्थिर होने लगता है, जहाँ मानव यह विचारता है कि जितना भी यह जगत मुझे दृष्टिपात आ रहा है एक ही सर्वत्र ब्रह्माण्ड का जो स्वरूप है वह मानवीयता की आभा कहलायी जाती है। क्योंकि प्रत्येक मानव के हृदय में परम्परागतों से ही, कुछ पिपासाएं जागरूक रहती हैं और उन पिपासाओं को ले करके ऊचा ऊँची

उड़ान उड़ता रहता है।

हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि मानव को एक ही उड़ान उड़नी चाहिए। जिस उड़ान के उड़ने से मानव का अन्तःकरण सदैव प्रसन्न रहे, अथवा आनन्दयुक्त रहे और वह उड़ान कौन सी है? वह उड़ान मानव की आत्मीय वेदना है, अथवा आत्मा के चिन्तन करने की जो विशेष उड़ान है, अथवा आत्मा का जो भोजन है जिससे आत्मा प्रसन्न रहता है और जहाँ मानव आत्मा को भोजन नहीं दे पाता उसके चिन्तन में अस्वच्छता हो जाती है। मानो कि उसका आत्मिक बल चला गया। उसकी आत्मीयता चली गई? वह उसके विषय में लीन हो जाता है, लिप्त हो जाता है। इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने यह कहा है कि प्रत्येक मानव को अपनी प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को विचार विनिमय करते हुए आत्मा को भोजन देना चाहिए। क्योंकि जो प्राणी संसार में अपनी आत्मा को भोजन नहीं देता, वह महाअन्धकार लोकों को प्राप्त होता है। आत्मा का भोजन क्या है? शुभ चिन्तन है, अथवा शुभ मनन है। और अपने ऊपर मानव को निश्चल रहना ही उसकी आत्मीयता कहलाई जाती है। जो मानवव सदैव स्थिर रहता है। अपने कर्त्तव्य के पालन करने में स्थिर रहता है, उसका मानवीय दर्शनन आदित्य की भांति स्वतः प्रकाशमयी रहता है।

तो मेरे पुत्रो! मानव को जितने भी याग कर्म करने हैं वे करने चाहिए। मेरे प्यारे! महानन्द जी बारम्बार यागों के सम्बन्ध में नाना विचार और प्रेरणा देते रहते हैं। परन्तु जितना भी याग कर्म है वह आत्मा का भोजन है। परन्तु जितना अयाग है वह आत्मा को अपने में हीनता को पहुंचाने वाला है। हीनता को प्राप्त होता रहता है। तो इसीलिए हमारे आचार्यों ने बहुत परम्परागतों के ऋषियों ने बहुत चिन्तन अथवा मनन किया है। मेरे प्यारे! याग के सम्बन्ध में जहाँ तक प्रसंग आते हैं, यागों का जहाँ चयन आता है मानव का एक एक जो कर्म है वह यगा में पिरोया हुआ है। जैसे माला एक सूत्र में पिरोई हुई होती है और उसमें नाना मनके होने से वह माला कहलाती है। जैसे सूत्र में मनके पिरोना ही तो है इसी प्रकार मानव के जीवन में जितना भी शु चिन्तनीय विषय

है वह सर्वत्र एक याग और भोज के रूप में परणित माना गया है।

आज मैं तुम्हें एक स्थली पर ले जाना चाहता हूँ जिन स्थलियों में जाने के पश्चात् मानव के आभामयी धाराओं के जीवन का जन्म होता है। एक समय राजा रावण त्रेता काल की पत्रो! यह वार्त्ता है। राजा रावण का बाल्यकाल था और बाल्यकाल में ब्रह्माजी ने उनको शिक्षा दी थी। ब्रह्माजी के चरणों में विद्यमान हैं। प्रातःकाल का समय था। प्रातःकाल के समय पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा, इनका बाल्यकाल का नाम वरुण था। बाल वरुण ने कहा कि हे भगवन! मैं यह जानना चाहता हूँ कि हम आपके चरणों की जो वन्दना कर रहे हैं उसके मूल में क्या है? बाल्यकाल था। आचार्य ने कहा, हे बाल्य! तुम मेरे चरणों में जीवन चाहते हो। क्योंकि संसार में माता पिता एक बाल्य को जन्म देते हैं परन्तु जीवन गुरु देता है। जीवन आचार्य देता है और संसार में जन्म की मृत्यु होती है। जीवन का प्रकाश होता है। जीवन की मृत्यु नहीं होती है। इसीलिए प्रत्येक मानव जीवन की इच्छा करता रहता है। तो इसीलिए हे बाल्य! तुम जो मेरे समीप हो वह केवल इसलिए कि तुम जीवन चाहते हो, मृत्यु नहीं चाहते। जन्म की जैसे मृत्यु होती है क्योंकि जन्म और मृत्यु जीवन के दो छोर हैं। इसीलिए मानव को जन्म के ऊपर विचार विनिमय नहीं करना चाहिए। विचार विनिमय करना चाहिए कि हम संसार में जीवन चाहते हैं और जीवन किसे कहते हैं? जीवन उस प्राणी का सफल होता है, महान् होता है, जिस प्राणी की अन्तरात्मा में सदैव प्रसन्नता रहती है। और प्रसन्नता कहाँ रहती है? प्रसन्नता वहाँ रहती है जहाँ ओज होता है, जहाँ तेज होता है। जहाँ ब्रह्मचर्य होता है। जो प्राणी विनाशत के क्षेत्र में रहता है, वह आनन्द और सुख को प्राप्त करने वाला कदापि नहीं होगा। मृत्यु के आँगन में जा रहा है। वह मृत्यु के क्षेत्र में रमण करना चाह रहा है। इसीलिए मेरे आचार्यों ने बहुत परम्परागतों से बहुत सी वार्त्ताएं प्रकट की हैं। ब्रह्मा ने कहा रावण को हे रावण! विनाशत की मृत्यु होती है, परन्तु ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वाला जीवन को प्राप्त होता है। जीवन की मृत्यु नहीं होती, क्योंकि जीवन को पिपासा में प्राणी लगा रहता है। आनन्द को प्राप्त करने में लगा रहता

है। इसीलिए हे बाल्य! ो! तुम मेरे समीप विद्यमान हो।

वरुण ने नत मस्तक हो करके कहा हे प्रभु! मैं यह और जानना चाहता हूँ कि हम आपके समीप क्यों आए? हमारा क्या मन्तव्य है आपके समीप आने का? वरुण ने उन्हीं वाक्यों की पुनरूक्तियां कर दी। ब्रह्मा ने कहा मेरे समीप तुम इसलिए आए हो कि तुम्हारे जो अंग प्रत्यंग बने हुए हैं, प्रत्येक वस्तु का निर्माण पूर्ण रूपेण होना चाहिए। मानो निर्माण होना चाहिए और तुम जानना चाहते हो। तो मेरे प्यारे! उन्होंने इस शरीर के जीवन के चौबीस खम्भों का निर्णय कराया। इस जीवन के चौबीस स्थम्भ होते हैं। चौबीस स्थम्भ वाला यह जो मानव शरीर है, यह ब्रह्मचर्य से सजातीय कहलाता है इसमें चरि रमण कर रही है। इसीलिए हमें उस आभा में देवता बनने की उत्सुकता है। अब देवता तुम कैसे बनोगे? जब तुम अपनी वाणी के द्वारा, अपने ओज के द्वारा तुम्हारे ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्वा को प्राप्त होती रहेगी और यागों में तुम रमण करते रहोगे। अपने जीवन को याग का एक क्षेत्र स्थली स्वीकार करोगे। तो उस समय तुम्हारा जीवन देववत् को प्राप्त होने लगेगा। तुम्हें प्रतीत है इस समय साकल्य ऋषि ने एक वाक्य कहा था और महर्षि सुधवा ने इसी वाक्य की पुनरुक्ति की थी। उन्होंने कहा कि हम देवता बनना चाहते हैं। देखो, पशु से मनुष्य बनना चाहते हैं।

मनुष्य से हम देवता बनना चाहते हैं। देवता कौन होता है? जो ब्रह्म के समीप जाने की इच्छा प्रकट करता है। ब्रह्म के समीप कौन जाना चाहता है? और कौन जाता है? यह प्रश्न तुम्हारे मस्तिष्कों में रहता है। जो अपने उद्देश्य, अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। उद्देश्य और कर्त्तव्य जिसके समीप नहीं रह पाता वह मानव मृत्यु ही नहीं, वह पशु से भी ध्रुवापशु में चला जाता है। और जो मानव ब्रह्मचर्यवत और ब्रह्मचरिष्यामि, ब्रह्मचर्य की आभा में जो रमण करने वाला है। वह देवतव को प्राप्य होने वाला है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि संसार में गृहस्थ ठीक नहीं है, उनमें भी मानव देवता बनता रहता है और कौन देवता होता है? जहाँ सु विचार होते हैं जहाँ ब्रह्मचरिष्यामि प्रभु अपने समीप रहता है और अपनी सीमा पर जिसको अपने में दृढ़ता रहती है वही मानव देवता पन

को प्राप्त होने लगता है।

तो मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे किसी किसी काल में यागों की प्रेरणा देते रहते हैं। आज भी इन्होंने मुझे याग की प्रेरणा दी है। परन्तु मैंने बहुत पुरातन काल में अपने विचार देते हुए कहा था कि संसार में मानव का देवता बनना भी एक याग है। और कौन देवता कहलाता है? यह प्रसंग रह गया हमारा। तो ऋषि कहता है, ब्रह्म भी कहते हैं कि हे वरुण ब्रह्मचारी! तुम ब्रह्मवेत्ता बनो और ब्रह्मवत् बनने वाला ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है और ऊर्ध्वागति को प्राप्त होने वाला मानव देवता बनता है और देवता मौन रहता है। देवता वाणी से अशुद्ध नहीं कहता। देवता जो याज्ञिक पुरुष होते हैं जो याग करते हैं देवताओं को याग के द्वारा अपनी वाणी को पहुंचाना चाहते हैं, वह देववत् हो जाते हैं।

क्योंकि प्रभु ने जब सृष्टि का सृजन किया था और स्वयं ब्रह्मा बन करके परमपिता परमात्मा ने तपस्या की और तपने के पश्चात् यह जगत् रचा जो दृष्टिपात आ रहा है। उसने संसार रूपी यज्ञशाला का जब सृजन किया तो उस ब्रह्मा के तीन तेज बने। उस परमपिता परमात्मा के तीन तेज बने। तेज तीन रूपों में विभक्त हो गया। सबसे प्रथम पृथ्वी मण्डल पर जो अग्नि के रूप में हमें दृष्टिपात आता है, जिस अग्नि में मेरी प्यारी माता भोजन का निर्माण कर रही ह। ै यज्ञशाला में याज्ञिक पुरुष याग का चयन कर रहा है। स्वाहा कह कर आहुति दे रहा है। मेरी प्यारी माता भोजनालय का निर्माण कर रही है। शरीर रूपी यज्ञशाला को सुसज्जित बनाने के लिए मानो एक तेज तो यह कहलाता है। द्वितीय तेज वायु के रूप में परणित हो गया। जो प्राण बन करके गति कर रहा है। दो प्रकार के प्राण संसार में विचरण कर रहे हैं। एक विशेष कहलाता है जो प्रत्येक मानव के शरीर में भ्रमण कर रहा है। उस एक ही प्राण के दस भाग बन करके इस संसार को वैज्ञानिक रूपों में स्थिर कर रहा है। द्वितीय तेज यह कहलाता है जो वायु बन करके इस संसार को गति दे रहा है। जितने भी वृक्ष, वनस्पतियां हैं, नाना साकल्य हैं, उन सबमें जो गति है वह प्राणेस्वर वायु की है। यह वायु अपने वेग में रमण कर रहा है। गति कर रहा है। परमाणुओं को ले करके गति कर रहा है। वायु

को जो उसका सूक्ष्म रूप द्यो है। तीसरा जो स्वरूप है विद्युत का, सत् पुरुष ब्रह्म का वह द्यौ में कहलाता है और द्यौ लोक में यह त्रिभुज कहलाता है। इसी द्यौ में नाना प्रकार के मानव के जीवन के शब्दों के यन्त्र गति करते रहते हैं। याज्ञवलक्य ऋषि महाराज ने नाना ऋषियों ने यहाँ यज्ञमान को यही प्रेरणा दी है। हे यज्ञमान! तेरी जो स्वाहामयी वाणी है यह द्यौ में गति करने वाली है। यह द्यौ लोकों में रमण करने वाली है वह जो द्यौ है वही मानव के चित्रों को लिए हुए, वही परमाणुओं को ला करके गति कर रही है और द्यौ में स्थिर हो जाते हैं। मेरे प्यारे! वह जो द्यौ है, सूक्ष्म प्रकार की विद्युत उसमें गतियां कर रही हैं। मानो वह जो आभा में विद्युत के कण विद्यमान हैं, वैज्ञानिक जब तीन प्रकार की विद्युत की चिन्तमयी धारा को, उसके तेज को विचार विनिमय करने लगते हैं तो वैज्ञानिक अपने में उस विद्युतधारा को धारण करता हुआ इस ब्रह्माण्ड में गति करने लगता है। इसी प्रकार योगी जब इसका चिन्तन गम्भीरता से करता है तो वह द्यौ को प्राप्त होता है। इसी प्रकार हे यज्ञमान! तेरी जो धारा है, चिन्तन का जो विषय है वह इतना महान् होना चाहिए यदि तू याग वास्तव में कर रहा है, तो तेरा इतना ऊचा याग होना चाहिए। कि यदि तेरे याग करने से भी गृह में कलह की सामग्री बनी रहती है तो तेरा याग पवित्र नहीं बन पाया। इसी प्रकार प्रत्येक मानव अपने तन में, अपने तन को दृष्टिपात करता है। यह परम्परा का एक विचार विनिमय होता रहता है।

मेरे प्यारे! महानन्द जी भिन्न भिन्न प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं परन्तु यह वाक्य ब्रह्मा जी ने वरुण को कहा था। हे वरुण! तुम याज्ञिक बनो। संसार में प्रभु के इन तीनों तेजों को जानने वाला अपने में ही दृष्टिपात करके सूर्य ज्ञान में रमण करता ह। ै स्वयं आध्यात्मिकवाद को प्राप्त करता है। प्रत्येक मानव यह कहता है कि आध्यात्मिकवाद क्या है? आध्यात्मिकवाद उसे कहते हैं जिसमें मानव के जीवन का जो रहस्य है वह ऊर्ध्वागति को प्राप्त होता रहे। शान्ति को प्राप्त होता रहे। अपने पन में अपने को दृष्टिपात करने वाला ही आध्यात्मिकवादी पुरुष कहलाता है। आध्यात्मिक बेटा! कौन है? आध्यात्मिक वह कहलाता है जिसकी ऊर्ध्वागति बन करके देवता बनने के लिए वह तत्पर होता है

और यदि वह देवता नहीं बन पाता, अपने में उदण्ड बना रहता है, वह शूद्र बना रहता है, वह ध्रुवगति को प्राप्त होता हुआ, मृत्यु को प्राप्त होता रहता है।

इसलिए मैं कुछ विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी भी अपने वाक्य प्रकट करते रहते हैं। आज मैं उन वाक्यों की पुनरुक्ति करना ही क्या? महाराजा रावण जो उनका बाल्य जीवन था वरुण के नाम में वह कितना ऊर्ध्वागति में चिन्तन करते थे। वह ब्रह्म के समीप जब शिक्षा अध्ययन करते थे तो मुनिवरों! अपने में रावण की चिन्तन करने की जो विशेष आभा थी वह विचित्र कहलाती थी। परन्तु इसके पश्चात् वह मौन हो गए। जैसे ब्रह्मा मोन हो गए। अहा! ब्रह्मचारी ने पुनः प्रश्न कर दिया कि महाराज! हम संसार में आपके समीप क्यों आए हैं? ब्रह्मचारी के प्रश्न करने के पश्चात् ब्रह्मा जी कहते हैं तुम मेरे चरणों में इसलिए आए हो क्योंकि संसार में जो मानव वन्दना करता है, वह जो नम्र रहता है कि प्रभु की सृष्टि में इतना ज्ञान हे, इतना विज्ञान है मैं जितना जानता हूँ वह मैं कुछ नहीं जानता क्या सुन्दर उत्तर ऋषि देते हैं? ऋषि ने कहा हे वरुण! यह मानव के समीप सदैव मान्यता बनी रहे कि मैं जितना जानता हूँ मैं कुछ नहीं जानता। प्रभु का राष्ट्र, प्रभु का विज्ञान, प्रभु का तेज, प्रभु की प्रतिभा इतनी विशाल है इतना महान् ज्ञान है उसका, कि मैं उसके ज्ञान के आगे मौन हो जाता हूँ। तो मैं कुछ नहीं जानता। इसलिए तुम ऋषियों के चरणों में ओत प्रोत हो विद्यालय में हो, ब्रह्मचारी हो, ब्रह्मवत् बनने से तुम्हें अभिमान न हो जाए। इसीलिए ऋषियों के चरणों में तुम्हारे आने का अभिप्राय होता है। मेरे प्यारे! वरुण ब्रह्मचारी संतुष्ट हो गया। तीन प्रश्न किए, तीन प्रकार के उत्तर उन्हें प्राप्त हो गए।

विचार विनिमय क्या? प्रत्येक मानव को अपने जीवन की ऊर्ध्वा सामग्री को महान् बनाते हुए संसार में महान् बनना चाहिए। यदि वह महान नहीं बन रहा है। उसकी प्रवृत्तियां विलासता में परणित रहती हैं, वह मृत्यु की सामग्री को एकत्रित कर रहा है। मृत्यु को प्राप्त होने जा रहा है। इसलिए मेरे आचार्य आभा में रमण करने वाले ऋषिजनों तुम्हें धन्य है तुमने अपनी वाणी से ऊर्ध्वा गति के शब्दों से मानव को सुसज्जित किया है। मानव को महान बनाने के लिए प्रेरित किया है। ऐसा याज्ञिक पुरुष इस संसार सागर

से पार होना चाहिए।

याज्ञिक कौन होता है? बहुत पुरातन काल में पुत्रो! मैंने वर्णन किया है कि याज्ञिक वह पुरुष होता है। जिसके हृदय में प्रत्येक इन्द्रियों के विषय की सामग्री और वह चिन्तन करने वाला विषय उसका जो यज्ञ है वह सहृदय होना चाहिए। हृदय में सब समाहित रहते हैं जैसे यह वृक्ष हैं यह सब परमाणुओं का हृदय माना गया है और हृदय में सब समाहित रहते हैं। इसीलिए आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ अब मैं महानन्द जी को दो शब्दों के लिए प्रेरित करूंगा।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमृतमयी वाणी का प्रतिपादन कर रहे थे। क्योंकि ज्ञान आत्मा की सम्पदा मानी जाती है। मैं आज कोई विशेष चचाएं देने नहीं आया हूँ। केवल विचार विनिमय यह कि मानव अपने जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों को भोगता रहता है और वह उसका भोग उसके जीवन का तन्तु बना रहता है। आज मैं यह विचार देने भी नहीं आया कि कर्मों के ऊपर कोई विचार विनिमय किया जाए। केवल यह कि जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है। वहाँ एक याग का प्रीति भोज अथवा याग प्रतिपूर्णता को प्राप्त हुआ। मेरा अन्तरात्मा तो प्रसन्न रहता है कि न करने से कुछ करना बहुत ही प्रिय होता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भी यह वाक्य परम्परा से ही हमें उज्ज्वलता से और साहसों में वर्णित करते रहे हैं। परन्तु आज मैं यह वाक्य और उच्चारण करने आया हूँ कि याग रचना बहुत ही प्रियतम है। परन्तु याग के अनुसार अपने जीवन को बनाना और भी प्रिय होता है। क्योंकि याग जितना भी कम है वह आत्म शान्ति के लिए है और मनों की शान्ति के लिए है जिसके परमाणु बन करके वायुमण्डल में परणित होते रहते हैं और उन्हीं परमाणुओं से अशुद्ध परमाणु निगले जाते हैं। शुद्ध परमाणुओं का प्रादुर्भाव होता है। जिससे वायुमण्डल पवित्र होता है।

हमारे यहाँ पुरातन के वैज्ञानिकों में, एक समय भगवान् कृष्ण से अर्जुन ने कहा था। एक समय वह एक यन्त्र का निर्माण कर रहे थे भगवान् कृष्ण अपनी विज्ञानशाला में। अर्जुन ने कहा कि हे भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो परमाणुओं में

अशुद्धवाद होता है इसके निवारण के लिए आप क्या कर सकते हैं? भगवान् कृष्ण ने कहा हे अर्जुन! यदि परमाणुओं का दुष्प्रहार होने लगेगा तो मैं उसके पश्चात याग करूंगा। नाना साकल्य एकत्रित करके घृत एक ऐसी वस्तु है जिसे हम पशु याग कहते हैं। पशु याग क्यों कहते हैं? क्योंकि पशु से घृत आता है और उस घृत के द्वारा जो याग करते हैं अग्निष्टाम, अग्नि में वह प्रवेश करते हैं वह परमाणुवाद को उत्पन्न करते हैं और सूक्ष्म बनाता हुआ वायुमण्डल में प्रवेश करके अशुद्धता को निगलते चले जाते हैं उनका सम्बन्ध द्यौ लोक से रहता है। तो याग कर्म जहाँ इस प्रकार का ऊर्ध्वा गति में ले जाने वाला है, हे यज्ञमान! तेरे आहार और व्यवहार की सामग्री भी उसके अनुसार होनी चाहिए। यदि तेरे आहार और व्यवहार में अशुद्धवाद आ गया तो याग की परम्परा, याग की जो धारा है वह तेरे आत्मायता की जो शान्ति है उसे निगलती चली जाएगी और तेरे हृदय में एक ही उज्वल अग्नि प्रदीप्त हो सकती है। वह तेरे हृदय को अपने में धारण करती तेरे हृदय को अशान्त बनाने का मूल कारण बन सकती है।

तो पूज्यपाद! मैं आपके इन वाक्यों की पुनरुक्ति कर रहा हूँ जो आप मुझसे पूर्व से अन्त तक उच्चारण करते चले आए हैं। क्योंकि जिस कार्य को आज का मानव समाज करता रहता है उस कार्य को मैं और प्रत्येक मानव के जीवन में घटित होता रहता है। परन्तु उसको महान बनाने के लिए मानव को चेष्टा करनी चाहिए। महान बनना चाहिए, जिस महानता के जीवन में एक आभा प्रकट होती है। यूं तो संसार में अग्नि प्रदीप्त हो रही है। परन्तु उस अग्नि को हे याज्ञिक पुरुषो! तुम शान्त करने का प्रयास करो। वही प्राणी रहेगा जिसका याग पवित्र बना रहेगा और जिसका याग अपवित्र बन गया यह संसार में अग्नि के मुख में प्रवेश कर रहा है। इसलिए मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। हे यज्ञमान! तेरे जीवन में महानता होनी चाहिए। तेरा जीवन एक महान आभा में रमण करने वाला हो। आयु दीर्घ हो। जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। अशुद्ध संकल्पों का विनाश होता रहे। यह मेरी सदैव कामना रहती है यह मेरा सदैव हृदय ही कहता रहता है। क्योंकि इस कार्य को मैंने किया है उस कार्य को मैं द्वितीय रूपों में पुनरुक्ति करता रहूँ तो मेरे से धृष्ट कोई नहीं होगा। संसार में मुझे कुछ प्राप्त नहीं हुआ।

प्राप्त होता तो मैं भी घोषणा कर देता। प्राप्त उन्हें होता है जिनके जीवन में ब्रह्मचर्य होता है। उनकी घोषणा पुनः पुनः में और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव करते रहते हैं। जहाँ विनाशता की प्रेरणा हृदयों में प्रदीप्त होती रहती है वही प्रेरणा मानव के पुण्यों को निगलती चली जाती है। और पाप को उद्बुद्ध करती रहती है। इसलिए हे मानव! तू संसार में पाप को उद्बुद्ध न कर। तू पुण्य को उद्बुद्ध कर जिससे तू देवताओं की सभा में सुशोभनीय हो जाए। देवता बनना ही आत्मीयता कहलाता है और उच्छृखल होना ही अचरित्र होना ही तेरी मृत्यु निकट आती रहती है। हे मानव! इसलिए तू जीवन के लिए, जीवन की मृत्यु को विचार। जन्म की मृत्यु को विचार और जीवन के अमृत्यु निवारण होने का प्रयास कर। ऐसी मेरी कामना रहती है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे जीवन में एक महान सामग्री बनी रहे जिससे तू पुण्यों को एकत्रित करता रहे। पाप तेरे से भिन्न हो जाएं। ऐसी मेरी कामना है। अब मैं इसके साथ अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊगा। शेष चर्चाएं पुनः प्रकट करेंगे।

मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अभी अभी दो शब्दों द्वारा यज्ञमान के लिए कुछ अपने विचार प्रकट किए। मेरे हृदय में भी प्रेरणा रहती है। यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। जीवन में एक महत्ता प्राप्त होती रहे। इसके साथ यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। 38, जोरबाग, नई दिल्ली समय सायं : 4.00 बजे

१७ 12 09 1981 पुष्प 39 सोलह संस्कार

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से जिन मनोहर वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है। ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला वह देवतव कहलाया जाता है।

आज हम उस देव की उपासना करते हुए अपने मानवीय जीवन को पवित्र बनाने के लिए तत्पर हैं। परम्परागतों से ही, मानव तत्पर रहा है और विचार विनिमय करता रहा

है कि हमारा मानवीय कल्याण होना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक मानव अपने कल्याण के लिए संसार में रत्त रहता है अथवा कार्य करता रहता है और यह उसकी आन्तरिक भावना रहती है कि मैं जितना भी संसार का वैभव है अथवा ऐश्वर्य को ढूंढ़ता हुआ संसार सागर से पार होना चाहता हूँ, (शब्द ध्वनि से) यह संसार मान वाला जगत् है। जिसमें नाना प्रकार की आभाएं विद्यमान रहती है।

संसार का स्रोत

परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र, जहाँ यह कहता है कि मानव ब्रहे वृतां वेद का आचार्य, एक ही वाक् कहता है कि हे मानव! तू अपने कल्याण को चाहता रहता है, उत्सुकता बनी रहती है। परन्तु तेरा कल्याण उस काल में होता है जब तेरे व्यवहार की आभा, आहार की आभा इतनी विचित्र बन जाए, जिससे तेरा अन्तर्रात्मा जो ज्ञानमयी है, मानो उससे ऊँची तरंगें हृदय में उत्पन्न होने लगे। क्योंकि हृदय ही संसार का स्रोत है। हृदय से नाना प्रकार की तरंगें उदबुद्ध होती रहती हैं। इन तरंगों से ही मानव सदैव तरंगित हो करके संसार के नाना कार्यो में रत्त हो जाता है। परन्तु उन कार्यों में रत्त रह करके आत्मा का जो ज्ञान है अथवा विज्ञानमयी है वह सर्वत्र उसके समीप आने लगता है।

वार्त्ता से मानव को बल

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें, ऋषियों के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ, जहाँ नाना ऋषि, अपने आसन पर विद्यमान हो करके, कुछ ब्रह्म चर्चाएँ कर रहे थे। उन ब्रह्म चर्चा वालों में, महर्षि रेवक और ब्रह्मचारी कवन्धी भी विद्यमान थे। ब्रह्मचारी कवन्धी और महर्षि रेवक दोनों चिन्तन कर रहे थे। रात्रि का काल था। विचार विनिमय कर रहे थे कि हम अपने मानव जीवन को विज्ञान में ले जाना चाहते हैं। परन्तु एक मानव इस संसार में दैत्य प्रकृति वाले प्राणियों से दुःखित होता रहता है। वह विडम्बनित रहता है। परन्तु उस विडम्बना को शान्त करना चाहता है। जैसे अन्धकार में एक मानव विद्यमान है और अन्धकार में वह दैत्यों से ओत प्रोत हो करके कहता है, कोई प्राणी मेरी रक्षा करने वाला? परन्तु एक मानव कह रहा है आ जाओ, मैं इस मार्ग में स्थिर तुम्हारी

सहायतार्थ हूँ। तो उस मानव को एक बल, एक शक्ति प्राप्त हो जाती है।

कर्ण की मृत्यु

जैसा पुत्रों! तुम्हें प्रतीत होगा, महाभारत के काल में, जब कर्ण और अर्जुन दोनों का संग्राम हुआ और महाराजा शल्य को कर्ण का सारथी नियुक्त किया गया, तो उस समय भगवान कृष्ण और अर्जुन को यह प्रतीत हुआ कि शल्य सारथी बन रहा है। कर्ण का सारथी कौन है? महाराजा शल्य, जो माद्री का विधाता कहलाता था। अब दोनों को जब यह प्रतीत हुआ, भगवान कृष्ण और अर्जुन दोनों उनके समीप पहुंचे। उन्होंने कहा हे मानं ब्रहे तू इस कर्ण का सारथी न बन, क्योंकि तू हमारा नाती है। हमारे जीवन का साथी बन। परन्तु तुम कर्ण के साथ क्यों अपनी आभा प्रगट कर रहे हो? महाराज शल्य ने कहा, कि मैं सारथी बनूंगा। परन्तु अब मैं बन गया हूँ भगवान कृष्ण बुद्धिमान थे। उन्होंने कहा तो शल्य आप एक कार्य कर सकते हो। जो भी उच्चारण करोगे, उन्होंने कहा तो आप कर्ण को साहस न देना। उनको निराशा की वार्त्ता प्रगट करना जिससे हताश होते रहें। हताशता की वार्त्ता प्रगट करो, यह मेरी इच्छा है और जो तुम चाहते हो उच्चारण कर सकता हूँ। तो मेरे पुत्रो! महाराजा शल्य ने ऐसा ही किया।

जब कर्ण रथ में विद्यमान हुआ तो शल्य कहता है, हे कर्ण! मुझे प्रतीत होता है कि तुम्हारी आज मृत्यु होगी। उन्होंने कहा, क्या उच्चारण कर रहे हो? मैं बलिष्ठ हूँ। अर्जुन जैसे कितने भी रथी आए जाएं परन्तु वह भी मेरे लिए कुछ नहीं हैं। पुनः फिर शल ने कहा, हे कर्ण! तुम्हारी मृत्यु है आज। परन्तु यही उससे निराशा की वार्त्ता प्रगट करता रहा। संग्राम होने लगा। परन्तु जब उनके रथों के चक्र वह जो रथ बह रहा था उसमें कुछ अप्रीति हो गई, वह अग्रणीय न बन रहे थे, तो उस समय उन्होंने कहा हे शल! रथ के जो चक्र हैं इनको बाहर करो। उन्होंने कहा, मैं राजा हूँ। मैं तुम्हारा सारथी बन गया हूँ।

परन्तु यह मेरा कार्य नहीं है। तुम सूत पुत्र हो। मेरे प्यारे! जब उन्होंने ऐसा कहा, अब कर्ण रथ से नीचे आ करके जब चक्रों को बाहरी करने लगे, कृष्ण जी ने कहा, हे

अर्जुन! अब समय है इसकी मृत्यु का। मेरे प्यारे! शस्त्रों की, बाणों की वर्षा होने लगी। उसका शरीर छेदन होने लगा। उस समय कर्ण ने कहा, हे अर्जुन! मेरी भुजों में कोई शस्त्र नहीं है और तुम मुझे मृत्यु को पहुंचा रहे हो। कृष्ण जी कहते हैं, हे कर्ण! उस समय तुम कहाँ थे जब अभिमन्यु को मानो निहत्थे तुमने नष्ट किया। उसके भुजों में कोई शस्त्र नहीं था। आज तुम्हें अपना शरीर, अपने प्राण इतने प्रिय हैं। मेरे प्यारे! देखो, अर्जुन बाणों की वृष्टि करता हुआ शान्त हो गया। कृष्ण जी बोले, हे अर्जुन! क्यों? उन्होंने कहा, इसकी भुजाओं में कोई शस्त्र नही है। उन्होंने कहा, तुम्हारी मृत्यु आ रही है। आज तुम मृत्यु को अपने समीप लाना चाहते हो। परन्तु यहाँ शल्य कह रहा था कर्ण! तेरी मृत्यु आ गई। अर्जुन पुनः अस्त्रों की वर्षा करने लगा। परिणाम यह हुआ कि कर्ण की मृत्यु हो गई। यही विचार जब मानव के मस्तिष्कों में आता है तो वह निराशा में हताशा में बदल जाता है।

यह प्रश्न कैसे उत्पन्न होता है? वही प्रश्न लेकर के अस्त्रों शस्त्रों की निराशा और ह्रासता का यह प्रसंग कैसे उत्पन्न होता है तो इस प्रसंग ले करके अस्त्रों का ह्रासता का प्रसंग ले करके ब्रह्मचारी कवन्धी और रेवक ब्रह्मचारी दोनों विद्यमान थे। वह अपने मनों में विचार रहे थे। ऐसी कौन सी आभा है, जो मानव के अन्तः करण को छेदन कर देती है। वह निराशा है एक मानव को निराशा देते रहिए। एक प्राणी को निराशा देते रहिए। निराशा वाले की मृत्यु बहुत शीघ्र होती चली जाती है। उसका प्राण उसका साथ त्याग देता है। मेरे प्यारे! यह उन्होंने दर्शनों की भाषा में अथवा अपने साहित्य दर्शन शास्त्रों में जब दृष्टिपात किया तो उस पर विचार करने लगे। विचार विनिमय करते हुए ब्रह्मचारी कवन्धी ने कहा, हे प्रभु! मैं इसको जान नहीं पाया हूँ। अब आगे कृतां रेवक मुनि बोले कि जानता मैं भी नहीं। परन्तु उन्होंने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए, वह हिमालय की कन्दराओं में पहुंचे। हिमालय की कन्दराओं में महाराजा शिव पुत्र गणेश जी महाराज अनुसन्धान कर रहे थे और वह इसी वाक्य पर अनुसन्धान कर रहे थे कि

निराशा में कैसे मृत्यु है और उल्लास में कैसे जीवन प्राप्त होता है?

वैज्ञानिक गणेश

मेरे प्यारे! देखो, वही वाणी है, जो अग्नि स्वरूप बन जाती है। दर्शनों की भाषा में आया है कि यदि हम वाणी को मानो दिशा के रूप में दृष्टिपात करते हैं, तो दिशाओं से वायु प्राण को लेकर के गमन करता है अपने स्वरूप में, इस पृथ्वी के आँगन में, गर्भ स्थल में, नाना प्रकार के अन्नाद को उत्पन्न करता रहता है। खनिजों में प्राण प्रदान कर देता है। परन्तु देखो, इसी प्रकार किसी भी परमाणुओं को जो वायु में गति करने वाले परन्तु देखो, वह गणेश जी उसी पर अनुसन्धान कर रहे थे। मेरे प्यारे! वह एक यन्त्र का निर्माण कर रहे थे, जैसे मानव की वाणी मानव को उल्लास में पहुंचाती है, इसी प्रकार एक यन्त्र भी उनके समीप ऐसा होना चाहिए कि वह यन्त्र विद्यमान है और उसको सहायता दे रहा है। वह शत्रु से मृत्यु को प्राप्त नहीं हो रहा है वह विजयी बन रहा है। मेरे पुत्रों! देखो, इस प्रकार के यन्त्र को महाराजा गणेश जी ने उत्पन्न किया मानो उसको निर्माणित किया और अन्तरिक्ष में गति करते रहे और गति करने वालों से मानो आत्म चेतना को दृष्टिपात करने लगे।

एक समय गणेश जी की यह इच्छा हुई कि मानो जैसे मेरा उदर है, जैसे मेरा मुखारबिन्दु है। नासिका के छिद्रों में प्राण गति कर रहा है परन्तु देखो, इन्हीं से यह प्राण कहाँ तक गति करता है मेरे प्यारे! वायु में गति करने वाला अन्तरिक्ष में परमाणु था, उस परमाणु को वह एकत्रित करने लगा, करता हुआ बहुत समय हो गये, उन्होंने अपने यान को वे दृष्टिपात करने लगे कि मैं यह जानना चाहता हूँ कि कितनी पृथ्वियाँ हैं? और इन पृथ्वियों में किस किस प्रकार के प्राणी रहतें हैं? एक महाराजा गणेश जी उस काल में ऐसे थे। ऐसे शिक्षित थे, वैज्ञानिक थे, जो यान को ले करके मेरे प्यारे! वह मंगल में गति कर रहे हैं। एक यान उनके आश्रम में, उनके राष्ट्र एक यान उस काल में देखो, मंगल मण्डल का आया। मंगल मण्डल का एक यान था, जिसको शुक्रेतु यान कहते थे। मेरे प्यारे! देखो, वह परमाणु जैसे ही यन्त्र पृथ्वी मण्डल पर आया,

महाराजा गणेश जी ने पिता की आज्ञा पाकर के ऐसे यन्त्र का निर्माण किया जिससे उस यन्त्र को उन्होंने ग्रहण कर लिया और उसके ऊपर अनुसन्धान किया गया, तो यह प्रतीत हुआ उन्हें क्या मंगल में प्राणी रहता है। मंगल में मानव रहता है। मंगल में वेद की आभा रमण करती है। परन्तु यह उन्होंने बहुत अपने काल में इस प्रकार के यन्त्र को जाना। एक समय महाराजा गणेश जी ने एक यन्त्र का निर्माण किया, जिस यन्त्र को चुंहेतकेतु यन्त्र कहते थे। चुंहेतकेतु यन्त्र में विद्यमान हो करके वह पृथ्वी की परिक्रमा करते थे। पृथ्वी की परिक्रमा करी, उन्होंने यन्त्र में और शक्ति दी। मेरे प्यारे! मंगल की परिक्रमा करने लगे और पुनः उन्हें शक्ति प्रदान हुई तो मेरे प्यारे! वह यन्त्र से मंगल की परिक्रमा करने लगे ऐसे उन्होंने एक सौ इकहत्तर मण्डलों की उन्होंने परिक्रमा की और परिक्रमा करके उन्होंने यह जाना कि किन किन लोंको में कौन कौन सा तत्त्व प्रधान है और किस किस तत्त्व प्रधान के प्राणी रहतें हैं। क्योंकि परमाणु तो तीन ही हैं। परमाणु पंचों में नहीं रहते। परमाणु तो मानो पृथ्वी का है और जल का है और अग्नि का है। परन्तु तीन प्रकार के परमाणु जगत में रहते हैं। एक पार्थिक तत्त्व वाला, एक जल प्रधान वाला और एक अग्नि तत्त्व प्रधान वाला। यह तीन परमाणु हैं। जो मुनिवरों! देखो, अन्तरिक्ष में गति करते हैं। वायु इन परमाणुओं को लिए हुए इस अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। गति करता हुआ इन्ही परमाणुओं को लेकर के मेरे प्यारे! लोक लोकान्तरों में उन्होंने अपनी आभा को प्रगट किया।

ऊर्ध्वा में मानव की जड़

उसके पश्चात् उन्होंने एक समय यह विचारा कि मेरे मस्तिष्क में, ऐसा क्योंकि मैं मानव हूँ। इस मानव के मस्तिष्क में ऐसी कौन सी वाहक नाड़ी है जिन नाड़ियों से वह लोकों को जानता है? तो हमारे ऋषि मुनियों ने मेरे प्यारे! कौन अवाहत प्रमाणा वृत्ति देवाः अचनं वृत्ति गच्छतं वेद के आचार्यों ने बेटा! बहुत अनुसन्धान किया। ब्रह्मचारी कवन्धी और मुनिवरों! महर्षि रेवक दोनों जिज्ञासु थे। गणेश जी ने उनसे प्रश्न किया कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरे मस्तिष्क में, क्योंकि मानव का जैसे एक वृक्ष है और

वृक्ष वह ऊर्ध्वा में कहलाता है।
वृक्ष की ऊर्ध्वा गति है। मानो वही जैसे वृक्ष की नीचे को जड़ होती है। ऐसे ही मानव की जड़ ऊर्ध्वा कहलाती है। उस ऊर्ध्वा जड़ में कौन सा परमाणु, कौन सा तत्त्व है? कहाँ वह नाड़ियाँ रहती हैं जहाँ वह मानो अन्तरिक्ष में गति करता है तो मेरे प्यारे! महाराजा गणेश जी और रेवक मुनि और कवन्धी का विचार विनिमय होने लगा। परन्तु यह विचार जब नहीं आ पाया तो उस समय मेरे प्यारे! वह महाराजा शिव के द्वार पर पहुंचे। माता पार्वती और शिव दोनों विद्यमान थे। उनका कुछ चिन्तन चल रहा था। उन्होंने चिन्तनवेत्ताओं ने, आज जो चिन्तन करने वाले होते है। वह बहुत गम्भीर, सूक्ष्म तरंगों में चले जाते हैं।
तो मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी कवन्धी और रेवक मुनि दोनों ने एक स्वर में कहा, हे भगवन! हम जानना चाहते हैं, कि यह कौन सा अवधान कहलाता है, जिससे मानव लोक लोकान्तरों की तरंगों से तरंगित होता रहता है? कौन सी ऐसी आभा है? मेरे प्यारे! उस समय उन्होंने कहा कि यह पार्वती से प्राप्त किया जाए। पार्वती से प्रश्न करने लगे। हे मातेश्वरी! आपके जो यह पुत्र गणेश जी हैं, वैज्ञानिक हैं यह लोकों की यात्रा करने वाले हैं। सदैव अनुसन्धान करते रहते हैं। परन्तु हम यह जानना चाहते हैं कि यह कौन सी आभा है जो इस प्रकार रमण करती रहती है? उन्होंने कहा हे ऋषि मुनियों! तुम्हें यह प्रतीत है कि हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ के पश्चात् ऋषि मुनियों ने एक विधान बनाया अथवा एक आभा में परणित हुए तो उन्होंने एक आभा में यह निर्णित किया था, क्या यह निर्माणं ब्रहे अच्युतं गजस्तं अस्वां वृत्ति सक्षा ब्रीहि क्या वह जो आभा में रमण करने वाली, जो तरंगें होती हैं, जो लोकों में रमण करती हैं, परन्तु इसका समन्वय क्योंकि हमारे ऋषि मुनियों ने जब विधान बनाया तो उन्होंने निर्माण करते हुए, निर्णित करते हुए, उन्होंने केवल एक ही वाक् कहा है उस समय सम्भूतिः त्रिष्टकेतु कई शब्दों का प्रतिपादन किया। परन्तु उन्होंने मानव के, माता के गर्भ स्थल से ले करके मृत्यु तक इस मानव जीवन के सोलह प्रकार के संस्कारों की गणना की और वह संस्कार क्या है? मानो संस्कार देना जो संस्कार अपने हृदय से दूसरों के हृदय में प्रदान करते

हैं।

संस्कार

माता जब अपने बालक को अपने हृदय की प्रेरणा बालक के हृदय में परणित कर देती है जैसे मंगलं ब्रहे मंगलं देवत्वाः मंगलमयी कामनाएं होती हैं। मंगलाचरण करती हुई, मानो एक अपने हृदय की तरंगें बालक के हृदय में प्रवेश कर देती हैं। क्योंकि वह विज्ञान माताओं के समीप होता है। कुछ अनायास भी आ जाता है, नक्षत्रों की आभा से। इसी प्रकार मानो देखो, जन्म एक संस्कार होता है, स्थलियों में रमण करने वाला है। परन्तु उसके पश्चात् संस्कार उपंग गृहीत संस्कार होता है। परन्तु देखो, वह नोचन जो संस्कार है उसमें एक आभा की तरंगें आती रहती हैं। परन्तु वह माता के गर्भ स्थल में जो निर्माण होता है, बालक का, उस बालक के जो केश होते हैं, उन केशों के निचरले भाग में मानो देखो, एक से एक सूक्ष्म नाड़ियाँ होती हैं, और उन नाड़ियों का सम्बन्ध ऊर्ध्वा होता है। जैसे मानो देखो, पृथ्वी पर वन की धरंगें होती हैं इसी प्रकार इन महाकृतियों में नाना प्रकार एक एक केश के निचरले भाग में एक ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है उस ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर जितने भी मानो केश होते हैं उन केशों में उनके नीचे जो नाड़ियाँ हैं, जितनी नाड़ियाँ है ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्वा भाग में उनका समन्वय सबका लोक लोकान्तरों से होता है।

नाडियों की जागरुकता

परन्तु यदि कोई मानव उनको उन नाड़ियों को जागरूक करने वाला हो। जागरूक कैसे होती है? सूक्ष्म चिन्तन से और वह चिन्तन जितना सूक्ष्म होता है, वह चिन्तन जितना आत्मीयता से समन्वय होता है उतना प्राण से उसका समन्वय और विशेषकर होता है, तो ब्रह्मरन्ध्र की नाड़ियाँ सर्वत्र जागरूक हो जाती हैं।

तो जागरूक हो करके मानो इसीलिए बुद्धिमान जब माता के गर्भ से पृथक होता है तो आचार्य बुद्धिमान वेद के ज्ञान को ले करके, वेदमन्त्र को ले करके, क्योंकि जो देवताओं की भाषा है अथवा देवताओं का जो एक मार्ग है, उस ज्ञान को ले करके पुरोहित उस

बालक को उच्चारण करता है। जब केशों का नोचन करता है। परिणाम क्या? बेटा! मैं आज इस विचार को देने के लिए नहीं आया हूँ। विचार केवल यह देने के लिए माता पार्वती का चिन्तन कितना ऊर्ध्वा में रहा है। इस सम्बन्ध में मानो वह नोचन करती रहती है। इसीलिए केशों में बालक के माता अपने श्वासों की गति देती रहती है। मानो देखो, ब्रह्मरन्ध्र में जब गति देती रहती है तो उसके श्वासों के जो परमाणु हैं, वह उन परमाणुओं को जागरूक भी करते रहते हैं। हमारे यहाँ नोचन संस्कार के पश्चात् एक जो संस्कार है जिसको उपनयन संस्कार भी कहते है। उपनयन, वेदारम्भ यह संस्कार सब प्रतिभा में रहते हैं।

तेज के तीन प्रकार

परिणाम क्या है ऋषि मुनियों ने मुनिवरों! देखो, प्रभु ने इस संसार को रचा, संसार को रचते समय स्वयं प्रभु तपा है और तपने के पश्चात् तीन तेज इस संसार में, इस भू मण्डल में, इस ब्रह्माण्ड में, इस प्रभु! की रचना में तीन प्रकार के तेज कहलाते हैं। एक तेज द्यौ बन जाता है। एक तेज मेरे प्यारे! वायु बन जाता है, तीसरा तेज अग्नि बन जाता है जो लौकिक अग्नि कहलाती है। यह अग्नि लौकिक है, वायु परमाणुओं को ले करके गति करता है। और द्यौ मण्डल में उन परमाणुओं की स्थिरता हो जाती है। मेरे प्यारे! वह प्रभु! का तेज है उस प्रभु! के तेज के आधार पर मानव का भी अपने तेज को तेजस्वी बनाना चाहिए। हे मातेश्वरी! तू सौभाग्यशाली है जब तू अपने बालक को प्राण के द्वारा उसके केशों में अपने श्वास की तरंगें फैला देती है, मानो परणित कर देती है।

माता से बाल्य

मुझे स्मरण आता रहता है, मैं जब एक समय रोहिणी केतु ऋषि के द्वार पर हम पहुंचे। रोहिणी केतु ऋषि के यहाँ माता बालक के, केशों में अपने श्वासों की तरंगें फैला रही थी। उस समय मैंने प्रश्न किया कि हे देवी! यह तुम क्या कर रही हो? ऋषि पत्नी, उन्होंने कहा, ऋषिवर आइए मैं अपने बालक के जो मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है इसके

ऊपर मैंने तप किया है। बारह वर्ष का तप करने के मैंने करने के पश्चात मैं इस सन्तान की माता बनी हूँ परन्तु मेरा कर्त्तव्य है कि ममत्वाणी ब्रह्मणे मानो मेरा कर्तव्य है क्या मैं माता बन करके अपने प्राण की जो प्राण गति कर रहा है, अपान से आता है, हृदय में हो करके आता है, हृदय में प्राण की प्रतिष्ठा है इसीलिए मैं अपने हृदय के परमाणु बालक के मस्तिष्क में प्रवेश करना चाहती हूँ। मेरे प्यारे! माता के कितने ऊँचे उद्गार होते हैं। माता का हृदय मानो कितना महत्वदायक होता है बालक के लिए। परन्तु जब माता इस विद्या को जानती है, जानती हुई माता ही इस बालक को ऊँचा बना सकती है।

परिणाम क्या? मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया क्या मानव कितना विज्ञानमयी बन करके परन्तु देखो, माता पार्वती ने यह कहा कि हमारे ऋषि मुनियों ने विधान बनाते हुए मानव के सोलह संस्कारो का निर्णीत किया क्योंकि षोडश कला हमारे यहाँ, परम्परागतों से मानी है षोडश कलाएं, षोडश ही संस्कार कहलाते हैं। परन्तु देखो, इस षोडश संस्कारां में एक नोचन संस्कार होता है। परन्तु जब मानो देखो, उसके धातु के द्वारा उसके केशों को शरीर से दूरी किया जाता है उस समय बालक के अंगम् बृहि मस्तिष्कों में मेरे प्यारे! एक महानत्ता की तरंग उत्पन्न होती रहती हैं। वह एक एक केश के नीचे, एक रोहिणी प्राणकेतु केश कहलाया जाता है जो ब्रह्मरन्ध्र के मध्य में रहता है परन्तु उस केश के नीचे बहत्तर हजार नाड़ियाँ गति करती रहती हैं जिन नाड़ियों का सम्बन्ध लोक लोकान्तरों से होता है। मेरे प्यारे! ऐसे ही उसके ब्रह्मरन्ध्र के निचले भाग में एक घ्राणतव होता है जिससे मानव योग में त्राटक करता है। त्राटक करता हुआ हुआ परन्तु उस त्राटक को जान करके त्याग देता है। त्याग करके वह आध्यात्मिकवेत्ता बन जाता है। मेरे प्यारे! जिज्ञासुओं में परणित होता है।

आज मैं इस सम्बन्ध में क्यों चला गया हूँ? मुझे प्रतीत नहीं मैं क्यों चला गया? परन्तु वेद का मन्त्र भी एक ऐसा आ रहा था। विचार विनिमय क्या? क्या आज मैं बेटा! तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि माता के गर्भ से ले करके बालक के शरीर को त्यागने तक यह षोडश संस्कार हमारे ऋषि मुनियों ने आदि ब्रह्मा ने इसको निर्माणित

किया। यह कहाँ से इनका निकास होता है? इन सूत्रों को निकास कहाँ से हुआ? यह षोडश संस्कार हैं, ये सूत्र कहलाते हैं एक मनके षोडश सूत्र हैं परन्तु यह कहाँ से उत्पन्न हुए?

सोलह संस्कारों का आधार

मेरे प्यारे! जब आदि ब्रह्मा हुए तो ब्रह्मा जी के द्वारा भगवान शिव पहुंचे, और महाराजा शिव ने यह आराधना की कि प्रभु! आप षोडश संस्कारों का निकास कीजिए। तो महाराजा ब्रह्मा ने कहा कि मैं इसको नहीं निकास सकता। उन्होंने कहा तो मैं नृत्य करता हूँ और मैं नृत्य करता हुआ उसके पश्चात तुम उसको जानने की इच्छा करो। मेरे प्यारे! भगवान शिव ने उस समय नटवर बनकर के, उन्होंने दण्डवत् नृत्य किया। दण्डवत् जब नृत्य किया तो उनके यहाँ, एक उनकी भुजाओं में एक गति थी। किस प्रकार की एक अभ्राहत गति थी परन्तु जो गति थी वह गति ब्रह्मा ने जान ली और ब्रह्मा ने उस गति को जानने के पश्चात् वह मेरे प्यारे! ब्रह्मा समाधिष्ट हो गए, और समाधिष्ट होकर के मेरे प्यारे! देखो, यहाँ एक ग्रहा कृति श्रद्धा चक्राणि ग्रता् मेरे प्यारे! देखो, वह गति आभा में रमण करने लगी। तो ब्रह्मा जी ने मानो एक ब्रह्मरन्ध्र के निचले भाग में कुछ नाड़ियों में मानो गति हुई और वह गति सोलह नाड़ियाँ होती हैं जो एक आभा में रमण करती हैं। परन्तु उनमें जो गति हुई जैसे समाधिष्ठों में प्राणायाम करने वाले की नासिका के ऊपरले भाग में पिंगला, इंगला, सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ अपनी गति करने लगती हैं और जब ब्रह्मरन्ध्र में एक हो करके, ये त्रिवेणी बन करके जब यह गति करती हैं तो एक एक कृतिका होती है और वह कृतिका वह जब गति करती है तो जो सोलह नाड़ियाँ हैं मानो उनमें गति हो जाती है और गति होने के पश्चात् मेरे प्यारे! देखो, एक एक नाड़ी में से, एक एक शब्द उत्पन्न होता है जिसको योगीजन जानते हैं। मेरे प्यारे! वह ब्रह्मा ने लेखनियाँ बद्ध कीं। और बद्ध करने के पश्चात् उस अनुभव को लो करके सोलह संस्कार मेरे प्यारे! ब्रह्मरन्ध्र से उत्पन्न होते हैं।

इसीलिए हमारे ऋषियों ने कहा कि बालक का नोचन होना चाहिए। परन्तु नोचन होने

के पश्चात् इतना बुद्धिमान आचार्य होना चाहिए। जिससे अपने हृदय की वार्त्ता, मानो हृदय की तरंगें, बालक के हृदय में प्रवेश कर जाएं। मानो देखो, अपनी तरंगे हृदय की तरंगे बालक के हृदय में जब तक प्रवेश नहीं होती मानो देखो, वह अभीत कहलाता है। परन्तु उस संस्कार को हमारे यहाँ नोचन कहते हैं। तो मेरे प्यारे! मैं आज तुम्हें नोचन की यह तो बड़ा विज्ञान है। मैं इस विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूँ।

माता पार्वती ने ब्रह्मचारी कवन्धी और रेवक मुनि से यह वार्त्ता प्रगट करायी। उन्होंने कहा कि यह आभा सब परम्परागतों से मानवीय जीवन की आभा कहलाती है। इसको जानने के पश्चात् मानव आभा में रमण करता है। विज्ञान में जाने का प्रयास करता है। मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा तो प्रगट करने नहीं आया हूँ। महर्षि रेवक मुनि और कवन्धी दोनों गणेश जी को ले करके तो मेरे प्यारे! देखो, आभा में मेरे पुत्र ने एक समय मुझे वर्णन कराया कि सम्भूति जस्तं क्या इस महाराजा गणेश का मानो यह जो वाहन है यह वाहन लोकों में जाने का है परन्तु आधुनिक काल में, इस आधुनिक जगत में यह कहते हैं कि एक मानव, एक पृथ्वी पर रेंगने वाला प्राणी है जिसको हम चुंहेगत कहते हैं यह उस पर सवार हो करके परिक्रमा करता है माता पिता की परन्तु ऐसा नहीं चुंहेगत नाम का एक यन्त्र था जिस पर विद्यमान हो करके वह माता पिता की ही परिक्रमा नहीं, इस पृथ्वी की परिक्रमा करता और वह मंगल की परिक्रमा करता उसी यन्त्र से। मानो देखो, एक सौ बहत्तर लोकों के रमण करने वाला वाहन था। जो महाराजा गणेश जी ने अपनी भुजों से अनुसन्धान करके माता पार्वती और शिव की मानो सहायता ले करके और एक चहंगत नाम के ऋषि थे उनसे सहायता पा करके इन यन्त्रों का निर्माण किया था और यन्त्रों पर विद्यमान हो करके वह गति करते रहते थे। ऐसा बेटा! दृष्टिपात किया गया है।

आज का वाक् समाप्त आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या क्या प्रत्येक मानव अपने जीवन में महान बनना चाहता है। वह महान जब ही बनेगा जब उसके विचार महान् और पवित्र होंगे। विचारों में महानत्ता होगी। आहार और व्यवहारो की महानत्ता बनी रहेगी। जब तक मेरे प्यारे! देखो, वह मानव अपने में उद्धारक नहीं बनता।

वह सदैव आभा में रमण करने वाला प्राणी जब ही कहलाता है जब कि उसकी मानवीयता पवित्र होती है। चिन्तन करने का माध्यम महान होता है। यह है बेटा! आज का वाक्। समय मिलेगा, शेष चर्चाएं प्रगट करेंगे। ओ३म् दधि माहाहं आभ्यां देवं गृहवन्धना आभ्यां दधि ओ३म् शन्ना इन्द्रश्चमा देवं आप्यां लोकाः३म्। अच्छा भगवन्! आनन्द मंगलं भवति लोका स्थान : पी 21, ग्रीन पार्क विस्तार समय : रात्रि 8.30 बजे

१८ 10 12 1981 पुष्प 39 कन्या याग

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला है। जितना भी संसार का ज्ञान और विज्ञान है वह मेरा देव विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है। सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान के काल तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। क्योंकि वह सीमा से रहित है। सीमा में आने वाला नहीं है। आज हम जब बेटा! इस ब्रह्माण्ड के ऊपर विचार विनिमय प्रारम्भ करने लगते हैं तो प्रायः हमें ऐसा दृष्टिपात आने लगता है कि उस मेरे देव का कितना अनुपम ब्रह्माण्ड है जिसके ऊपर विज्ञानवेत्ता अनुसन्धान करते रहते हैं। कोई नवीन अनुसन्धान नहीं कर पाता। क्योंकि परम्परागतों से ही, इस विज्ञान के ऊपर मानव उड़ान उड़ता, नाना लोक लोकान्तरों में जाना, जलों के ऊपर और अग्नि आभाओं को जानना मानवीय मस्तिष्कों में यह ज्ञान और विज्ञान रमण करता रहा है।

मेरे प्यारे! हमारे यहाँ महर्षि याज्ञवलक्य मुनि महाराज अपनी विज्ञानशाला में विराजमान होते रहे है और यह सदैव विज्ञान के ऊपर जहाँ उनका अनुसन्धान रहा है वहाँ आध्यात्मिकवाद में और मानवीय कर्म काण्ड में महान् विशेषज्ञ रहे हैं। मुझे उनका

जीवन जब स्मरण आने लगता है तो प्रायः हृदय गद्गद हो जाता है। वह ब्रह्मवेत्ता थे, विज्ञानवेत्ता थे। बेटा! एक समय महर्षि याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने सूर्य की परिक्रमा वाले एक यन्त्र का निर्माण किया था जिस यन्त्र में सूर्य की नाना प्रकार की किरणों को ले करके और उसमें जो धाराएं हैं उन नधाराओं को जानते हुए ऋषि ने वह यान निर्धारित किया जो सूर्य की परिक्रमा करता था। मुनिवरों! सूर्य की रश्मियों से भी वाहनों का गमन होता रहा और होता रहता है। जब मानव अनुसन्धान करता है अथवा विचार विनिमय करता ही रहता है तो मुनिवरों! तीव्र इच्छा होने पर मानव को उसमें सफलता प्राप्त हो जाती है। वह विज्ञान में इतने पारायण रहते थे कि वैज्ञानिकों को शिक्षा प्रदान करते रहते थे। ब्रह्मचारी कवन्धि, ब्रह्मचारी गार्गेपथ्य, ब्रह्मचारी रोहिणी केतु, ब्रह्मचारी स्वेणाकृत ऋषि महाराज, ब्रह्मचारी सोमकेतु, ब्रह्मचारी रोहवृणात, मेरे प्यारे! नाना वैज्ञानिक उनकी विज्ञानशाला में शिक्षा पाते रहे। परन्तु जहाँ वह विज्ञानवेत्ता इतने पारायण थे, जहाँ वह ब्रह्मवेत्ता थे, राजा जनक की सभा में बेटा! आत्मा परमात्मा की उड़ान उड़ते रहते थे। आत्मलोक की चर्चाएं करते रहते थे। आत्मा क्या है? आत्मा में जो ज्ञान की प्रतिभा है वह आत्मा का स्वाभाविक गुण माना गया है। ऋषि मुनियों ने बहुत अनुसन्धान किया इस सम्बन्ध में, जहाँ वह विज्ञानवेत्ता आध्यात्मिक विज्ञान, गृह रुद्रों की चर्चा करते रहे हैं वहाँ वह कन्या याग नाना प्रकार के यागों का चलन भी करते रहे हैं। महर्षि याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने जहाँ बेटा! नाना प्रकार के यागों का चलन किया है वहाँ जैसे गो मेध याग है, अश्व मेध याग है, अग्निष्टोम् याग है, वाजपेयी याग है, देवी याग है, विष्णु याग, रुद्र याग, ब्रह्मयाग, नाना प्रकार के यागों का उन्होंने वर्णन किया। परन्तु जहाँ नाना प्रकार के यागों का चलन किया है वहाँ बेटा! एक याग है जिसे अश्वमेध कहते हैं। वही मुनिवरों! अजयमेध कहा गया है। नाना प्रकार के यागों का चलन हमारे वैदिक साहित्य में प्रायः प्राप्त होता रहा है।

मेरे प्यारे! वहाँ यागों का चयन करते हुए महर्षि याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने एक कन्या याग का वर्णन किया है। नाना यागों में कन्या याग का भी अपने स्थान पर एक महत्व माना गया है। परन्तु कन्या कहते किसे हैं? और कन्या याग क्या है? वेद के ऋषियों ने

इसके ऊपर अनुसन्धान किया। वेद में आया कि कन्या याग होना चाहिए। वेद का ऋषि कहता है, मन्त्र आता है कि कन्या सबसे प्रथम देव लोक में रहती है। उसके पश्चात् कन्या पितर लोक में रहती है। उसके पश्चात् वह पति लोक को प्राप्त हो करके वहाँ याग करने का अधिकार प्राप्त होता है। ऐसा वेद का ऋषि कहता है बेटा! हम नहीं कहते। वेद का आचार्य कहता है। याज्ञवलक्य मुनि कह रहा है। वह कहता है कि कन्या प्रथम देवलोक में रहती है। बेटा! कन्या का जब बाल्यपन होता है, देवलोक के संरक्षण में होता है। देवता उसकी रक्षा करते हैं। देवता कौन हैं? देवलोक किसे कहते हैं? जहाँ देवता मानव की रक्षा करते हैं। मानव की रक्षा मानव ही नहीं कर रहा है। देवता उदसकी रक्षा करते हैं। जैसे कन्या के प्रथम जीवन में बेटा! देवता रक्षा करते हैं। वह नग्न है। न उसे वस्त्रों का ज्ञान रहता है। वह सदैव अपने में ब्रह्मवत् को प्राप्त होती रहती है। अपने में देववत को प्राप्त होती रहती है। उसकी देव प्रवृत्ति हो उसकी रक्षा करती रहती है। परन्तु द्वितीय लोक है पितर लोक बेटा! जब कन्या युवा होने लगती है। तो उसकी संरक्षणता पितर लोक कहलाता है। पितर उसे शिक्षित बनाते हैं। अहा! वह आचार्य को अपना पितर बना करके शिक्षा में महान् बना करती है। मुझे स्मरण आता रहा है बेटा! बहुत पुरातन काल में मनु वंश की चर्चा आती है। हमारे यहाँ एक माता मल्दालसा सतोयुग के काल में हुई। माता मल्दालसा को बाल्यकाल में पितर ने आचार्य कुल में प्रवेश कराया। क्योंकि आचार्य भी पितर होते हैं। आचार्य कुल में जब प्रवेश हुआ तो माता मल्दालसा का अध्ययन का विषय था। परमाणुवाद। कि मैं संसार में यदि गृहस्थ में जाऊगी तो मेरा क्या क्या कर्त्तव्य है? सदैव वह वेद की चर्चाएं जो वैदिक साहित्य में आती हैं उनको अध्ययन करती रहती थी। एक समय बेटा! माता मल्दालसा अध्ययन कर रही थी कि यदि मैं गृह में प्रवेश करूं और मेरे गर्भस्थल में बाल्य का अथवा पुत्र का जन्म हो तो, मैं इस संसार में तेरी आभा में जो मानव रमण कर रहा है, मान में, अपमान में इस समाज में जो अपने मानवीयता को व्यतीत करता है वह पशु तुल्य जीवन होता है। मैं यह चाहती हूँ मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मचरिष्यामि बाल्य हो, वह इस संसार से उपराम होना चाहिए। उसे विवेक होना चाहिए। मैं कैसे

अध्ययन शील बनूं और कैसे मेरा यह कर्म बने? बेटा! वेद में नाना प्रकार की विद्याएं आती हैं। उनको वह अध्ययन करने लगी। आयुर्वेद में उसकी पारायणता को दृष्टिपात करके महर्षियों ने बेटा! उसको धन्य धन्य कहा।

मुझे स्मरण है बेटा! एक समय जब माता मल्दालसा अध्ययन करती थी तो उनके विद्यालय में एक समारोह हुआ। उसमें नाना ऋषि, कुछ ब्रह्मवेत्ता, कुछ ब्रह्मजिज्ञासु भी विराजमान हुए। मुनिवरों! उस समारोह में माता मल्दालसा जब वार्त्ता प्रकट करने लगी तो माता मल्दालसा ने यह कहा कि मेरी इच्छा यह है, अब मैं पितरकाल में विद्यमान हूँ। मेरा जिस काल में पति लोक प्राप्त होगा, उस समय यह संसार को जानने के लिए मेरा यह निश्चय हुआ है कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला सन्तान इस संसार से उपराम होना चाहिए अथवा वह ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए। माता मल्दालसा उस समारोह में वार्त्ता प्रकट कर रही थी। यह उच्चारण कर रही थी, संसार में मेरी पुत्रियों को यह विचारना चाहिए कि कैसे अपने जीवन को व्यतीत करना है? त्याग और तपस्या से राष्ट्र और समाज को ऊचा बनाना है। इस समाज को ब्रह्म वेत्ता की आवश्यकता रहती है। यह समाज केवल द्रव्य से ही ऊचा नहीं बनता है। यह राष्ट्र है, जो समाज है, ऊचे ऊचे भवनों से ऊचा नहीं बनता है। यह उस काल में ऊचा बनता है जब कि ब्रह्मवेत्ता आचार्य होंगे और ब्रह्मचर्य वेत्ता आचार्य ही इस संसार को ऊचा बना सकते हैं। क्योंकि संसार में प्रत्येक स्थलियों पर विवेक की आवश्यकता रहती है। विवेक होना चाहिए। माता मल्दालसा यह समारोह में प्रकट कर रही थी। मेरे प्यारे! पितर जन आचार्यजन यह उच्चारण कर रहे थे कि हे देवी! जो यह वाक्य उच्चारण कर रही हो क्या यह समाज विवेकी पुरुषों से ही ऊचा बनता है? उन्होंने कहा अवश्य बनता है। विवेकी ी पुरुष राजा को मार्ग दर्शाते हैं। विवेकी पुरुष ही गृह को मार्ग दर्शाने वाले होते हैं। विवेकी पुरुष ही इस संसार में ऊची उड़ान उड़कर लोक लोकान्तरों की यात्रा करते हैं। विवेकी पुरुष ही आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता बन करके, आत्मा के समीप जा करके परमात्मा को प्राप्त करते हैं जहाँ अनन्तमयी प्रकाश को प्राप्त करके मानव अपने जीवन को ऊचा बनाता है। माता मल्दालसा की वार्त्ता को पान करने के पश्चात् ऋषि मुनि बेटा! मौन

हो गए। उन्होंने कहा धन्य है पुत्री! उन्होंने कहा न यही विवेकी पुरुष ही संसार में निर्भयता को प्राप्त होता है। मुझे स्मरण आता रहता है जब माता मल्दालसा अध्ययन किया करती थीं, उनके आसन पर सर्पराज आते, सिंह राज आते और उनके वेद मन्त्रों की ध्वनि को बेटा! वह श्रवण करते रहते थे। मेरे प्यारे! माता मल्दालसा ने कहा कि मैं यह चाहती हूँ कि मेरा जीवन महान् बने। मुझे स्मरण है माता मल्दालसा कहती थी कि मेरी माता सदैव अध्ययन करती रहती थी। वह वेदों की ध्वनि गाती थी वेद के मन्त्रों की ध्वनि जब मानव जटा पाठ में गाता है, घण पाठ गाता है, उदात्त पाठ, माला पाठ में जब वेदों की ध्वनि उच्चारण होती है तो विवेकी जो पुरुष होता है, मानव होता है, मेरे प्यारे! सिंह भी उसके चरणों में ओत प्रोत हो जाता है। परिणाम क्या? मेरे प्यारे! निर्भयता की आवश्यकता है। निर्भयता संसार को ऊचा बनाती है। निर्भयता ही मानव को राष्ट्र से उपराम कर देता है। निर्भयता ही एकता के सूत्र में मानव को कटिबद्ध कर देता है। निर्भयता ही मानव को देवलोक में पहुंचा देता है। निर्भयता ही मेरे प्यारे! नाना लोक लोकान्तरों की यात्रा करने लगता है। मैं अपना विचार देता हुआ दूरी न चला जाऊ। समारोह समाप्त हो गया।

एक समय वह अपने आचार्य के समीप विद्यमान हो गईं और आचार्य से कहा मैं अपने जीवन में गृह में प्रवेश करना नहीं चाहता मेरे प्यारे! आचार्य पोलुक ऋषि महाराज ने कहा, हे पुत्री! जैसी तुम्हारी इच्छा हो। परन्तु माता मन्दालसा जब युवा और हुईं तो एक समय पुनः अपने आचार्य के चरणों में विद्यमान हो गईं और उन्होंने कहा कि यदि मैं गृह में प्रवेश करूं तो मेरी स्वेच्छा से ही सन्तान का जन्म होना चाहिए। क्योंकि पितर लोक से जब मैं पति लोक को प्राप्त होऊगी तो मेरा जीवन महान् होना चाहिए और मैं चाहती हूँ मेरी इच्छा से सन्तान का जन्म हो और पांच वर्ष तक मेरी ही शिक्षा होनी चाहिए। मेरे प्यारे! यही हुआ। मंगलम् प्रवेः ऋषिः ने कहा यही होगा। उनकी चर्चाओं को श्रवण करके मल्दालसा का जीवन व्यापक बन गया। राजा महाराज सब उनके विचारों को श्रवण करने जाते थे। कुछ समय के पश्चात् मनु वंश में एक राजा हुए स्वनत आनन्तु मनु महाराज और उसके पिता राज दे करके संयास को प्राप्त हो

गए। परन्तु वह राजा बने तो उन्होंने विचारा कि अब संस्कार भी होना चाहिए। उन्होंनें बेटा! पोलक ऋषि महाराज से यह प्रार्थना की कि यह तुम्हारे विद्यालय में कन्या जो शिक्षा पाती है इनका संस्कार होना चाहिए। उन्होंने कहा, तुम मल्दालसा से प्रश्न करो। राजा कन्या के द्वार पर पहुंचे। उन्होंने कहा, हे देवी! मैं अपना संस्कार और अपने गृह को पवित्र बनाना चाहता हूँ तुम्हारे कर कमलों द्वारा। मेरे प्यारे! मल्दालसा ने कहा, हे राजन्! मुझे स्वीकार है। परन्तु मेरी कुछ वार्त्ताएं हैं मैं संकल्पबद्ध हूँ और संकल्पबद्ध ही रहूँगी। राजा ने कहा देवी! । जो तुम्हारी इच्छा है। तो उन्होंने कहा, मैं जब गृह में प्रवेश करूं तो मेरी स्वेच्छा से सन्तान का जन्म हो। राजा ने उस वाक्य को स्वीकार किया। उन्होंने कहा पांच वर्ष तक मेरी शिक्षा होनी चाहिए। उस बाल्य को। उन्होंने कहा हे देवी! जैसी तुम्हारी इच्छा हो। यह वाक्य स्वीकार कर लिए। राजा और मल्दालसा ऋषि के द्वार पर पहुंचे और ऋषि से कहा हम दोनों ने विचारों को कटिबद्ध कर लिया है। संकल्पमय बना लिया है। मेरे प्यारे! संकल्पमय बनाते हुए दोनों का संस्कार हुआ। संस्कार होने के पश्चात् माता मल्दालसा और ब्रहे प्रणस्ततम् धनः अप्रेति देवः दोनों मनु वंश में जा पहुंचे। अयोध्या उस समय राष्ट्र था। हमारे यहाँ ऐसा माना गया है कि भगवान मनु ने सबसे प्रथम अयोध्यापुरी का निर्माण किया। क्योंकि यह जो अयोध्या थी इससे समुद्र कुछ ही दूरी पर था समुद्रों की आभा में उसको निहारते रहते थे और अष्ठा चक्र नौ द्वार जैसे मानव की पुरी का निर्माण प्रभु ने किया जिसमें आठ चक्र हैं, नौ द्वार हैं। मेरे प्यारे! ऐसे ही अयोध्यापुरी का निर्माण किसी काल में स्वयंभाव मनु ने किया था।

मेरे प्यारे! जब मल्दालसा मनु कुता में आ गई तो हर्ष ध्वनियां होने लगीं राष्ट्र सर्वत्र प्रसन्न हो गया। कुछ समय के पश्चात् माता मल्दालसा के गर्भ स्थल में एक आत्मा का प्रवेश हो गया। तो माता मल्दालसा एकान्त स्थली पर विद्यमान है। गायत्री छन्दों का पठन पाठन है और यह कहा करती थी आत्मा मेरे गर्भ स्थल में तेरा प्रवेश हुआ है। तू आत्मा है, ज्ञान स्वरूप है, ज्ञान और प्रयत्न यही तो मेरा गहना है। यह वाक्य जब भी एकान्त स्थली में विद्यमान होती सर्वदा अध्ययन करती रहती। ऐसा मुझे स्मरण है पुत्रो!

ऐसा ऋषियों ने वर्णन कराया है। उनके साहित्य में भी प्राप्त होता है। जब बाल्य माता के गर्भ से पृथक हुआ तो तीन शब्दों का प्रतिपादन करती बुद्धोसि, शुद्धोसि, निरंजनोसी यह कहा करती थी माता मल्दालसा लोरियों का पान कराती रहती और यह कहा करती हे आत्मा! तू बुद्ध है, शुद्ध है, तू निरंजन है। बुद्ध कहते हैं बुद्धिमान को, तू शुद्ध है और अखण्ड रहने वाली तू आत्मा है। तेरा निधन भी नहीं होता। हे आत्मा! तू महान् है। इन तीन शब्दों की व्याख्या करती रनहती। क्योंकि यह तीन ही शब्द हैं ज्ञान की प्रतिभा में क्योंकि ज्ञान की आभा में और ज्ञान की भाषा में यह तीन ही शब्द प्रतिभासिद्ध माने गएं हैं। निरंजनोकृताम् देवाः वसुः कर्णम् ब्रह्मणेः लोकाः ब्रह्मलोकश्चताम् देवम् धनः अप्रति देवः घृति अस्तोः ऐसा कहा करते थे ऋषिवर। मेरे प्यारे! माता मल्दालसा ऋषि के शब्दां की पुनरोक्ति करती रहती और यह कहा करती हे आत्मा! तू सदैव विवेक में रमण करने वाला है। तू विवेकी बन करके, इस संसार का उत्थान करने वाला बन। इस प्रकार की आभा सदैव प्रकट करती रहती थी। विचार विनिमय क्या? बेटा! पांच वर्ष का जब ब्रह्मचारी हुआ तो नमस्कार करके बोला हे मातेः। अब हम चले। उन्होंने कहा, कहाँ? हे माता! हम तपस्या करने जा रहे हैं क्योंकि ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा तो हमने प्राप्त कर ली है। अब हम तपस्वी बनना चाहते हैं। माता पुलकित हो गयी। आनन्दित होकर यह कहा धन्य है हे बालक! अब मेरा सौभाग्य महान् बन गया है। मेरी जो इच्छा थी वह बन गई है। तुम तपस्वी बनो। माता मल्दालसा के तीन सन्तान इसी प्रकार की हुईं जिनका नाम प्रवाण, तिलक और दालम्य था। यह तीन ऋषि माता मल्दालसा ने स्वेच्छा से उत्पन्न किए। जिस माता के त्याग और तप की प्रतिभा रही। प्रवाहण और दालभ्य सतोयुग के काल में महान् ब्रह्मवेत्ता कहलाए गए।

विचार क्या? मेरे प्यारे! इसको कन्या याग कहते हैं। याज्ञवलक्य मुनि कहते हैं, कन्या सबसे प्रथम देवलोक में रहती है। देवता उसका पालन करते हैं। उसके पश्चात् वह पितर लोकां को प्राप्त होती है। पितर लोकों में जाने के पश्चात् वह याग करती है विद्या का। विद्या का अध्ययन करना, ब्रह्मचरिष्यामि अपने ब्रह्मचर्य को देवलोक में पहुंचाना यह माता वीरांगना का कर्त्तव्य बन जाता है। संस्कार होने के पश्चात् वह कन्या पति लोक

को प्राप्त होती है और पति लोक को प्राप्त हो करके वह याग करती है। हमारे यहाँ वेद के ऋषि कहते हैं सन्तान को उपार्जन करने का नाम याग माना है। हमें याग करना है। संसार में जितना भी जीवन का क्रिया कलाप है उस सर्वत्रता का नाम याग माना गया है। आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज का विचार विनिमय क्या? कि हमें बेटा! अपने जीवन को महान् बनाना है। हमें अपने जीवन को ऊर्ध्वा में पहुंचाना है क्योंकि मेरे प्यारे! पतिलोकाम् ब्रह्मः, पति लोक को प्राप्त हो करके ब्रह्म का चिन्तन करना है और याग करना है। हमारे ऋषि मुनियों ने ऊची ऊची उड़ान उड़ी है। एक ही उड़ान नहीं। नाना प्रकार की उड़ान का वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहा है।

मेरे प्यारे! कन्या याग का वर्णन, पुत्र सन्तान उत्पन्न करने का नाम जहाँ याग है वहाँ वेद में मन्त्र आते हैं कि जब मुनिवरों! जालपी ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान हैं। यहाँ गार्गे पथ्य ऋषि एक समय उनके द्वार पर आए। गार्गे ने कहा, महाराज! आत्मा का लोक क्या है? उन्होंने कहा आत्मा का लोक पञ्च महाभूत माना गया है। पञ्च महाभूत की स्थली में आत्मा रमण करने वाला है। पञ्च महाभूतों की गुफा में रहने वाला है। मेरे प्यारे! जैसे कन्या का लोक उसका पितरलोक है, पतिलोक है देवलोक है, उसी प्रकार आत्मा का लोक हमारे यहाँ पञ्च महाभूत माना गया है। उस आत्मा का कर्म क्या है? ऋषि कहता है आत्मा का कर्म याग माना गया है। याग होना चाहिए। मेरे प्यारे! परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि के प्रारम्भ में इस संसार को रचा तो एक प्रकार की यज्ञशाला के रूप में इस संसार का निर्माण किया। मेरे प्यारे! प्रभु ने। आत्मा स्वयं उद्गाता और ब्रह्मा बन करके यज्ञमान बन करके संसार की रचना हो गयी। आज यह जो संसार हमें दृष्टिपात आ रहा है यह संसार, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों वाला जो जगत है, नाना पृथ्वियों वाला जो जगत है बेटा! इस ब्रह्माण्ड की रचना एक यज्ञशाला के सदृश्य उत्पन्न हो गयी। पृथ्वी मानव शरीर को एक प्रकार की यज्ञशाला के रूप में परणित किया है।

बेटा! आज का विचार क्या? हमें अपने उद्देश्यों को जानना चाहिए। मानव के जीवन

का उद्देश्य विवेक है, महानता है, ज्ञान है और ज्ञान के पश्चात् विवेक से अपने जीवन को व्यतीत करें। आज के विचार वर्णन करने का अभिप्राय क्या? मुनिवरों! मैं माता मल्दालसा के जीवन की गाथाएं वर्णन कर रहा था। उनका जीवन कितना महान् था। इसी प्रकार मेरी पुत्रियों को सदैव अपने जीवन को महान् बनाने के लिए ज्ञान और विवेक की आवश्यकता है। त्याग और तपस्या में अपने जीवन को जितना व्यतीत किया जाता है उतनी ही मुनिवरों! ज्ञान की आभा उत्पन्न होती रहती है। यह है आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय कि नाना प्रकार के यागों का चलन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहा है जैसे कन्या याग है ऐसे ही गो मेध याग है, अजय मेध याग है और भी नाना याग जैसे अग्निष्टोम याग, वाजपेयी याग नाना प्रकार के यागों का चयन महर्षि याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने किया है। स्थान : अग्रवाल धर्मशाला, त्रिनगर। समय : दोपहर 3 बजे।

१९ 11 12 1981 पुष्प 39 गृहस्थ को स्वर्ग कैसे बना सकते हैं?

बेटा! हमने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि हमारे ऋषि मुनि ज्ञान और विज्ञान को ले करके अध्ययन करना प्रारम्भ करते थे। मुझे स्मरण आता रहता है भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला में बेटा! एक परमाणु का जब विभाजन किया गया तो एक ही परमाणु में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का चित्रण ऋषि मुनिओं को दृष्टिपात होता रहा है। मेरे प्यारे! एक ही परमाणु में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का चित्रण होना यह एक सर्वत्र विज्ञान की विवेचना है। और भी विज्ञान के ऊपर जब अध्ययन करना आरम्भ किया तो बेटा! यह संसार को सूक्ष्म से पिण्ड में और यह पिण्ड इस ब्रह्माण्ड में बेटा! ओत प्रोत होता रहा है। मुझे स्मरण आता रहा है ब्रह्मचारी कवन्धि ने एक समय यह निर्णय किया कि माता के गर्भ स्थल में केवल एक बिन्दु से मानव के शरीर का निर्माण होता है परन्तु उसमें असंख्य चित्रण एक एक परमाणु में दृष्टिपात होते रहते हैं। तो आज बेटा! मैं तुम्हें विज्ञान के ऊपर विवेचना करने नहीं आया हूँ। आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है? हम उस परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए हमारे यहाँ प्रारम्भ से ही यह संसार मानव की आभा में परणित होता रहा है। मुझे स्मरण आता रहा है बेटा! जब

पति पत्नी एकान्त स्थली पर विद्यमान होते हैं तो उस समय लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ी जाती है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज माता अरूणधती जब एकान्त स्थली पर विद्यमान होते तो लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ते रहे हैं। एक समय माता अरूणधती ने यह प्रश्न किया ऋषि से कि महाराज! यह जो अन्तरिक्ष में अरूणधती मण्डल है और अरूणधती मण्डल के साथ जो वशिष्ठ मण्डल कहलाता है इसका मानव के जीवन से क्या सम्बन्ध है? तो मेरे पुत्रो! हमारे ऋषि मुनि जहाँ ब्रह्मवेत्ता रहे हैं वहाँ उनकी विज्ञान में ऊर्ध्वा गति रही है। जहाँ विज्ञान और अब्रतम् ब्रह्मवेत्ता दोनों का जो समन्वय रहता है यह समाज यह मानव तब ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता है। एक के बिना दूसरा अपंगता में परणित होता रहा है।

जब माता अरूणधती ने यह प्रश्न किया तो महर्षि वशिष्ठ कहते हैं कि हे देवी! यह जो अरूणधती और वशिष्ठ मण्डल हैं यह ध्रुव मण्डल से भी ऊर्ध्वागति में रमण करने वाले हैं। अरूणधती मण्डल और वशिष्ठ दोनों की पृथ्वी पर जब छाया आती है तो जिस माता के गर्भस्थल में अष्ट माह का गर्भास्थ होता है तो इनकी विशेष छाया पहुंचती है और इस छाया के होने के कारण उनका ब्रह्मरन्ध्र से समन्वय रहता है। तो बालक जो माता के गर्भ स्थल में पनप रहा है। अरूणधती और वशिष्ठ दोनों मण्डलों की छाया आ रही है तो मुनिवरों! वह जो आत्मा उस बाल्य की स्थलियों में रमण कर रही है उसका समन्वय बाहरीय चित्त से रहता है। इसीलिए उसका बाहरीय जगत से आन्तरिक जगत दोनों का समन्नवय होता रहता है वशिष्ठ मुनि कहते हैं कि संसार में जिस माता के गर्भस्थल में अष्ठ माह में सन्तान का जन्म होता है वह संसार में जीवित नहीं रहती। उसके मूल में वशिष्ठ और अरूणधती दोनों की छाया रहती है। तो मेरे पुत्रो! मैं इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। केवल विचार क्या? माता पिता, पति पति एकान्त स्थली में लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ते रहे हैं। आज कोई नवीन वाक्य नहीं है। परन्तु वर्तमान काल तक जब से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ क्योंकि प्रत्येक मानव, जो माता पिता यह चाहते हैं कि हमारा गृह स्वर्ग बनता चला जाए तो बेटा! स्वर्ग उस काल में बनता है जब माता पिता के ऊर्ध्वा गति वाले विचार होते हैं। क्योंकि वह

विचार विनिमय करते रहते हैं। इन्हीं विचारों को ले करके कल माता मल्दालसा की चर्चा आ रही थी। माता मल्दालसा जो विदुषी कहलाती है मेरी पुत्री जो उड़ान उड़ने वाली महान् होती हैं। ब्रह्मचरिष्यामि ब्रह्म के ऊपर अपनी विवेचना देने वाली होती हैं। वह सदैव अपनी अपनी आभा में रमण करती रही है। प्रवाण, तिलक और दालम्य (तीनों महान् ऋषि) भयंकर वन में तपस्या जब करने लगे उस समय माता मल्दालसा की यह इच्छा हुई कि वह बाल्य मेरे गर्भ से जन्म जिन्होंने लिया है, वह वास्तव में तपस्वी बने हैं या वनचर, वैसे ही वनों में अपने जीवन को व्यतीत कर रहे हैं। तो मुझे स्मरण है माता मल्दालसा ने अपने आसन से गमन किया। भ्रमण करते हुए वह वनों में जा पहुंची, जहाँ वह बालक तपस्या कर रहे थे। एक पंक्ति में विद्यमान हो करके, तपस्वी बन करके प्रभु से ध्यानावस्थित हो रहे थे प्रभु के आँगन में। माता मल्दालसा जैसे ही उनके द्वार पर पहुंची, कुछ समय पश्चात वह उपरामता को प्राप्त हुए। माता मल्दालसा के चरणों को स्पर्श किया और माता से कहा, हे मातेश्वरी! तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? उन्होंने कहा, हे पुत्रश्चयताम ब्रहेः। मेरी इच्छा यह बनी कि मैं अपने बाल्यों को दृष्टिपात करना चाहती हूँ। वह बाल्य उत्तर देते हैं हे माता! तेरे बाल्यपन का उद्देश्य पूर्ण हो गया है। अब हम परमात्मा की गोद में हैं। क्योंकि परमात्मा के राष्ट्र से हम दू नहीं हो सकते। हम माता तेरे से दूरी हो सकते हैं परन्तु प्रभु जो सर्वत्र माता पिता के रूप में गमन कर रहा है, एक एक परमाणु मात्र में वह गति कर रहा है हम उस राष्ट्र से दूरी नहीं हो सकते। हे मातेश्वरी। आपका कर्त्तव्य पूर्ण हो गया है। अब आप अपने आसन पर जाइए क्योंकि आपने हमें इस योग्य बनाया है। आपने हमारा पालन किया है। अब प्रभ के राष्ट्र में हम विद्यमान हैं क्योंकि वह हमारा पालन करने वाला है। माता मल्दालसा इन वाक्यों को श्रवण करके हृदय में आनन्दवत होने लगी और कहा धन्य है हे बाल्य! मैं यही चाहती थी कि तुम्हारे में इतना ज्ञान हो, प्रभु में तुम्हें इतना अटूट विश्वास होना चाहिए। यह जो संसार दृष्टिपात आ रहा है इससे तुम्हारा जीवन उपरामता को प्राप्त होना चाहिए।

परन्तु माता मल्दालसा ने यह कहा हे बालक तुम तपस्या क्या करते हो? अब जो मैंने

तुम्हें दृष्टिपात किया कि तुम ध्यानावस्थित हो रहे थे किस वस्तु में तुम ध्यानावस्थित होते हो? वह कौन सी वस्तु है जिसमें ध्यानावस्थित होने से तुम्हारे मन की प्रवृत्ति एक महत्ता में परणित हो जाती है? उनमें से ज्येष्ठ बाल्य प्रवाहण ने कहा, हे माता! हम जो ध्यानावस्थत होते हैं और उन दोनों वस्तुओं को जो विभक्त हो गई हैं हम उनको एक सूत्र में लाना चाहते हैं। वह दोनों वस्तु कौन सी हैं? जो विभक्त हो गई हैं और ध्यानावस्थित होने वाले ध्यान में उन दोनों को एक सूत्र में लाते हैं। वेद का ऋषि कहता है, प्रवाहण ने कहा, वह बाल्य कहता है माता से, हे माता! हम ध्यानावस्थित होते हैं, जिन वस्तुओं का विभाजन हो गया है। विभक्त करने वाली और विभाजन होने वाली दो ही प्रतिक्रियाएं सर्वत्र ब्रह्माण्ड में होती रहती हैं। आज जब हम दृष्टिपात करते हैं माता के गर्भ में, हम वसुन्धरा के गर्भ में प्रवेश करते हैं जो वसुन्धरा नाम पृथ्वी का है जब पृथ्वी के गर्भ में हम प्रवेश करते हैं तो मन और प्राण हमें दृष्टिपात होते हैं जो सामान्य प्राण इस पृथ्वी के गर्भ में रहता है जो प्राण अप्रतम तेज के द्वारा, सूर्य की नाना किरणों के द्वारा पदार्थों को निर्माणित करता रहता है कोई रस प्रदान कर रहा है। कोई रस को विभक्त कर रहाह ै तो वह मन और प्राण ही मुझे दृष्टिपात आते हैं। मेरे प्यारे! ऋषि कहता है कि इसी प्रकार हमारे मानव शरीर में यह जो नाना प्रकार की विभक्त क्रियाएं दृष्टिपात आती हैं, कहीं माता के रूप में, कहीं पिता के रूप में, कहीं पुत्री के रूप में, कहीं पत्नी के रूप में, यह जो संसार विभक्त होता हुआ, जो नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में गति करने वाली प्रतिक्रिया हो रही हैं, हे मातेश्वरी! जब हम यहाँ से ध्यानावस्थित हो करके इन लोक लोकान्तरों को यात्रा करते हैं तो उस समय हमें प्रत्येक लोक में एक सी क्रिया दृष्टिपात होती हैं। यह जो संसार है यह जो जगत है यह दो वस्तुओं से विभक्त होने वाले तत्त्वों के यह ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आ रहा है। हे मातेश्वरी! हम जो अपने में ध्यानावस्थित होते हैं तो हम इस मानव के शरीर में दो वस्तुओं का विभाजन हो गया है। एक मन है और दूसरे को हम प्राण कहते हैं इन दोनों रूपों में यह शरीर दृष्टिपात आता है। जब इस मानव शरीर की प्रतिक्रिया मन के साथ होती है तो यह प्रकृतिवाद एक महत्ता में दृष्टिपात आता है जब किसी मानव की

प्रवृत्तियां प्राण के साथ होती हैं तो एक सूत्र में दृष्टिपात आता है। हम उसी सूत्र में सर्वत्रता में पिरोए हुए हैं जो माला में एक धागा होता है और वह धागा उस माला को स्थिर किए रहता है क्योंकि माला में यदि धागा नहीं होगा तो यह मनके बिखर जाते हैं। इस प्रकार हे मातेश्वरी! यह जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है। नाना प्रकार की निहारिकाओं वाला, नाना लोक लोकान्तरों वाला जो ब्रह्माण्ड है, एक एक आकाश गंगा में अनन्त सूर्य दृष्टिपात आते हैं, एक ही आकाश गंगा में अनन्त ध्रुव मण्डल दृष्टिपात आते हैं, बृहस्पति दृष्टिपात आते हैं एक एक लोक को तपाने के लिए बृहत्तर बहत्तर सूर्य दृष्टिपात आते हैं। आज हम उस परमात्मा की जो सृष्टि है उसको अपने में तुलनात्मक दृष्टिपात नहीं कर सकते। हम परिचय देते रहते हैं, विचारते रहते हैं। तो प्रवाहण ने कहा हे माता! आप क्या आश्चर्य करोगी जब ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करने के लिए हम तत्पर होते हैं एक सूत्र दृष्टिपात आता है और उसी सूत्र में नाना लोक लोकान्तर क्या? यह जितनी निहारिकाएं हमें दृष्टिपात आती हैं, एक सूत्र में पिरोई हुई दृष्टिपात आती हैं और वह जो सूत्र है उसी सूत्र में हमारा यह जो मानव शरीर है, नाना अंग हैं यह जो निर्माणित हो रहे हैं वह भी एक सूत्र में दृष्टिपात आते हैं। जैसे माला है, माला में मनके हैं, मनके एक सूत्र में पिरोए होने से यह माला कहलाती है इसी प्रकार यह नाना निहारिकाएं, नाना पृथ्वियां एक सूत्र में पिरोने से यह सृष्टि दृष्टिपात आती है। यह सृष्टि है, यह माला है, इसी प्रकार हमारा यह मानव शरीर एक प्राण सूत्र में पिरोया हुआ है हे मातेश्वरी! यह जो प्राणसूत्र है इस प्राण सूत्र को हम जान करके यह जो बिखरे हुए मनके हैं उसको हम प्राण रूपी सूत्र में पिरोने का प्रयास करते हैं। वही हम ध्यान में दृष्टिपात करते हैं।

माता मल्दालसा ने अपने को धन्य स्वीकार किया और यह कहा कि धन्य है हे बालक! हे ब्रह्मचरिष्यामि, तुम ब्रह्मचर्य के क्या अर्थ स्वीकार करते हो? मेरे प्यारे! प्रवाहण ने शिलभ्य से कहा, हे शिलभ्य! इसका उत्तर तुम दो। मुनिवरों! ब्रह्मचारी शिलभ्य ने कहा, हे माता! ब्रह्मचरिष्यामि ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को, चरि कहते हैं प्रकृति को। ब्रह्म और चरि दो ही शब्द संसार में हैं। ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वागति बनाने वाला देवता बनता है, ध्रुव

गति बनाने वाला पितर यागी बनता है, वह पितर याग कर रहा है। वहाँ सन्तान का नामो उपार्जन होता है और वहाँ देवताओं की सभा में जाना होता है। तो इसीलिए ब्रह्मचर्य के दो ही अर्थ हैं। चरि कहते हैं प्रकृति को और ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को। ब्रह्म और चरि दोनों का समन्वय होता है तो यह संसार रच जाता है। संसार की उत्पत्ति हो जाती है। ब्रह्म और चरि के सन्निधान मात्र से ही संसार अपना अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। हे माता! हम इतना ही जान पाए हैं ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को और चरि कहते हैं प्रकृति को जो हमें दृष्टिपात आ रही है। लोक लोकान्तरों से ले करके जो भी मानव के नेत्रों से दृष्टिपात आता है उसका नाम प्रकृति है और जो आभा में रमण करने वाला, जो चेतना में, तरंगों में, आभा में रमण करने वाला है वह ब्रह्म कहलाता है। दोनों का सन्निधान, दोनों का मिलान होते ही इस संसार की रचना होती है। ब्रह्म और चरि दोनों शब्दों का निर्माण हो जाता है। हम ब्रह्म और चरि दोनों के ऊपर विचार विनिमय करते चले जाएं। माता पुन अपने में धन्य स्वीकार करने लगी। उन्होंने कहा, धन्य है हे बाल्य! ब्रह्मचरिष्यामि तुम ब्रह्मचर्य के इतने अर्थों को जानते हो उतना सुसज्जित है, महान् है यही दर्शनकारों ने इसका वर्णन किया है।

आगे मल्दालसा ने अपना एक प्रश्न किया हे बालक! संसार में यह प्राण सूत्र क्या है? तो मेरे प्यारे! माता मल्दालसा ने यह प्रश्न जब ब्रह्मचारियों से कहा तो प्रवाहण ने दालभ्य से कहा इसका उत्तर तुम दो। मुनिवरों! दालभ्य ने कहा हे माता! यह प्राण सूत्र वह है जिसमें प्रत्येक प्राणी प्रत्येक परमाणु पिरोया हुआ है। मुझे स्मरण है जब हम ध्यानावस्थित होते हैं तो हम एक परमाणुवाद में गति करते हैं तो यह परमाणुवाद भी गति कर रहा है। सूर्य भी गति कर रहा है और लोक भी गति कर रहा है, निहारिका भी गति कर रही है और यह जो पृथ्वी मण्डल है यह भी गति कर रहा है। इन सबमें प्राण सूत्र ही दृष्टिपात आता है। प्राण सूत्र क्या है? एक मानव सुषप्ति में चला जाता है। सुषुप्ति में जाने के पश्चात् प्राण सूत्र ही रमण कर रहा है। प्राण सूत्र ही मानव को जीवन देता है। मन भी अपनी सामान्य अवस्था में परिणित हो जाता है परन्तु मनस्तत्व ऐसा है जो सूत्र में पिरोया हुआ होने के नाते वह प्राण सूत्र कहलाता है। प्राण सूत्र क्या है?

प्रीति का नाम प्राण सूत्र है। जहाँ प्रीति शब्द आता है वहीं प्राण सूत्र दृष्टिपात आता है। यह संसार प्राण सूत्र में पिरोया हुआ है। एक दूसरे में मानव पिरोया हुआ दृष्टिपात सा आता है। जैसे पत्नी पति की सहायक है। पुत्र पिता का सहायक है। और पति पत्नी का सहायक है। पिता पुत्र का सहायक बन रहा है। एक लोक दूसरे का सहायक बना हुआ है। यह सब प्राण सूत्र कहलाता है। मुनिवरों! चन्द्रमा अपनी आभा में अमृत की वृष्टि कर रहा है वह सूर्य का सूत्र कहलाता है। सूर्य से उसे सहायता प्राप्त हो रही है। मानव मानव का सहायक बना हुआ है। इस पृथ्वी मण्डल पर जितने बेटा! यह प्राणी हैं एक प्राणी दूसरे का सहायक बन रहा है और बनता हुआ एक चक्र चल रहा है यह सब प्राण सूत्र कहलाता है। यह उत्तर देने के पश्चात् कहा हे मातेश्वरी! यह संसार जितना दृष्टिपात आता है यह सब प्राण सूत्र है। प्राण में ही एक एक परमाणु अणु पिरोया हुआ है। यह उत्तर पाने के पश्चात् मल्दालसा मौन हो गई और मल्दालसा ने कहा धन्य है? हेबालक मेरा जीवन सफल हो गया है। मैं यही चाहती थी कि मेरे गर्भ से ऐसे बालक का जन्म हो जिनके जीवन में सदैव प्राण की आभा निहित रहे। माता मल्दालसा जब गमन करने लगी तो मुनिवरों! उन तीनों पुत्रों! ने उनके चरणों को स्पर्श किया। उन्हें आशीर्वाद दे करके वहाँ से उनका गमन हुआ। अपने गृह में प्रवेश किया। अयोध्यापुरी में आ गयीं। रात्रि और दिवस सदैव इसी वाक्य का चिन्तन करती रही कि हमें प्राण सूत्र को जानना है।

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? मैं यह उच्चारण कर रहा था कि संसार में यह जो माता का जीवन है, यह एक ऐसा जीवन है यदि वह अपने कर्त्तव्य का पालन करती रहती है तो वह ममतामयी माता बन जाती है। वास्तव में माता क्या है? माता का शब्द ही वैदिक साहित्य में महत्वयुक्त माना गया है। महत्वदायक इसलिए माना गया है क्योंकि परमात्मा के लिए माता और पिता दोनों आता है। इसी प्रकार माता जब अपने में तपती रहती है, अपने को तपायमान करती रहती है, वह ममतामयी बन जाती है। उस सूत्र में अपने को स्वीकार करने लगती है कि वास्तव में मेरे जीवन का जो कर्त्तव्य है वह पूर्ण हो गया है। मैं कोई विशेष चर्चा करने नहीं आया हूँ। वास्तव में मैं तो प्राण

सूत्रों में चला गया। यह तो विशाल बन की चर्चाएं हैं। आज हम उच्चारण कर रहे थे कि पति पत्नी जब एकान्त स्थली पर विद्यमान होते हैं वहाँ बेटा! वह परमात्मा का चिन्तन करते हैं। ऊची ऊची उड़ान उड़ते हैं। निहारिका में चले जाते हैं। मेरे प्यारे! उसके अर्थों में, उसके गर्भ में मानवीय जीवन निहित रहता है। मैंने अभी अभी कहा कि संसार एक दूसरे का सहायक बना हुआ है। तो मुनिवरों! अरूणधती और वशिष्ठ मण्डल की चर्चाएं चल रही थीं और वह चर्चाएं क्या कह रही थीं? मानव का जीवन लोक लोकान्तरों से कितना समन्वय रहता है? कितना उनके सम्बन्ध है? नाना पृथ्वियां गति करती हैं उस मानव के मस्तिष्क में सूक्ष्म तंतुओं में, नाना लोक लोकान्तरों की विवेचना उसके अंकुर उस मानव शरीर में विद्यमान होते हैं। उसके पश्चात् ही उनके ऊपर वह विचार पाता है। यदि आन्तरिक जगत में संस्कार नहीं होंगे, आन्तरिक जगत में अंकुर नहीं होंगे लोकों के, वह लोकों की उड़ान कदापि उड़ नहीं पाता। इसीलिए वह उड़ता रहता है, विचारता रहता है, निहारता रहता है। समन्वय करता रहता है वह अपने जीवन का। यह है बेटा! आज का वाक्।

हमें उस देव की महिमा का गुण गान गाते हुए परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए इस संसार सागर से पार होना है जिसके ऊपर हम सदैव विचार विनिमय करते रहते हैं। इसके ऊपर अनुसन्धान करना हमारा कर्त्तव्य रहता है। गृह में जब प्रवेश होता है तो वह निहारता हरता है संसार रूपी जगत को। वह अपने में श्रृंगारित होता रहता है। प्रकृति के श्रृंगार को दृष्टिपात करके अपने को वह सजातीय बनाता रहता है। विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें यह विचार देने जा रहा हूँ हम उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए उसके ज्ञान और विज्ञान को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। मेरे प्यारे! हमारे यहाँ प्रत्येक मानव ऊची ऊची उड़ान उड़ता रहा है क्योंकि ब्रह्म की जिसने उड़ान उड़ी है वह विज्ञान की उड़ान भी उड़ रहा है। विज्ञान की जिसने उड़ान उड़ी है वह आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता हुआ अपनी अन्तरात्मा को जानता हुआ अपने को वह सजातीय स्वीकार करता है। जो मानव यहाँ देवता बनता है। वह मानव ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ इन्द्रियों को वह सजातीय बनाता है प्रत्येक

इन्द्रियों को वह धर्म में पिरो देता है। मानव की इन्द्रियां जब धर्म में परणित हो जाती हैं, अपने अपने कार्यों में रत्त हो जाती हैं, संकीर्णता उनमें नहीं होती वह व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश हो जाती हैं वह बेटा! धर्म के मर्म को जानता है।

यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा, शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का यह वाक्य क्या कह रहा है? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुण गान गाते हुए अपने जीवन को महान् बनाना है। माता पिता अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहते हैं तो उन्हें ऊची उड़ान उड़नी चाहिए। वे लोकां की उड़ान, दर्शनों की उड़ान, आत्मा की उड़ान, परमापिता परमात्मा के महान् क्षेत्र में जाने का प्रयास करें। यह है बेटा! आज का वाक्। आज का वाक् क्या कह रहा है कि हम देव की प्रतिभा को जानने का प्रयास करें। यह है बेटा! आज का वाक्। आज का वाक् क्या कह रहा है कि हम देव की प्रतिभा को जानने का प्रयास करें। देव कितना वैज्ञानिक है? वह मेरा प्रभु जिसने इस संसार को रचा है, जीवन की रचना की है। जिसने ब्रह्माण्ड को रचा है उसको जानने के लिए उसी के राष्ट्र में हम गमन कर रहे हैं। मानव के राष्ट्र से मानव दूरी हो सकता है, परन्तु प्रभु का राष्ट्र इतना नितान्त है कि उससे हम दूरी नहीं हो सकते। इसीलिए प्रत्येक मानव को विचार महान बनाते हुए, गृह में प्रवेश करते हुए, गृह की आभा को जानना, गृह, उपगृह दोनों को जानना हमारा कर्त्तव्य है। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा।

२० 06 03 1982 पुष्प 39 आधुनिक राष्ट्र व्यवस्था पर महानन्द जी की वेदना

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है। मानो उसी की आभा में ये सर्वत्र मानव अपनी आभा प्रगट कर रहा है। क्योंकि हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, नाना ऋषि हुए। उन नाना ऋषियों में, कुछ

ब्रह्मवेत्ता भी रहे हैं। उन ब्रह्मवेत्ताओं में मानो कुछ ब्रह्म की जिज्ञासा वाले ऋषि हुए हैं। हम जब ब्रह्म की जिज्ञासा की वार्त्ताएं प्रगट करते रहते हैं। तो मानो एक आभा जगत् प्रायः दृष्टिपात आता रहता है। जब हम यह विचारते हैं कि सर्वत्र आभा में, यह मानव गति कर रहा है और उस आभा में, जो परमपिता परमात्मा की आभा है, उसमें यह सर्वत्र अणु और परमाणु गति कर रहा है। ये गति करने वाला जो एक अणु और परमाणु की उसकी गाथा गा रहा है। मानो वह ब्रह्म में ओत प्रोत है। ब्रह्म के गर्भस्थल में विद्यमान है क्योंकि ब्रह्म का जो गर्भस्थल कहा गया है, वह महान और पवित्र माना गया है। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र हमें नाना प्रकार की वार्त्ताएं और नाना प्रेरणा दे रहा है। क्योंकि प्रेरणादायक जो शब्द रहते हैं, उन्हीं शब्दों में मानव का चित्रण विद्यमान होता रहता है। मानव का चित्र, उस आभा में, परमपिता परमात्मा के जगत् में, रमण कर रहा है। परन्तु आज मैं विशेष चर्चाएँ देने नहीं आया हूँ। विचारना ये है कि हमारा जो अणु अंबलं ब्रहे वर्णा स्वस्ति रूद्राः मानो वह स्वस्ति कहलाता है। जिस स्वस्ति को अपना करके मानव अपने में धन्य हो जाता है। तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें कोई और चर्चा देने नहीं आया हूँ, केवल परमपिता परमात्मा की वार्त्ताएं और उसके व्यापक होने का मानो एक उज्ज्वल स्वरूप हमारे समीप आता रहा है। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने कुछ सूक्ष्म विचार देना चाहते हैं। उनका जितना भी मन्तव्य रहता है। वह इस भौतिकवाद और वायुमण्डल से उसका समन्वय रहता है। तो अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपना कुछ विचार व्यक्त करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् शना गतं मम वरुणो स्वस्तं आभ्यां गताः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल और भद्र समाज! आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ वर्णन कराना चाहता हूँ। क्योंकि हमारा कर्म है कि हम अपने विचारों को, उनके समीप ला करके अवगत कराते रहें कि ये मण्डल, किस प्रकार की आभा में गति कर रहा है। परन्तु आज का यह जो विशाल मण्डल बना हुआ है, यह परमाणुवाद के दूषित होने का परिणाम है। मानो वायु मण्डल में, परमाणुओं का विवाद होता रहता है और उन परमाणुओं का किसी किसी काल में मानो भयंकर स्वरूप धारण हो जाता है। तो

उसका परिणाम यह होता है कि उनमें अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और अग्नि के प्रदीप्त होने पर, इस पृथ्वी मण्डल पर रहने वाला जो प्राणी है, उससे नाना देवी प्रकोप उस मानव के समीप आते रहते हैं। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! यह मानो जितना भी यह भविष्यकाल आने वाला है या यह जो काल गति कर रहा है वर्तमान का, यहाँ का वायुमण्डल दूषित होने के कारण, इस मानव को नाना प्रकार की यातनाएं सहन करने के लिए तत्पर रहता है। परन्तु देखो, अति वृष्टि और अना वृष्टि जब होती रहती है तो इसको दैविक प्रकोप कहा जाता है। दैवी श्वञ्जनं कहा जाता है परन्तु देखो, ऐसा क्यों है? जब मैं विज्ञान के युग में प्रवेश करता हूँ, जब मानो भविष्य वक्ताओं के समीप मैं अपनी वार्त्ता प्रगट करने लगता हूँ तो मैं भी उनके ही तुल्य अपनी वाणी का उद्गीत गाने लगता हूँ। परन्तु इसके संदर्भ में, इसकी आभा में, जो यह संसार और मानव विशेषकर जो गति कर रहा है, उन गतियों में ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे कर्तव्यवाद और मानवीयता का ह्रास हो रहा है। परन्तु यह जो मानवता का ह्रास हो रहा है इसके मूल में मानो देखो, शिक्षा की पद्धति है। जितनी भी शिक्षा प्राणी है, उस शिक्षा प्रणाली पर मानो देखो, मानव का नियन्त्रण नहीं रहा हैं, नियन्त्रण न रहने के कारण शिक्षालय दूषित हो गए हैं। शिक्षालयों में नाना गोष्ठियाँ होती रहती हैं और उन गोष्ठियों में वह मानो देखो, अपनी अपनी ममता में, अभिमान में रत्त हो करके गुरु और शिष्य का वाद नहीं रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने शिक्षावाद के, गुरु शिष्य के सम्बन्ध में कल अपनी कुछ चर्चाएँ दीं। परन्तु उन चर्चाओं में गुरु शिष्यवाद का वर्णन आया। वह कितना महत्वपूर्ण, कितना अपने में सारगर्भित था। परन्तु आज जब मैं विद्यालयों में प्रवेश करता हूँ, तो वहाँ गुरु और शिष्य को, मैं अपने अंकों से आँकने लगता हूँ। तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है, हे गुरु शिष्य! कहाँ चला गया? चरणों में विद्यमान हो करके गुरु की विद्या को ग्रहण करता है, निगलता है। परन्तु आज का जो गुड़म्बावाद है, चाहे वह आत्मा के ऊपर हो, चाहे वह राष्ट्रीय स्तर पर हो, चाहे वह विद्यालयों में हो, परन्तु उनमें क्या हो रहा है? इसके ऊपर विचारना मेरे लिए महा कठिन हो जाता है। परन्तु देखो, जब शिक्षा प्रणाली में वासना की ज्वालाएं, अग्नियाँ प्रदीप्त हो रही हैं तो छात्रबल

का ह्रास हो रहा है और जिस राष्ट्र का समाज का छात्र बल मानो देखो, वह हीनता को प्राप्त होता है उस राजा के राष्ट्र में मानो देखो, मानव का आत्मा नष्ट हो गया है। राष्ट्र का, यदि कोई आत्मा है, तो वह छात्र बल है और जब छात्रबल नहीं रहा, उसका ह्रास हो रहा है। तो राष्ट्र का उत्थान कैसे होगा? राष्ट्र का उत्थान होना मानो यह अपवाद में रह जाएगा। परन्तु आज मैं कहाँ चला गया हूँ, विचार यह है कि हमारे यहाँ पुरातनकाल का जो शिक्षालय रहा है उसमें गुरु और शिष्य की परम्परा और उनका क्रिया कलाप एक दूसरे से गुथा हुआ दृष्टिपात आता रहा है।
परन्तु आज के आधुनिक काल के भविष्यवेत्ता ये कहते हैं कि आगे जो समय आने वाला है उस समय में मानो ग्रह एक ही रेखा पर आ रहे हैं और उनके एक रेखा पर आने पर, संसार का बहुत सा भाग नष्ट भ्रष्ट होता रहेगा। परन्तु ऐसा नहीं है, यह भविष्य वेत्ताओं का अज्ञान है, जो शनि मण्डल है और बुद्ध मण्डल है वह एक रेखा पर आ गएं हैं। परन्तु रेखा का परिणाम यह होता है कि कहीं अतिवृष्टि और अनावृष्टि में यह समाज और काल मिश्रित रह जाता है। परन्तु ऐसा नहीं है कि कुछ भाग नष्ट भ्रष्ट हो जाए, यह अपवाद है। इसमें मानो सार्थकता प्रतीत नहीं दे रही है। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मानो देखो, यह जो विज्ञान है, यह विज्ञान अज्ञानतामयी विज्ञान माना गया हैं क्योंकि इसके जो अंक हैं, इसके जो विचारने का माध्यम है वह अध्यात्मिकवाद न रहने से अशुद्ध बन गया है। चिन्तन करने की प्रतिक्रिया अशुद्ध बन गई है। परन्तु ऐसा क्यों? क्योंकि आहार पवित्र नहीं है। प्रत्येक मानव का जो निर्माण होता है। वह आहारों से पवित्र बनता है। आहार दूषित हो गया है। दूसरे के रक्त को पान करने में मानव मग्न हो रहा है। आज का मानव कह रहा है, क्या यह घास को पान करने वाला है। एक मानव कहता है मैं माँस को पान करने वाला हूँ। परन्तु माँस को पान करने वाला घास को घृणा से दृष्टिपात कर रहा है और घास पान करने वाला माँसवादी को घृणा की दृष्टि से दृष्टिपात कर रहा है। तो यह मैं नहीं जान पाता यह कैसा काल और समय बन गया है? विद्यालयों में मानो देखो, माँस के आहार करने वाले और शुद्ध आहार करने वाले भी हैं। परन्तु एक दूसरा एक दूसरे को घृणित आभा में दृष्टिपात कर रहा

है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! ऐसा जो काल है, वह भयंकर काल कहलाता है। परन्तु एक मण्डल नहीं, दो मण्डल नहीं, ये प्रकृति का परिवर्तन करते रहते हैं। परन्तु दूषित वातावरण को उद्वित करते रहते हैं। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! ने आध्यातिमकवाद की चर्चाएँ कीं। मैं आज के राष्ट्र वेत्ताओं से आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को यह अवगत कराने के लिए आया हूँ कि यह जो वैज्ञानिकों को अभिमान आ गया है और वह अभिमान क्या आया है? कि हमने विज्ञान को जाना है। हम चन्द्रमा की उड़ान उड़ने वाले बन गए हैं। हमने अणु और परमाणु को भी जाना है। हमने अणु के भी विभाजन कर दिए हैं।

परन्तु देखो, अणु का विभाजन होना यह आज का वैज्ञानिक नहीं जानता। परन्तु और नाना रूपों में वर्णन करते रहते हैं। परन्तु देखो, यह परमाणु एक ऋणीत नाम का परमाणु है उसका यह विभाजन कर रहा है। उसमें से मानो देखो, विद्वादों को मानो वर्णित कर रहा है। जब मैं विज्ञान युग में प्रवेश करता हूँ, वैज्ञानिकों की सभा में जाता हूँ, तो उनमें केवल विज्ञान की आभा नहीं है, क्योंकि सर्वभौम जो आभा है, वह वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों में नहीं। परन्तु उन सबमें राष्ट्रवाद की अग्नियाँ प्रदीप्त हो रही हैं। एक दूसरे राष्ट्र को हम अपनी परमाणु शक्ति से कैसे विजयता को प्राप्त हो सकते हैं? परन्तु एक दूसरा भयभीत भी हो रहा है और यह स्वीकार कर रहा है कि मेरे राष्ट्र का विनाश न हो जाए। परन्तु उसके पश्चात् भी यह मानव घृणित आभाओं में गति करता रहता है। परन्तु आज का विज्ञान नाना अणुओं में गति कर रहा है। परन्तु अणुओं में वास्तव में जो गति होने वाली थी वह हो नहीं पाई क्योंकि आधुनिक काल का जो विज्ञान है, वह एक इकाई में भ्रमण कर रहा है। इकाई में गति कर रहा है। क्योंकि वह जो इकाईयाँ हैं, न अग्रणी अस्ता कुछ जाना।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! उस विज्ञान को मैं स्मरण कराता रहता हूँ, जिस विज्ञान को मानव जानता रहता है और विचारता रहता है। द्वापर के काल में जाँऊ तो मुझे विज्ञान स्मरण आता है। परन्तु दिवस की रात्रि और रात्रि का दिवस बन जाता था। परन्तु जिस समय इन्द्रप्रस्थ में याग हुआ तो उस याग में जब महाराजा कृष्णा का निर्वाचन होने

वाला था तो महाराजा शिशुपाल ने उनको अपशब्दों का प्रतिपादन किया, देता ही रहा, भगवान कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से जो संकल्प के द्वारा वह वैज्ञानिक यन्त्र था और उसके कण्ठ के भाग को दूरी कर दिया। परन्तु जब मैं इस विचार को ले करके चलता हूँ वह सुदर्शन चक्र वास्तव में क्या था? वह भगवान कृष्ण ने कैसे जाना? क्योंकि उन्होंने महाराजा इन्द्र जो त्रिपुरी के राजा थे उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया था जिस पोथी में सूर्य विद्या पर, नाना प्रकार की किरणों के ऊपर उनका अनुसन्धान था। तो किरणों में एक संकल्प शक्ति होती है जो सीमा में बद्ध रहती है। परमात्मा के संरक्षण में रहती है। जैसे सूर्य की एक ही किरण है जो स्वर्ण को निर्माणित कर रही है। एक ही किरण है जो और भी नाना धातुओं का निर्माण कर रही है। रत्नों का भी निर्माण कर रही है। परन्तु इसी प्रकार वह जो रत्नोमयी किरण है और भी नाना प्रकार की जो किरणें हैं परन्तु उन किरणों में एक संकलन व्रीत नाम की एक किरण होती है, जो मानो आभा कहलाती है। उस किरण को यन्त्रों में लाने से मानो देखो, सुदर्शन चक्र का निर्माण हो जाता है उस सुदर्शन चक्र का भगवान कृष्ण ने निर्माण किया और वह संकल्पशक्ति से गति करता था। इसी प्रकार जो संकल्प शक्ति है उसके भी परमाणु होते हैं। नाना किरणें होती हैं और वह ऐसी भयंकर संकल्प शक्ति है, जिस मानव को नष्ट करना चाहते हो वही कृत्य कर जाता है। परन्तु देखो, एक यन्त्र ऐसा है जो भुजों में है और अग्नि की किरणों से वह गति कर रहा है और इतनी तीव्र गति उसकी होती है क्या मानो देखो, उसकी गति को गणित नहीं कर सकते एक एक शब्द को जब तक उच्चारण किया जाए, इतनी देरी में वह यन्त्र देखो, लाखों प्रतिक्रियाएं, लाखों परिक्रमाएं उस यन्त्र की हो जाती हैं। तो मानो इस प्रकार के यन्त्र आधुनिक जगत में नहीं हैं। आधुनिक जगत में नहीं है वरुणास्त्र का निर्माण तो करना चाहता है वैज्ञानिक। परन्तु कुछ किया भी है, परन्तु वह वस्तु नहीं आ सकती। मैं इसीलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि आधुनिक काल का वैज्ञानिक त्रास दे रहा है। समाज में भय की आभा उत्पन्न हो गई है और विज्ञान में यह आज का वैज्ञानिक एक इकाई में भ्रमण कर रहा है। परन्तु इस क्षेत्र में ऐसा क्यों है? यह राष्ट्रीय जो व्यवस्था है इसमें अभिमान आ गया है, इसमें

राष्ट्रीय भावना न रह करके मानो इसमें घृणा की दृष्टि आ गई है। इस घृणा की दृष्टि का जो मूलक है, वह राष्ट्रीय व्यवस्था है। वह राष्ट्रीय कृषितन्त कहलाता है।

परन्तु देखो, इन विचारों के ऊपर मैं विशेष चर्चा नहीं दे रहा हूँ। आगे आने वाला जो समाज है, नाना भविष्य वक्ता भविष्यवाणी करते रहते हैं। मैं भविष्यवाणी देने नहीं आया हूँ न मैं भविष्य वक्ता हूँ। केवल इतना उच्चारण कर सकता हूँ कि वायुमण्डल में अतिवृष्टि, अनावृष्टि भी हो सकती है, परन्तु जहाँ तक समाज का कुछ भाग नष्ट हो जाए मानो देखो, यह अपवाद है। इसमें मुझे कोई सार्थकता प्रतीत नहीं देती। परन्तु देखो, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा है कि जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है मानो देखो, उस भूमि पर, इस स्थली पर महाराजा भीम और उनके पुत्र घटोत्कच्छ की यहाँ एक विज्ञानशाला रही है। इस विज्ञानशाला का जितना भाग है।

वह नदी के प्रवाह में नष्ट हो गया है। परन्तु देखो, यहाँ उनके विश्वविद्यालय में, उनकी मानो देखो, यन्त्रशाला में नाना प्रकार का अनुसन्धान होता रहा। परन्तु वही भूमि मानो किन किन रूपों में परिवर्तित हुई है। इसको प्रभु! जानता है। मैंने तो इसका वर्णन कराया था कि जहाँ विज्ञानशाला है वहाँ न्यायालय, जहाँ न्यायालय वहाँ शमशान भूमि भी बन सकती है। परन्तु देखो, जहाँ शमशान भूमि बन करके वहाँ मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न हो रहा है क्या वहाँ वेद ध्वनियाँ भी हो रही हैं और वेद की जो ध्वनि हो रही है उससे वायुमण्डल पवित्र बन रहा है। जो ऋषियों की परम्परा रही है। सृष्टि के प्रारम्भ में जिन ऋषि मुनियों ने सर्वभौम एक विचार दिया कि सुगन्धि देना प्रारम्भ करो और सुगन्धि वेदज्ञ ध्वनि के द्वारा देवता का आह्वान करो। तो मानो देखो, वह जो विचारधारा है, उसी पर मानव के शब्दों में एक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, एक महानत्ता का जन्म हो जाता है। उस महानत्ता के जन्म होने पर वेदज्ञ ध्वनि अन्तरिक्ष में गति कर रही है। एक एक स्वाहा जो यज्ञमान उच्चारण कर रहा है और वह वायु मण्डल में जा रहा है, मानो एक एक शब्द, एक सौ एक अशुद्ध जो शब्द हैं उनको वह नष्ट करता जा रहा है। परन्तु इस प्रकार का जो विज्ञान वेदज्ञ ध्वनि में मानो सतोमयी रहता है मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न रहता

है।

हे यज्ञमान! तेरे जीवन में मानो देखो, सुगन्धि होती रहे। तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, जिससे तेरी जो मनोमयी, यज्ञोमयी क्रिया है वह तेरे मानवीय शरीर से होती रहे। परन्तु जब मैं विचारने लगता हूँ कि आधुनिक काल का जगत् उसको भी पाखण्ड कह करके वर्णित कर रहा है। यह मानव का कितना दुर्भाग्य है? यह पाखण्ड क्यों कह रहा है। अपनी मानवीय स्वार्थता में आ करके। विचार विनिमय नहीं कर रहा है। इसके परमाणुवाद के विज्ञान को वह नहीं जान रहा है। परन्तु अशुद्ध वाक्य और पाखण्ड कहता है। हे मानव! तू पाखण्ड को जानता नहीं है। पाखण्ड किसे कहते हैं? पाखण्ड वह वस्तु है जो वेद के प्रकाश से विपरीत होती है। जिन शब्दों की आभा में वह गति नहीं होती, वह मिथ्या होती है, अशुद्धवाद होता है। आज जब मैं यह विचारता रहता हूँ कि यह समाज, नाना प्रकार का जो सम्प्रदायवाद है, वह जब यह कहता है कि न तो शास्त्रों के अध्ययन में कुछ है, न वेदों के अध्ययन में कुछ है और न याग में कुछ है परन्तु देखो, एक आत्मा को जानने वाला मानव सर्वत्र महान है। हे मेरे भोले सम्प्रदायवादियों! जब तक दर्शनों का अध्ययन नहीं होगा, उसके ऊपर चिन्तन नहीं होगा, वेद रूपी प्रकाश को नहीं जानोगे, तो प्रकाश में कैसे पहुंचोगे? वह प्रकाश का मार्ग कैसे तुम्हें प्राप्त होगा, कहाँ से यह अशुद्धवाद तुम्हारे समीप आया है? मानो इसको हम एक गुडम्बावाद की प्रवृत्ति ही कह सकते हैं और वह क्यों कह सकते हैं? क्योंकि जब तक ज्ञान नहीं होता मानव को, तब तक क्रिया में नहीं आता। और जब तक क्रिया में नहीं आता तो विवेक नहीं होता। और जब विवेक नहीं होता तो आत्मा को कैसे जानोगे? आत्मा तो विवेक के मार्ग से और विवेक जब विज्ञान और ज्ञान में रत्त रह करके उत्पन्न होती है, उसी काल में मानव का कल्याण होता है। परन्तु जब मैं यह विचारता हूँ, क्या जब यह कहते हैं क्यों हम देखो, तुम्हारे श्रोत्रों में जो हम आभा प्रगट कर रहे हैं, वह आत्मिक कहलाती है। परन्तु आत्मा के स्वरूप को वह भोले यह भी नहीं जानते यह जो मन है इसकी उत्पत्ति क्या है? मन का निर्माण क्या है? तो किस प्रकार इस मानव शरीर में आत्मा रहती है इसका क्या स्वरूप है? तो वह गुरु शिष्य

बन करके यह समाज दूषित होता जा रहा है। तो मैं इन वाक्यों में जाना नहीं चाहता हूँ।

विचारना केवल यह है कि इस आभा में इसीलिए नहीं जाना चाहता हूँ क्योंकि अन्तरात्मा दुःखित होता है। क्योंकि जहाँ गुरुजन और शिष्यजनों का मानो शरीर और आत्मा के जानने के लिए बहुत ही पुरुषार्थ किया है, तपस्याएं की हैं, अनुसन्धान किया है विज्ञान के क्षेत्र पर मानव चला गया है। उस आभा में आभायित हो रहा है। इसको अज्ञान कहता है तो यह कितना समाज में पामर पना है? यह कितना पामरपना है जो इसको अशुद्ध कहता है। परन्तु देखो, इस आभा में नहीं विचारना, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अवगत करा रहा हूँ। क्या इस संसार को, इस मानवीयता को, मानव को, परम्परागतों के क्षेत्रों में आना होगा, और आ करके, यह अपनी उसी परम्परा को अपनाएं तो राष्ट्र और समाज बुद्धित बन सकते हैं। जब मैं यह विचारता हूँ क्या राष्ट्रवाद अपने को निष्पक्ष कह रहा है। वह यह कहता है कि हम तो निष्पक्ष हैं। हे भोले! यदि निष्पक्ष हो तो राष्ट्र तुम्हारा क्या है? इस राष्ट्र की प्रणालियाँ जब निष्पक्ष हो जाती हैं, तो तुम क्या करोगे? मानो देखो, तुम्हारा शासन ही क्या है? शासन तो उसे कहते हैं, जो धर्म युक्त हो और धर्म किसे कहते हैं? मानवीय दर्शन को जहाँ मानवीय दर्शन हो, वह राष्ट्र धर्मयुक्त होता है और उस राजा के राष्ट्र में प्रजा याज्ञिक हो, ऋणों से अवऋण होने वाली हो। ऐसा जो राष्ट्र होता है वह मानव क्षेत्र में देखो, निष्पक्ष कहलाता है। एक मानव यह कहलाता है कि नेत्रों से सत ही दृष्टिपात करो तो यह निष्पक्ष विचार रहता है। सुन्दर शब्दों को ग्रहण करो यह भी वास्तविक है। यह धर्म है जो उसका पिरोया हुआ कृत्य है। परन्तु देखो, उस आभा में मैं यह विचारता रहता हूँ, हे राष्ट्र! तेरा यह निष्पक्ष जो विधान हे, यह तेरी मानवीयता से, मानव दर्शन से दूरी है। यह मानव दर्शन से दूरी हो रहा है परन्तु देखो, इस विशालता में देखो, यदि राष्ट्र को ऊँचा बनाना है, जिस भूमि पर हमारी आकाशवाणी जा रही है, महाभारत काल के पश्चात महाराजा भीम के इस स्थली पर एक भवन था, मानो यहाँ एक सभा हुई थी और उस सभा में मानवीय दर्शन का, महर्षि व्यास के द्वारा मानव दर्शन की एक आभा को राष्ट्र में नियुक्त कर दिया था। मानो

वह इस प्रकार रूपों में नहीं रही। सभांए होती है आधुनिक काल की जो सभाएं होती हैं, राष्ट्रीय सभाएं हैं, उनमें जो निर्णय होता है पूज्यपाद इन निर्णय को आपसे उच्चारण करने लगूँ तो आप आश्चर्य करेंगे उनका जो विचार है मानो देखो, सभांए हो रही है राष्ट्रीयवेत्ताओं की सभाएं हैं और सभा यह कहती रहती है कि हमारा राष्ट्र हमारे नीचे से न चला जाए, परन्तु यह राष्ट्र कहीं चला जाए। परन्तु हमारा स्वार्थवाद नष्ट नहीं होना चाहिए। परन्तु जब सभाओं को मैं ग्रहण करता हूँ, तो आश्चर्यचकित हो जाता हूँ। सभाएं होती हैं, ऐसा ऐसा वाक्य प्रगट करते हैं कि समाज को अज्ञानी कैसे बनाया जाए जहाँ सभाएं यह होती थी कि समाज को बुद्धिमान बनाएं वहाँ आज का सभापति यह कहता है कि समाज को अज्ञानी कैसे बनाया जाए कि जिससे हम राष्ट्रमयी बने रहें। हम राष्ट्रवेत्ता ही बने रहे।

परन्तु देखो, जब सभाएं होती हैं तो उन सभाओं में यह होता है कि हम मोहम्मद के अपनाने वालों के लिए कितना सुखद बना सकते हैं हम मानो देखो, जो सेवक हैं उनको किस प्रकार अपने में ला सकते हैं। परन्तु यही देखो, यही विचार बनते बनते यह आ जाता है वह सत्य उच्चारण करने से वह समाज वंचित्त हो जाता है। परन्तु राष्ट्र वंचित्त हो जाता है अरे, राजा जिस समाज में जिस राष्ट्रीय व्यवस्था में सत्य उच्चारण करने में तू अपने को शान्त कर देता है, क्या यह राष्ट्र किस काल तक चलेगा? यह तो अग्नि के तट पर आने ही वाला है। यह तो भयंकर अग्नि की आभा में समाज समाप्त होने वाला है। परन्तु देखो, जहाँ मानव यह विचार रहा है, सभाओं में कि हम अपना हमारा स्वार्थ पूर्ण होता रहे यह राष्ट्र को, द्वितीय राष्ट्र अपनाते रहें परन्तु कोई आभा नहीं विचार वेद, धर्म और मानवता के सम्बन्ध में अग्नि और विष शब्दों से उगलते रहते हैं, वमन करते रहतें है और राष्ट्र उनको सहन करता रहता है। परन्तु यह सहन करने की जो प्रवृत्ति है यह राष्ट्र की प्रवृत्ति नहीं होती यह राष्ट्र को सुखद बनाने की प्रवृत्ति नहीं होती। आज जब मैं सभाओं में जाता हूँ तो वह सभापति कैसे बनते हैं? उन्होंने दस दस प्राणियों को हनन कर दिया है। परन्तु देखो, वह सभा में उच्चारण करके यह कहते हैं मैं राष्ट्रपिता बनूंगा मैं राष्ट्र का कर्मचारी बनूंगा। अरे, भोले! तुम यह तो विचारो

जो मेरी पुत्रियों के श्रृङ्गार को हनन करके मेरी पुत्रियों के ऐश्वर्य को समाप्त करके वह राष्ट्र में जा रहे हैं वह राष्ट्र को सुखद कैसे बना सकते हैं? कौन सा विचार उनके द्वारा जिन विचारों से मानो देखो, वह समाज को ऊँचा बनाए वह क्या करते हैं? यह मैं उच्चारण नहीं करने वाला। मैं यह उच्चारण नहीं कर रहा हूँ क्या करते हैं, क्या हो रहा है राष्ट्र में? जो मेरी पुत्री राष्ट्र में चली जाती है परन्तु देखो, उसके पतियों की भी गणना नहीं की जा सकती। आज मैं क्या उच्चारण करूं इस समाज की आभा? मानो देखो, ऐसा नहीं होना चाहिए।

हे राजन्! आज यदि तुझे ऊँचा बनना है तो वैदिकवाद को अपनाना होगा। यह जो नाना प्रकार की रूढ़ियाँ हैं, जिन्हें तुम नाना धर्म कहते हो, नाना धर्म क्यों कहते हो? जबकि धर्म एक ही है। उसमें जब बहुवचन है ही नहीं, एकोकी वचन है, तो तुम एकोकी वचन में यह वाक् तुम क्यों उच्चारण कर रहे हो? परन्तु देखो, नाना धर्म कहते हैं उन रूढ़ियों का जो विधान है, उन व्यक्तियों ने निर्माणित किया है जिनके दस दस संस्कार हुए हैं। परन्तु दस दस, पत्नियाँ उनके रही हैं। बीस बीस पत्नीयाँ रही है उन्होंने नाना धर्मो का जिनको धर्म कहते हो उन्होंने उन पोथियों को निर्माणित किया है जिस पर समाज चल करके मानो देखो, विवेक का विनाश हो रहा है। आज जब मैं यह विचारता हूँ, तो इसके ऊपर राष्ट्र को विचार करना चाहिए। राष्ट्र जब इसके ऊपर विचार करेगा तो मानो देखो, उस समाज को वैदिक धारा पर ला सकता है।

वेद किसे कहते हैं वेद नाम ज्ञान का है। यह सार्वभौम कहलाता है। ज्ञान कोई किसी की सम्पदा नहीं है वह किसी के द्वारा भी आ सकता है। परन्तु मनु सिद्धान्त को समाप्त कर दिया है समाज ने। जहाँ देखो, जिस भूमि पर नाना राजा, आचार्य महान् बन करके यहाँ वर्ण व्यवस्था का निर्माण होता रहा है, वर्ण व्यवस्था न रह करके जातीयता में मानव अग्नि के कुण्ड में चला जा रहा है। अग्नि की आभाओं में रमण कर रहा है मेरे विचारों में तो यह वायु मण्डल को दूषित कर रहा है और वायु मण्डल को जब दूषित करता है तो अति वृष्टि और अनावृष्टि होती रहती है। यह समाज अपनी अपनी कृतियों में रमण कर रहा है। तो मैं विशेष चर्चाएँ, विशेष अपना वक्तव्य देना नहीं चाहता

हूँ। मैं केवल यह उच्चारण कर रहा हूँ क्या विज्ञान में आध्यात्मिकवाद न रहने से, वह समाज को त्रास दे रहा है। आत्मा की प्रेरणा को वह शान्त कर रहा है। परन्तु देखो, इस विज्ञान के न रहने ये नाना रूढ़ियाँ पनपती रहती है, इन रूढ़ियों के ऊपर राष्ट्र अपने को नष्ट करता जा रहा है। राष्ट्रीय भावना न रह करके जातीयता की भावना और देखो, स्वार्थ भावना बलवती होती रही है। और कर्त्तव्यवाद का विनाश हो रहा है।

तो आज मैं यह विचार दे रहा हूँ पूज्यपाद! यह जो समाज है इसको महान् बनना चाहिए। मानो यह ऊँचा बन करके ऊँचा बनेगा उस काल में जब यहाँ महर्षि वशिष्ठ जैसे पुरोहित होंगे। राम जैसे यहाँ राजा होंगे और राजा के मन्त्री हनुमान जैसे होंगे। हनुमान का एक ही पुत्र था मकरध्वज, मानो सुग्रीव की कन्या से उसका संस्कार हुआ था। जो जीवन भर ब्रह्मचारी रहा हो, एक पुत्र उसने उत्पन्न किया परन्तु उसके पश्चात् ब्रह्मचारी रहा। जो अग्नि की, सूर्य की किरणों के साथ गति करने वाला वैज्ञानिक था। आज का मानव उसे वानर कहता है। पशु के रूप में उसे दृष्टिपात कर रहा है। यह अज्ञान नहीं तो और क्या है? परन्तु यह कहता है यदि इसको अब्रहा कृति जिव्याहन अध्वनि देवा मानो जैसे हनुमान जैसे मन्त्री हों और कैसे मन्त्री? कि लंका को विजय कर लिया है। जब विजय लंका हो गई तो महाराज विभीषण ने उनको निमन्त्रण दिया कि मेरे यहाँ तुम्हारा भोज होना चाहिए। तो भगवान राम और हनुमान जी दोनों का परस्पर विचार हुआ। हनुमान ने कहा कि महाराज! विभीषण के यहाँ हम भोज नहीं करेंगे। मानो देखो, हम स्वस्ति ब्रणा स्वस्ति जिह्वं ब्रणे अप्रति दिव्यां गतो अस्वतां मुनिवरों! देखो, विचार होता रहा, विचार हो करके उन्होंने कहा कि हे प्रभु! यह जो विभीषण है, उसे लंका का आपने स्वामी बनाया है और इसके विधाता जो इसका वंश है उसका ह्रास हो गया है इसीलिए इसके यहाँ हम भोज नहीं करेंगे। अब हम लंका को त्यागकर अयोध्या को भ्रमण कर रहे हैं। तो ऐसे मन्त्री हों, जो इतने विचारक हों। परन्तु यहाँ इस राष्ट्र में मानो देखो, मन्त्री हैं मन्त्री राष्ट्रों में जाते हैं उन्हें विष दे दे करके उनकी प्रतिभा नष्ट की जाती है। परन्तु ऐसा क्यों हो रहा है? क्योंकि देखो, बुद्धिमान और वेद का पण्डित उनके साथ नहीं जाता। उसका परिणाम यही होता है। क्योंकि

विज्ञान समाप्त होता है।

वैज्ञानिकजनों को ह्रास की दृष्टि से दृष्टिपात किया जाता है। इसका मूल क्या है? वैदिक प्रकाश उनके समीप नहीं होता। मन्त्री, जब राजा का सुन्दर नहीं होता, मन्त्री जब विचारक नहीं होता, तो राष्ट्र के राष्ट्र अग्नि के मुख में परिणत हो जाते हैं। मैं पूज्यपाद! कहाँ तक देखो, अज्ञानता को प्रगट करता रहूँगा, यह महाभारत काल से अज्ञानता चली आ रही है। मैं इस अज्ञानता का वर्णन उस रूप से नहीं कर सकता, जिस रूप में इसमें अज्ञानता हो रही है और होती रही है। परन्तु देखो, यहाँ धर्म की आभा में, धार्मिक मानव कहता है अपने को आज वह यह कहता है कि मैं धार्मिक नहीं हूँ। वह यह उच्चारण करने में अपने में गौरव स्वीकार कर रहा हैं परन्तु यदि तुझे कोई धार्मिक कह दे और तू राष्ट्र का नेता नहीं बनेगा, तो मानो देखो, तेरे जीवन का ह्रास हो जाएगा। यह कितना दुर्भाग्य, इस मानव समाज का बन गया है। परन्तु देखो, यह तो बहुत ही अशुद्ध वाणी भी कह देता है। राजाओं को भी कहता है। यह ऊर्ध्वा में अग्रणी नेता बन रहा है। परन्तु वैदिक साहित्य में, नेता किसे कहते हैं? वैदिक साहित्य में सबसे ऊर्ध्वा में रहने वाला नेता अग्नि कहलाता है। अग्नि क्या है?

जो प्रकाश के देने वाली है। जो वास्तविक प्रकश देता है। उसका नाम नेता है। परन्तु वही मानव नेता बनता है जो समाज को सत्य और विशाल मार्ग को प्रदान करने वाला हो। वह नेता कहलाता है। परन्तु देखो, जो अशुद्ध उच्चारण कर रहा है, अपना स्वार्थ में आ रहा है, प्रजा के वैभव को संग्रह करके ग्रहों का निर्माण कर रहा है, परन्तु देखो, राष्ट्र कहीं चला जाए। आधुनिक जगत में, उसको अग्नि के समान उपाधि दी जा रही है यह समाज का दुर्भाग्य है।

मैं विशेष चर्चा नहीं दूंगा। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को आधुनिक काल की चर्चा कर रहा हूँ कि आधुनिक जगत कैसा बन रहा है। उससे वायुमण्डल का निर्माण हो रहा है। वायुमण्डल में अशुद्ध अशुद्ध तरंगें मानो उत्पन्न हो करके अनावृष्टि, अतिवृष्टि में यह जगत् चला जा रहा है। तो आज मैं विशेष चर्चाएँ प्रगट करने नहीं आया हूँ। अब मैं अपने पूज्यपाद! मैं कहा तक यह गाथा प्रगट करूं? परन्तु देखो, आज मैं केवल यही

परिचय देने के लिए आया। क्या मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! को मैं परिचय करा रहा हूँ। यह समाज का परिचय है। अब मैं आज्ञा पाऊगा।
पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! मेरे प्यारे! महानन्द जी ने, अपने ऐसे वाक्य प्रगट किए हैं जो हम श्रवण भी नहीं कर सकते। क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञान और प्रभु का राष्ट्र एक महान् रहा है। उसी में गति कर रहा है। तो आज का वाक् अब यह समाप्त होने जा रहा है। ओ३म् दधिमा लाक्षागृह, बरनावा।

२१ 07 03 1982 पुष्प 39 महानन्द जी की आधुनिक राष्ट्र व्यवस्था

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव जो आनन्दमयी कहलाता है, जिसका आनन्द ही श्रोत माना गया है वही आनन्द उसका आयतन माना गया है वह उसका गृह कहलाता है। तो हम उस आनन्द के लिए सदैव कल्पना करते रहते हैं और प्रयत्नशील रहते हैं कि हमें आनन्द प्राप्त हो जाए। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र यजोवंशी आभ्यास रुद्रो अस्वतम् देवः कहता है, हे मानव! यदि तू यजूंषि बन रहा है, यजूंषि कहते हैं जो मानव याग कर रहा है। याग के नाना प्रकार के स्वरूप माने गए हैं जो अपने जीवन को याज्ञिक बना लेता है वह यजोवंशी कहलाता है। परन्तु आज मैं विशेष चर्चाएं देने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह कि हम अपने जीवन को व्यापक बनाते रहें क्योंकि व्यापक बनना ही मानवीयता को महान बनना है। धर्म और मानवीय क्षेत्र में रमण करने वाला प्राणी महान् बना करता है।
धर्म किसे कहते हैं? धर्म की मीमांसा करते हुए आचार्यों ने वर्णन किया है कि प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर अनुशासन करने का नाम याग माना गया है। प्रत्येक इन्द्रिय के अपने ही स्वरूप में उसमें जो आभा उत्पन्न होती रहती है, उस आभा के निरोध करने का नाम योग कहा गया है। उनकी और सूक्ष्म प्रवृत्तियों में गति करने से चित्त की वृत्तियां उसमें निरोध हो जाती हैं। तो विचार विनिमय क्या? कि हमें अपनी इन्द्रियों का निरोध

करना है। साकल्य बनाना है।

साकल्य बना करके हृदय में उसकी हृदयरूपी जो यज्ञशाला है उसमें आहुति देनी है। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को साकल्य बनाएं, जिसे हम सामग्री कहते हैं, साकल्य कहते हैं उसका हूत कर देना चाहिए। मेरे प्यारे! हृदयरूपी जो यज्ञशाला है जिसे हम यहाँ हृदय रूपी गुफा भी कहा गया है जहाँ संसार का याग हो रहा है। नाना प्रकार की आभाएं आ रही हैं, इन्हें ले करके प्रत्येक इन्द्रिय बेटा! स्वाहा कह रही है।

आज का वेदमन्त्र हमें क्या कह रहा है? कि हम अपने में योगेश्वर बनें, अपने में हम महान् बनने के लिए याज्ञिक बनें, क्योंकि हृदय से बेटा! संसार का श्रोत्र उत्पन्न होता है। मानव हृदय से ही माता को जानता है। हृदय से ही श्रद्धा उत्पन्न होती है। हृदय से ही मानव उदार बन करके अपने को प्रभु को अर्पित कर देता है। समर्पित कर देता है। इसीलिए तेरा हृदय पवित्र होना चाहिए। हृदय में ही मुनिवरों! याग हो रहा है। उससे प्रजापति की उत्पत्ति हो रही है।

हृदय ही मुनिवरों! यज्ञशाला है। इससे संसार ब्रह्मयाग करता रहता है। पुत्र याग करता रहता है। नाना प्रकार के यागों का चयन होता रहा है। मेरे पुत्रो! आज का हमारा वाक्य कोई विशेष नहीं है। यह उच्चारण करने के लिए हम आए हैं कि हमें हृदयग्राही बनना चाहिए। हमें हृदय में महत्ता को लाना चाहिए। अब मैं विशेष चर्चाएं प्रकट नहीं करूंगा। मेरे प्यारे! महानन्द जी कुछ सूक्ष्म सा समय लेना चाहते हैं।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे श्रोत्रीय समाज! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव त्याग की चर्चाएं कर रहे थे। जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी जा रही है उस स्थली को दृष्टिपात करते हुए मेरा हृदय प्रसन्न हो रहा था। क्योंकि प्रत्येक मानव के हृदय में श्रद्धा की आभा मुझे प्रतीत होती रही है। मैं आज यज्ञमान के समीप जाना चाहता हूँ। याग में जो यज्ञमान होता है वह याग का प्राण कहलाया जाता है। जैसे मानव के शरीर में पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी प्रकट कराया। मानव के शरीर में दय प्रधान है और हृदय में श्रद्धा प्रधान है। इसी प्रकार यज्ञमान जो श्रद्धामयी होता है वह यजशाला का, यज्ञ का हृदय कहलाया गया है। तो वह जो हृदय

है वही महान और पवित्रता में परणित होता रहा है। हे यज्ञमान! तू द्रव्य का सदुपयोग कर रहा है। जिस ग्रह में द्रव्य का सदुपयोग होता है, वह गृह स्वर्ग बना करते हैं। वह गृह स्वर्ग कहलाते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे वर्णन कराते रहते हैं कि यज्ञमान का गृह स्वर्ग से भरण होता रहता है। हे यज्ञमान! मैं तुम्हारे सौभाग्य की कामना करता रहता हूँ। तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे और महान और पवित्र कार्यों में गृह में तेरे द्रव्य का सदुपयोग हो। आगे आने वाला जो समाज है, आगे आने वाली जो पुत्र पुत्रियां हैं वह महत्ता सुचरित्र, मानवीय दार्शनिक और वैदिक मर्यादा की रक्षा करने वाले हों जिससे यह समाज ऊचा बनता रहे। आज मैं यह वाक्य उच्चारण करने आया हूँ।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो बहुत ऊची वार्त्ताएं प्रकट कीं। आज मैं उस स्थली के सम्बन्ध में जहाँ यह प्रिय याग हो रहा है, मैंने वह काल भी इस भूमि का दृष्टिपात किया है जिस काल में 22 लाख की जनगणना इस वरनावतपुरी की होती थी। यह भूमि, बहुत सी भूमि नदी के प्रवाह में चली गयी। यह नगर बहुत दूरी तक आभायित रहा। परन्तु वह भी समय स्मरण रहा है जिस समय यहाँ महाराजा द्रोण ने ब्रह्मचारियों को शिक्षा प्रदान की थी। मुझे वह काल भी स्मरण है जबी भीम विज्ञानशालाएं और घटोतकच्द अपने यन्त्रों में विद्यमान हो करके वायु मण्डल की यात्रा करता रहा। वह काल भी स्मरण है जब महाराजा परीक्षित के काल में इस भूमि पर न्यायालय रहा। न्याय भी होता रहा। वह काल भी स्मरण है पाण्डयत्व एक दूत नाम के राजा थे उनका राज्य हुआ और उस राज्य की मुख शालाएं यहाँ कहलाती थीं जा अग्नि में नष्ट हो गई इसके पश्चात् यहाँ श्मशान भूमि रही। अब मैं जो यागों की ध्वनियां दृष्टिपात कर रहा हूँ और जो मैं वैदिक ध्वनि और प्राचीन आभा में रमण करने वाला शब्द है इसे भी मैं दृष्टिपात कर रहा हूँ। हमारा सौभाग्य है क्योंकि भूमि का अपने अपने समय पर उत्थान होता रहता है। समय आता रहता है उत्थान के मार्ग पर चलता रहता है। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन करते हुए कहा था कि याग जो संसार ऐसा है कि यह रूढ़ियों की आभा में जो गति कर रहा है, परणित हो रहा है। रूढ़ियां ही

मानव को नष्ट करने वाली हैं। यह जो समय समय पर अग्नि के प्रकोप होते रहते हैं, वह समय दूरी नहीं है जब इन रूढ़िवादियों में भी अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी क्योंकि रूढ़ियां समय समय पर नष्ट हो जाती हैं।
जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने धर्म के सम्बन्ध में कहा है, धर्म केवल मावीय धर्म कहलाता है। मानव धर्म क्या है? प्रकाश है। प्रकाश ही संसार में उज्ज्वल रहता है। अन्धकार नष्ट हो जाता है। आज जब मैं यह विचारता हूँ एक बुद्धिमान एक रूढ़िवादी, एक पोथी का निर्माण कर रहा है, उसको ईश्वरीयकृत कह रहा है। जब उसका अध्ययन किया है अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि वह ईश्वरीयकृत नहीं है। एक उपनिवेश के नाते हम उसकी गणना करते रहते हैं। परन्तु उस लेखनी में अशुद्धियां छा गई हैं और उन अशुद्धियों से वह पोथी नष्ट हो जाती हैं। वैज्ञानिक तथ्य समाज में आते हैं। विज्ञान ऊची ऊची उड़ान उड़ने लगता है। यह समाज अकृत बन जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आधुनिक काल का जगत् विज्ञान की उड़ान उड़ रहा है। विज्ञान की उड़ान उड़ने का मैं विरोधी हूँ नहीं। विज्ञान मानव का मानवीय कर्त्तव्य कहलाता है। विज्ञान एक मानवीयता की आभा कहलाता है।
विज्ञान राष्ट्र का प्राण माना गया है। विज्ञान ही लोक लोकान्तरों की माला को गणित करने लगता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव विज्ञान की महत्ता नित्य प्रति वर्णन करते रहते हैं। मैं आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को यह उच्चारण कर रहा हूँ, समय समय पर जो तुम भविष्यवाणी करते हो अपने अनुमान की चर्चा करते हो, प्रजा को भय में परणित नहीं करना चाहिए। राजा के राष्ट्र में प्रजा में भय हो जाता है। उसकी आत्मा का हनन हो जाता है। आत्मा के हनन होने पर निष्क्रय बन करके वह समाप्त हो जाता है। राष्ट्र की राष्ट्रीयता समाप्त हो जाती है। आधुनिक काल का जो विज्ञान है पूज्यपाद! वह समाज को भय दे रहा है। अब जो मय आ रहा है, एक राशि पर ग्रह आ गए हैं। एक राशि पर ग्रह आना ही समाज का अन्त हो जाना है।
कुछ भाग समाप्त हो जाएंगे। मैंने कल भी इन वाक्यों की चर्चाएं कीं। तो मैं कह रहा हूँ कि कौन कौन से ग्रह हैं जो एक ही सूत्र पर एक ही राशि पर आ रहे हैं? उसमें मंगल

है, बुद्ध है, शनि है, श्रोति है, तृती है, जमदकेतु है यह नाना प्रकार के मण्डल जो एक पृथ्वी कहलाती है, एक राशि पर, एक ही रेखा पर आ रहे हैं। तो एक रेखा पर तो यह आते ही रहते हैं। कोई आश्चर्य का वाक्य नहीं है। वह रेखा पर जब आते हैं तो आते रहते हैं, परन्तु उससे समाज का भाग नष्ट नहीं होता उनका प्रभाव इस समय बुद्ध पर जा रहा है। बुद्ध मण्डल में नाना प्रकार के आक्रमण हो सकते हैं। परन्तु यह भी अनिवार्य नहीं है। क्योंकि यह जो मानव की आभा है पृथ्वी मण्डल की छाया बुद्ध पर जा रही है, बुद्ध की छाया मंगल पर जा रही है, मंगल की छाया शनि पर जा रही हैं, शनि की छाया त्रेतकेतु पर जा रही है, .ेतकेतु की छाया चन्द्र पर जा रही है, चन्द्र की छाया पुष्प पर जा रही है।

पुष्प नक्षत्र की छाया ध्रुव पर जा रही है, ध्रुव की छाया रोहिणी केतु नक्षत्र पर जा रही है। रोहिणीकेतु नक्षत्र स्वाति नक्षत्र को प्रभावित कर रहा है। यह चक्र तो प्रभु! का एक ब्रह्माण्ड कहलाता है। इस ब्रह्माण्ड में एक दूसरा मण्डल, एक दूसरे मण्डल को प्रभावित करता रहता है, दैवी प्रकोप भी होते रहते हैं, अनावृष्टि अतिवृष्टि में यह समाज परिवर्तित होता रहता है। परन्तु आधुनिक काल का वैज्ञानिक अभी इतना नहीं जानता कि बृहस्पति के अन्तर्ग कितने सूर्य गति कर रहे हैं उनकी भी गणना तुम नहीं कर सकते। पृथ्वी जितनी सूर्य की परिक्रमाएं कर रही है उनमें भी तुम्हारा अधूरापन है, तो एक राशि वाले धाराओं को जानने वाले, प्राण के गति करने वाले वैज्ञानिक कहलाते हैं। आज मैं विशेषता में ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचारना यह है, हे भोले प्राणियों! वैज्ञानिको! तुम राष्ट्र को पामर करने की इच्छा न प्रकट करो। तुम विज्ञान को जानो। तुमने जाना है प्रजा को भयभीत न करो। तुम्हारे राष्ट्र का प्राण चला जाएगा। राष्ट्र का प्राण जीवन तब ऊचा बनता है जब प्रत्येक मानव स्वतन्त्र रूप से भ्रमण करता है। स्वतन्त्र रहता है। निर्भय रहता है। मेरी प्यारी पुत्री राष्ट्रके एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण करने वाली हो। माता पुत्री और भौजाई के दृष्टिपात करने वाला राष्ट्र का प्राणी होना चाहिए। परन्तु उस काल में राष्ट्रीय आभा मानव के जीवन में प्रवाहित होती रहती है।

मुझे पुरातन काल में राम का काल स्मरण आता है। राम के काल में जब लंका को

विजय करने के पश्चात् राम राज्य की स्थापना हुई। राजा के राष्ट्र में विवेकी पुरुषों का गठन हुआ। विवेकी पुरुषों ने राम से यही कहा कि प्रत्येक मानव चरित्रवान होना चाहिए। तो चरित्रवान कैसे हो? आभा वाला कैसे हो? मुनिवरों! राजा के राष्ट्र में तीन वस्तुएं होनी चाहिए। याग, संगठन, संगतिकरण जिसे कहते हैं। और दानेषु। राजा के राष्ट्र में यह प्रवृत्ति होनी चाहिए। पृवत्ति को ले करके आभा में रमण करने वाला अपनी अभ्याम गतियों में रमण करता रहता है। आज का वाक् हमारा क्या कह रहा है? कि हम अपने में अपने को ही दृष्टिपात करते रहें। आज मैं पुरातनकाल में जब जाने के लिए इच्छा प्रकट करता हूँ तो ऐसा प्रतीत होने लगता ै जैसे मैं अपने में अपने को दृष्टिपात कर रहा हूँ। मुनिवरों! राजा राम ने, भगवान! राम ने यह नियमावली का निर्माण किया कि वैदिक साहित्य क्या कहता है? वेद का मन्त्र क्याक हता है? वेद का मन्त्र यह कहता है कि प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए। प्रत्येक गृह में पति पत्नी याग करें। बाल्य याग करें। विद्यालयों में याग होने चाहिए। जिससे मानव का चरित्र ऊचा बने। यह भगवान राम के यहाँ एक नियमावली बन गई थी। नियमावली का परिणाम यह हुआ कि राम का राज्य राम राज्य ही नहीं, वह विष्णु राज्य बन करके रहा।

जब मैं आधुनिक काल के विद्यालयों को दृष्टिपात करता हूँ, मैंने इससे भी पूर्वकाल में भी कहा है, ब्रह्मचर्य नष्ट होता जा रहा है। ब्रह्मचरि पूज्यपाद गुरुदेव जब उसकी व्याख्या करते हैं, ब्रह्म और चरि दो ही शब्द होते हैं। इनको मानव जानता नहीं। ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को और चरि कहते हैं प्रकृति को, इन दोनों को जानना ही मानव का ब्रह्मचारी बनना है। आज मैं अपने पूज्यपाद को यह निर्णय दे रहा हूँ, हमारे यहाँ जो शिक्षा प्रणाली है, वह अशुद्ध बन गई है। कौन कौन अशुद्ध बन गए हैं? गुरु शिष्य दोनों में अशुद्धवाद आ गया है। गुरु तो यह चाहता है कि शिष्य अज्ञानी तो तेरी पूजा होती रहे। गुरुजन तो यह चाहते हैं। शिष्य यह चाहता है मेरी सहज ही मुक्ति हो जाए। मैं मोक्ष में चला जाऊ। गुरु शिष्य दोनों ऐसी नौका में सवार हो गए हैं कि वह जल में समाप्त होने वाली है। वह उस प्रकृति की आभा में समाप्त होने वाली है। शिष्य गुरु के चरणों में विद्यमान हो करके दर्शन की चर्चा नहीं कर रहा है। शिष्य कहता है कि महाराज!

मुझे द्रव्य कैसे प्राप्त होगा? मैं द्रव्यपति कैसे बनूंगा? तू गुरु के चरणों में आत्मा की चर्चा, दर्शनों की चर्चा करने के लिए तत्पर रहे। तू द्रव्य की कल्पना क्यों कर रहा है? द्रव्य भी होना चाहिए, मैं इसका विरोधी नहीं। परन्तु जब तू दर्शनों की आभा में गति करेगा, ज्ञान होगा तो तेरे द्रव्य सा सदुपयोग होगा और द्रव्य जब सदुपयोग में आएगा तो द्रव्य तुझे ऊर्ध्वा में प्राप्त हो जाएगा। यह मानव को अपने जीवन में जानना चाहिए। जब मैं गुरुओं के द्वारा प्रवेश करता हूँ तो गुरुजन कहते हैं कि तुम्हारे मस्तिष्क में मेरा भुज गया, तुम्हारा कल्याण हुआ। यह कल्याण कैसे होगा? जब तक अपने प्राण का निरोध, एक एक स्थान में पातंजली कह रहे हैं कि हमें प्राण और अपान को जानना है, प्राण और अपान का निरोध करना है, प्राणों को एक सूत्र में लाना है। हमारी अन्तरात्मा में जो ज्ञान है वह उद्बुद्ध हो जाएगा और उद्बुद्ध होकर के इस संसार को दृष्टिपात करने लगेगा। यह संसार दृष्टिपात आने लगेगा उसी को हम अन्तर्मुख हो करके समाधि में उसको प्राप्त करेंगे। समाधि में जो भी प्राप्त होगा उसका नाम आनन्द है। आनन्द क्या है? संसार से छूट जाने का नाम, संसार दूरी जब चला जाता है तो परमात्मा के दर्शनों की आभा प्राप्त हो जाती है। तो इसीलिए मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ।

एक समय मुझे स्मरण है पूज्यपाद गुरुदेव जब अपनी स्थली पर जब रहते थे तो एक समय स्वाति राज्य से तीन जिज्ञासु चले। वह भ्रमण करते रहे। ब्रह्म की खोज में थे। वह चाहते थे कि ब्रह्म हमें प्राप्त हो जाए। भ्रमण करते हुए जब आश्रम में आए तो यह प्रश्न किया गया कि महाराज! पूज्यपाद! हम यह जानना चाहते हैं कि मानव का कल्याण कैसे हो सकता है? उस समय पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि तुम कितना जानते हो? उन्होंने कहा कि महाराज! हमने भ्रमण किया है, हम ब्रह्मचर्य से हैं, ब्रह्मवर्चोसि हैं, हम आगे जानना चाहते हैं। उस समय एक एक वर्षों तक गायत्री छन्दों में उन्हें प्रवेश करा दिया। गायत्री छन्दों का पठन पाठन होता रहा। एक वर्ष के पश्चात् उन्होंने कहा, तुमने क्या जाना? उन्होंने कहा प्रभु! हमारे कुछ प्रश्न हैं। उन्होंने कहा क्या प्रश्न हैं? महाराज! इस संसार का जो सूत्र है वह क्या है? तो पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा इस संसार का

कोई सूत्र है तो वह प्राण है। प्राण ही सूत्र कहलाता है, जिस प्राण के संसार बंधा हुआ है, कटिबद्ध हो रहा है, माला की भांति धागों का सूत्र बन करके एक माला बन रही है। वह एक वर्ष तक अध्ययन करते रहे उसके पश्चात् बारह वर्षों तक कन्दराओं में अध्ययन और योगाभ्यास करते रहे। वही जिज्ञासु वही महापुरुष अपने नाना प्रकार के जन्मों की तरंगों को जानने लगे।

तो आज जब मैं आधुनिक काल के गुरुओं से यह कहता हूँ कि तुम जो शिष्यों का निर्माण कर रहे हो क्या तुम अपने जीवन को जानते हो? जीवन में कितनी इन्द्रियां हैं? ज्ञान इन्द्रियां, कर्म इन्द्रियों का क्रिया कलाप क्या है? तो उसमें यह अधूरा ही प्राप्त होता है। मैं इस वाक्य को इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि मानव को अपने में ज्ञानी बनना चाहिए। ज्ञान के क्षेत्र में उसको क्रियात्मक होना चाहिए। नम्र होना चाहिए प्रभु के राष्ट्र में। परन्तु आधुनिक काल के शिष्यों से यदि यह कहा जाए कि तुम एक वर्ष तक गऊओं का पालन करो तो काई शिष्य नहीं बन पाएगा। सर्वस्व शिष्य अपने गृह को चले जाएंगे। ब्रह्मणे व्रतः देवः एक वर्ष तक गऊ का पालन करना क्या है? गऊ का पालन करना है, गऊ नाम इन्द्रियों का है। इन्द्रियों के विषय को जानना ही यह गऊ की सेवा करनी है। आध्यात्मिक स्वरूप यह बना परन्तु बाहरीय जगत् में गऊ नाम जो दुग्ध देने वाला पशु है, उसकी जितनी भी क्रिया होती हैं, वह महान् होती हैं। वायु मण्डल को भी पवित्र बनाती है। उन गऊओं की सेवा करना, उनका पालन करना, विवेकपूर्वक बाहरीय जगत् की वह सेवा है। गऊ नाम प्रजा को कहा गया है। प्रजा की सेवा करना भी गऊ सेवा कहा गया है। गो वर्धानि गऊओं का पालन कहा जाता है। गऊ नाम पृथ्वी का है। इस पृथ्वी के ऊपर वैज्ञानिक बनना, पृथ्वी के गर्भ को जानना भी हमारे यहाँ गो का पालन कहा गया है।

आज मैं इस सम्बन्ध में विशेषता तुम्हें देने नहीं आया हूँ। यह तो पर्यायवाची शब्द हैं। पूज्यपाद इनकी व्याख्या करते रहते हैं। आज मैं इनकी व्याख्या करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने आया हूँ, मेरी प्यारी जो माताएं हैं, हे माता! तू संसार में मल्दालसा बन। कामधेनु बन करके संसार का उत्थान कर। मेरी प्यारी माता! आज तू संसार में

महान् तब बनेगी, जब तेरे गर्भस्थल से महान् पुत्रों! का जन्म होगा। चरित्रवानों का जन्म होगा। जब मैं यह दृष्टिपात करता हूँ आज का मानव पुत्रियों के श्रृङ्गार को अनायास ही हनन करना चाहता है तो मैं आश्चर्यचकित हो जाता हूँ। मैं इस संसार को दृष्टिपात करता रहता हूँ ब्रह्मचारी, माता, बहन और भौजाई की दृष्टि से संसार को दृष्टिपात करने के लिए तत्पर नहीं रहा है। वह इतना धृष्ट बन गया है, ब्रह्मचर्य उसका इतना दूषित बन गया है, विज्ञान के दुरूपयोग के कारण कि मन पर उसका संयम नहीं रहा।

विचार है, हे माता! तुझे तपस्वी बनना है। तपस्वी बन करके तपस्वी सन्तानों को जन्म देने से तेरे गर्भाशय को लज्जित करने, घृणित करने वाला पुत्र तेरे गर्भ से उत्पन्न नहीं होना चाहिए। जो पुत्रियों के श्रृङ्गार को हनन करने वाला हो, ऐसा जो पामर ब्रह्मचारी है, ऐसा जो पामर मानव है, राष्ट्रीय व्यवस्था से, उसे नष्ट कर देना चाहिए। आज मैं विशेषता देने नहीं आया हूँ विचार यह देने के लिए आया हूँ कि समाज में कुरीति नहीं रहनी चिहए। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि याज्ञिक होने चाहिए। यज्ञमयी समाज होना चाहिए। क्योंकि याग किसे कहते हैं? इन्द्रियों को संयम में लाने का नाम भी याग है, यहाँ अग्निहोत्र करने का नाम भी याग है। राम के काल में याग होता रहा है। याग का परिणाम यह होगा कि महाराज! के राष्ट्र में विवेक और कर्त्तव्य होता रहेगा। परन्तु जब तक समाज नाना रूढ़ियों में विभक्त होता रहेगा तब तक धर्म का पालन नहीं हो सकता समाज में। हम तब तक धर्म को नहीं जा न सकेंगे जब तक राजा धर्म का निर्णय करने वाला न होगा। इन रूढ़ियों का निर्माण करके धर्म एकोकी होना चाहिए। जिससे समाज में शान्ति की स्थापना हो। जब तक नाना प्रकार की रूढ़ि बनी रहती हैं राष्ट्र में समय समय पर स्थली स्थली पर रक्त भरी क्रान्तियों का सन्देह बना रहता है। विचारों में इतनी घृणा हो जाती है, घृणा के कारण यह समाज अग्नि के मुख में प्रवेश करता रहता है। केवल धर्म ही के कारण, क्योंकि रूढ़ि जो हैं यह धर्म को नष्ट करती हैं। राजा की व्यवस्था को समाप्त करती है। राजा उन रूढ़ियों में ही अपने विचार को

निष्पत्त कह करके शान्त कर लेता है।

यह आज का मैं विचार दे रहा हूँ। मैं उस विचार पर जा रहा हूँ जिस स्थली पर याग हो रहा है मैं अपने को सौभाग्यशाली स्वीकार कर रहा हूँ। जिन स्थलियों पर मानवीयता को स्वीकार नहीं किया जाता था, आज वहाँ सुन्दर वेद ध्वनि हा ेरही है, गायन हो रहा है। ब्रह्मा बन करके अपना उद्गीत गा रहा है। होता बन करके आहुति दे रहा है। और अध्वर्यु अपने द्रव्य को अस्वताम् कर रहा है। यज्ञमान स्वाहा कह करके आहुति दे करके इस भूमि को महान् बना रहा है। यहाँ नाना प्रकार की प्रतिभाओं का जन्म होता रहा है। रूढ़ि के सूक्ष्म विवेकी बन जाओ उसी को नष्ट करने की विचारधारा बना लेता है। अरे, मानव! तू मृत्यु तो दे सकता है। हम तब जाने हे भोले प्राणी! तू जीवन भी देने वाला बन। जब तू जीवन नहीं दे सकता तो तू मृत्यु कैसे दे रहा है? प्राणी को हनन करने में क्यों लगा हुआ है? आज तुम्हें विचारना होगा कि हमें जीवन भी किसी को देना है, जीवन देने वाले बनो। जीवन हनन करने वाले न बनो।

राष्ट्रीय व्यवस्था होनी चाहिए। जिस राजा के राष्ट्र में पशु हनन, हिंसा होती रहती है उसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्रीय व्यवस्था समाप्त हो जाती है। जिस राष्ट्र में मेरी पुत्री अपने श्रृंगार को हनन करा करके अपने उदर की पूर्ति करती है उस राष्ट्र को नष्ट कर देना चाहिए। वह राजा राजा नहीं और वह राष्ट्र राष्ट्र नहीं। मैं विशेष चर्चाएं देने नहीं आया हूँ। विचार यह कि समाज में प्रत्येक प्राणी की रक्षा होनी चाहिए। प्रत्येक प्राणी निर्भय होना चाहिए। आततायियों को दण्डित करना चाहिए। यह आज का विचार मैं देने आया हूँ जिस स्थली पर आज यह याग हो रहा है वह काल था जब 22 लाख की जनगणना यहाँ की कहलाती थ्ज्ञी उस काल में प्रजा में एक महत्ता रही। यह वही भूमि है जहाँ लाक्षागृह का निर्माण हुआ, जहाँ दुर्योधन ने, दुर्बुद्धि ने पाण्डवों को नष्ट करने के लिए गृह का निर्माण किया था। नाना प्रकार की धातुओं का वह गृह था जिसमें अग्नि प्रदीप्त हो गई परन्तु पाण्डव सुरंग के मार्ग से हो करके चले गए। उनके प्राणों की रक्षा हो गई। विचार विनिमय यह कि हमें अपने मानवत्व की रक्षा करनी चाहिए और यह जो याग हुआ यागाम ब्रह्मणेः देवः मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न हो गया। प्रसन्न

हो करके हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तुम प्रसन्नता को प्राप्त होते रहो। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से अब आज्ञा पाऊगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! मेरे प्यारे! महानन्द जी ने राष्ट्रीय वेदना के ऊपर कोई विषय ऐसा नहीं जिसको यह उच्चारण न कर रहे हों। जैसा महानन्द जी ने कहा, हे यज्ञमान! तेरे जीवन की आभा महान् और पवित्र प्रभु मनोइच्छा पूर्ण करने वाले हों। ऐसा वाक्य हम उच्चारण कर रहे हैं। समय मिलेगा शेष चर्चाएं हम प्रकट करेंगे। आज के विचार उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारा जो हृदय है यह यज्ञशाला है। याग होना चाहिए। इन यागों से समाज ऊचा बनता है। राष्ट्र में पवित्रता आती है। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। लाक्षागृह, बरनावा।

२२ 13 05 1982 पुष्प 39 महानन्द जी के प्रश्न उत्तर

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है। क्योंकि यज्ञ ही उसका आयतन माना गया है। तो वह अपने गृह में वास करता रहता है। ये ब्रह्माण्ड रूपी जो, एक गृह बना हुआ है। उस गृह का स्वामी वह मेरा प्रभु कहा जाता है। वह कैसी अनुपमता में रहता है? मानो वह स्वामी बन करके, गृह में वास करके गृह को चला रहा है। गति करा रहा है।

पूज्य महानन्द जीः भगवन! मैं आपसे कोई प्रश्न करने वाला हूँ। सम्भवः वरुणो वृत्यम् पंचां यज्ञम् ब्रहे वृताम् स्वस्ति रुद्रा। पभु! आपने बहुत पूर्वकाल में, कुछ स्वस्ति यागों का वर्णन किया था, जिसमें स्वस्ति याग और वाजपेयी याग दोनों का महत्व आपने

वर्णन किया था। परन्तु उनके सम्बन्ध में, मैं आज आपसे पुनः कुछ प्रश्न कर रहा हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा! तुम ऐसा प्रश्न क्यों कर रहे हो?

पूज्य महानन्द जीः समय वृतान्त बन्धनम्।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य.... बेटा! स्वस्ति यागों के सम्बन्ध में, वाजपेयी और अग्निष्टोम और ये तीन याग कहलाते हैं। स्वस्ति याग उसे कहते है। जहाँ रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण को त्याग करके उपराम होने वाला याग है। उसे स्वस्ति याग कहते हैं। वह स्वस्ति याग कहलाता है, जिसको ऋषि मुनि करते हैं। जिसको ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को निहारते रहते हैं और वह उस याग को करते हैं। पूर्वाभिमुख हो करके, सूर्य की किरणों के साथ अपनी स्वस्ति को लगाते हैं और उसके द्वारा जो याग होता है उसे स्वस्ति याग कहते हैं।

पूज्य महानन्द जीः क्या इसका स्पष्टीकरण नहीं हो सका है।

पूज्यपाद गुरुदेवः सम्भवति स्पष्टीकरण यह है कि अपनी जो प्राण की तरंगें हैं, जो श्वास स्वतः गति कर रहा है उस गति का समन्वय सूर्य की किरणों से समन्वय किया जाता है। परन्तु उस समय एक आध्यात्मिक रूप बन जाता है।

पूज्य महानन्द जीः तो क्या प्रभु! इसका भौतिक रूप क्या है?

पूज्यपाद गुरुदेवः भौतिक रूप अश्विनी कहलाता है। यज्ञमान! तुम्हें तो यह प्रतीत होगा, जिस काल में विभाण्डक ऋषि के यहाँ एक अनुसन्धानशाला का निर्माण हुआ था और उस यज्ञशाला के निर्माण में, एक अनुसन्धानशाला का भी निर्माण हुआ। और उसमें मानो वृष्टि याग, पुत्रेष्टि याग, त्रि अनवासन याग इन यज्ञशालाओं का निर्माण किया गया था, यह वह काल तो तुम्हें प्रतीत ही होगा। परन्तु उस काल में जब स्वस्ति और अग्निष्टोम दोनों यागों को प्रदीप्त किया गया, तो उसके कर्म काण्ड के कुछ मन्त्रों का अध्ययन हुआ और वह महर्षि विभाण्डक और महर्षि वैशम्पायन के द्वारा हुआ था। तो तुम्हें यह स्मरण होगा, वृष्टियाग के लिए, और पुत्रेष्टि, अग्निष्टोम और स्वस्ति याग, अब उन यागों का जो भौतिक स्वरूप बनता है, भौतिक स्वरूप में लाने के लिए वह

वैज्ञानिकों का विषय है।

तो राम के काल में बेटा! तुम्हें तो प्रतीत होगा, क्या राम के जो महामन्त्री थे हनुमान जी, वह उन यज्ञशालाओं में निमन्त्रित किए गए थे और उस समय वह याग हुआ। उन्होंने सूर्य की किरणों को जानने के लिए त्रिकोण उन्होंने एक अष्टांग बनाया, त्रि कोण। क्योंकि सूर्य की जो किरण होती हैं, उनकी धाराएं होती हैं उनमें त्रिकोण चलता है। वह जहां जहां भी सूर्य की किरण, जैसे सूर्य की किरण पृथ्वी के गर्भ में, जल को जब शक्तिशाली बनाती हैं तो एक ऋणात नाम की किरण होती है। वह ऋणेतकेतु नाम की जो किरण होती है, वह जल में जाती है। पृथ्वी के गर्भ में। तो उसका मुख होता है त्रिकोण और त्रिकोण बन करके मानो जब वह त्रिकोण बन करके पृथ्वी के गर्भ में, वसुन्धरा के गर्भ में जल को शक्तिशाली बनाया जाता है और जल को शक्तिशाली बना करके मानो उन किरणों को उन्होंने यन्त्रों में लाने का त्रिकोण एक कृताक यन्त्र उन्होंने निर्मित किया था जो त्रिकोण यज्ञशाला में आहुति देता रहता है और उसमें सुगन्ध आती रहती है, उसमें धाराओं की उपलब्धि होती है और वह धाराएं सूर्य की किरण में मिश्रित हो करके उन किरणों को वैज्ञानिक अपने यन्त्रों में लाता है। उन यन्त्रों में यह विशेषता है सूर्य की किरणों को जान करके जैसे वह जल पृथ्वी का जल त्रिकोण से शक्तिशाली बनाया जाता है। वही जल शोधन हो करके यन्त्रों का कार्य करता है, यन्त्र देखो, वाहन बन करके गति करता है। इसी प्रकार वही सूर्य की किरण जब जल को शोधन करती है, वही नग्न हो करके यन्त्र में जब प्रवेश होती है, तो बेटा! वह मानो देखो, उनको एकत्रित करके कुछ ही किरणों को एकत्रित करने से वाहन गति करने लगता है, उन किरणों के द्वारा। तो ऐसे यन्त्रों का निर्माण महर्षि विभाण्डक मुनि के यहाँ हुआ था।

परन्तु रहा यह कि जमं ब्रीहि कृतं सुता परन्तु देखो, यज्ञमान! जैसे तुमने अभी प्रश्न किया है क्या त्रिकोण अप्रात क्या होता है? त्रिकोण जो अप्रात है, यह जो संसार है यह त्रिकोण कहलाता है। इसमें रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण उससे कटिबद्ध होने वाले यह चतुष आभा कहलाती है। मानो देखो, इसी प्रकार जैसे त्रिकोण में जैसे त्रिगुण कहलाए जाते हैं, अब त्रिगुणों में क्योंकि ही तीन प्रकार के परमाणु होते हैं। तीन प्रकार

के परमाणु भी त्रिकोण कहलाते हैं। जैसे एक परमाणु है देखो, पार्थिव जो गुरूतव को धारण कर रहा है। एक परमाणु है जो मानो देखो, जल से सम्बन्धित है, वह शीतलता को प्रदान कर रहा है और एक परमाणु है जो तेजोमयी कहलाता है। इन दोनों को अपने में धारण करता है घारण करके और इसकी जो गतियाँ गति करती रहती हैं वह दक्षिणाएं कहलाती हैं तो यह चतुषकोण बन गया, तो यह त्रिकोण बन करके चतुषकोण बनता है जब इसमें दक्षिणाय का समन्वय हो जाता है। तुम मुझे बहुत गम्भीर विषय में ले गए हो पुत्र! परन्तु कोई वाक् नहीं। इसका मैं निर्णय कुछ किए देता हूँ बहुत पूर्व काल में इस विषय को लिया है। यह विषय तो बहुत गहन है, परन्तु इस गहन विषय को भी विशुद्ध रूप से लिया जा सकता है। तो वह त्रि अणवत् कहलाता है। परन्तु जब वैज्ञानिक इसका निर्माण करते हैं। जैसे विभाण्डक और भारद्वाज मुनि के यहाँ भी प्रायः ऐसा ही होता रहा। तो उन परमाणुओं को जब वह गति करते हैं उन गति किए हुए परमाणुओं को जब यन्त्रों में लिया जाता है। यन्त्रों में भी उसी प्रकार की गति करते हैं। परन्तु गतियाँ जो हैं वह ध्रुवा और ऊर्ध्वा कहलाती हैं। तो जैसे गुरूतव की जो गति है वह ध्रुवा है, और तेजोमयी जो परमाणु हैं उनकी गति ऊर्ध्वा है। दोनों का समन्वय हो करके, ध्रुवा और ऊर्ध्वा बन करके और मानो देखो, शीतल और अश्वान गति को मानो जो पृथ्वी में विश्राम करने वाला परमाणु है। उस परमाणु को अपने में धारण करने लगती है और धारण करके इनकी गति पुनः दक्षिणाय बन जाती है।

पूज्य महानन्द जीः भगवन! यह दक्षिणाय क्या होता है?

पूज्यपाद गुरुदेवः दक्षिणाय स्वस्ति कहलाता है। यह दक्षिणाय स्वस्ति कहलाता है जहाँ ये अपनी धाराओं को ले करके गति करता है और गतिशील हो करके उसमें प्रवेश कर जाता है। प्रवेश को दक्षिणाय कहते हैं और मानो गति अनवासन कहती है। परन्तु इन दोनों की गतियों से एक गुरूतव पृथ्वी में विश्राम करने वाला परमाणु और तेजोमयी परमाणु इनको ले करके वह दक्षिणाय में गति करके वह अन्तरिक्ष को प्राप्त हो जाता है। जिसको हम द्यौ कहते हैं। वह द्यौ में ओत प्रोत हो जाता है, जहाँ अनन्त परमाणुओं

का भण्डार माना गया है, उसमें वह गति कर जाता है।

पूज्य महानन्द जीः क्या भगवन! यह जो त्रिकोण यज्ञमान यज्ञशाला में याग करता है तो त्रिकोण का क्या अभिप्रायः है?

पूज्यपाद गुरुदेवः त्रिकोण का अभिप्रायः यह है कि अब इसमें आयुर्वेद भी आता है, इसमें आयुर्वेद भी आता है विज्ञान भी आता है और इसमें कर्मकाण्ड की और भी धाराएं आती हैं, जैसे एक यज्ञमान त्रिकोण यज्ञशाला में विद्यमान होता है तो वह पूर्वामुख हो करके आज्या आहुति देता है। आज्या आहुति जब देता है तो पृथ्वी में विश्राम करने वाला जो परमाणु है, उसको अग्नि की धुकधुकी से मन्त्रों की धारणा से मानो देखो, उसको ऊर्ध्वा में ले जाता है और वह उसकी गति भी देखो, इनमें रमण तेजों में रमण करके उसकी भी गति दक्षिणाय को प्राप्त होती है। परन्तु देखो, जैसे एक रुग्ण प्राणी है, आयुर्वेद का आचार्य कहता है, आयुर्वेदाचार्य कहता है कि त्रिकोण तुमने याग का निर्माण किया है तो शरीर में तीन दोष, रूप कहलाते हैं, त्रिवर्धा कहलाता है, यह शरीर तो त्रिवर्धा में जैसे तेज है, तेजोमयी है, वायुमयी है, और इसमें कफोवृति प्रधानता में रहती है। तो त्रिवर्धा किसे कहते हैं? और भी साधरण रूपों से माना जाए जैसे वायु, रजतम् और तेजोमयी, मानो ये तीन प्रकार के परमाणु बने जैसे ग्रहा स्वस्ति गुरूतव जैसे वृणाति अस्वेतण ये तीन आभा बनीं। तो इसी प्रकार वैद्यराज जो हैं, एक नाड़ी की आभा को ले करके तीनों दोषों को जान लेते हैं। जब भी कोई दोष आ जाता है तो उस दोष के आने पर मानो, देखो, उसको निवारण करने के लिए यज्ञमान एक यज्ञशाला का निर्माण करता है। क्योंकि मानव के शरीर में, जो रसना त्रिकाठ और दुग्धि के निचले विभाग में, लोरियों के निचले विभाग में जो त्रिकोण बना हुआ है इससे मानव का जीवन संचालित होता है। जैसे मेरे पुत्र! तुम्हें तो प्रतीत होगा शविश्चत कहलाता है। वह जो दोनों शविश्चत हैं वह त्रिकोण कहलाते हैं। परन्तु उनमें त्रिदोष हो जाते हैं। जैसे वायु है, पित जागनि जिसे कहते हैं और देखो, उसी के रूप में कफावृति कहलाता है जिसे हम रज कहते हैं। तो इन तीनों प्रकार के परमाणुओं को मानव सन्तुलनता में लाने के लिए वह याग करता है और एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके उसी प्रकार का वह

आहार बनाता है, उसी प्रकार का व्यवहार बनाता है और उसके पश्चात् वह याग करता है उस याग में भिन्न भिन्न प्रकार की समिधाएं होती हैं जैसे क्रीकिल की समिधा होती है। आँगानि समिधा होती हैं देखो, शेलकानिका समिधाएं होती हैं। पीपल की समिधाएं होती हैं। त्रिकाठ की समिधाएं होती हैं मानो इन समिधाओं के द्वारा एक समिधा जो पृथ्वी में परमाणु विश्राम कर रहा है, उसको जागरूक करना है तो तुम्हें क्रीकल के समिधाओं के द्वारा तुम्हें अग्नि को प्रदीप्त करना है। यदि तुम्हें तेजोमयी स्वस्ति में जाना है तो पीपल और आका की इन दोनों समिधाओं के द्वारा अग्न्नाध्यान करना होगा। परन्तु देखो, वही परमाणु उन समिधाओं के और सामग्री साकल्य के जो हैं। परन्तु जब उसमें स्वाहा कहा जाता है तो वही परमाणु मानव के शरीर में नासिका के छिद्र के द्वारा, नेत्रों के छिद्रों के द्वारा वह शरीर में जो नाना छिद्र हैं, त्वचा के द्वारा वह परमाणु आन्तरिक जगत में गति करते हैं। तो जैसे वायु मण्डल में परमाणु एक दूसरे परमाणु को दूषित को निगलता चला जाता है, विशुद्ध वातावरण उत्पन्न करता चला जाता है। इसी प्रकार मानव के शरीर में भी ये परमाणु मानो देखो, विशुद्धता को प्रदान करा देते हैं। इसके पश्चात् वह त्रिकोण वाला तीन प्रकार का प्राणायाम करता है। उसके पश्चात् जब वह प्राणायाम करता है। वह प्राणायाम में रेचकानि, कृतिकानी श्वंधनं मानो देखो, इसमें प्राण में एक ध्वनि होती है एक तो वह प्राणायाम होता है, एक रेचकानि होता है मानो देखो, स्थिर आभा में रमण करा देना है। उसके पश्चात् त्रिकाठ कहलाता है। तो यह जो प्राणायाम है इनके करने के पश्चात् मानव के शरीर का शोधन हो जाता है। मानव अपनी मानो देखो, इसको लगभग छह माह के करने पश्चात् मानव की जितनी भी कामनाएं होती हैं, कामवासना की प्रवृत्तियाँ होती हैं, इसके ऊपर यज्ञमान अधिपथ्य कर लेता है। उसे हम शारीरिक विजय याग कहते हैं। उसे शारीरिक विजय याग कहते हैं।

परन्तु मैं इस सम्बन्ध में कोई गम्भीरता में तुम्हें नहीं ले जाँऊगा। केवल विचार यह, क्या तुम्हारे प्रश्नों का मैं उत्तर दे रहा हूँ। श्वञ्जन, कृतिका, श्वंर्धन, वेणुकृतां, अस्वतिकेतु मानो देखो, इस प्रकार के मन्त्रों को तुम्हें वेदमन्त्रों में जानना होगा और जानकर के

इसके द्वारा विश्वसनीय याग करना होगा। तो इस प्रकार का जो याग है यह त्रिकोण कहलाता है। परन्तु देखो, चतुषकोण की आभा में ले आओ। चतुषकोण उसे कहते हैं वास्तव में याग तो त्रिकोण ही होते हैं। त्रिकोण में इसकी धाराएं चलती हैं। त्रिकोण वाला शब्द बन करके चलता है। त्रिकोण वाले ही परमाणु जल, अग्नि में वास करते हैं। त्रिकोण वाला जो याग है यह स्वस्ति कहलाता है। इसको स्वस्ति याग, विजय याग, अजयमेध याग, गो मेध याग, सोमकेतु याग, नाना प्रकार के यागों का कर्मकाण्ड उसके गर्भ में निहित होता है। परन्तु देखो, रहा यह कि आगे चल करके, जिसे चतुष्कोण है, ये देखो, दक्षिणाय का इसमें भाग और समन्वय कर लेते हैं। समन्वय कर तो यह चतुष याग बन जाता है। चतुष याग की जो धाराएं होती हैं। परन्तु वह द्यौ लोक को जाती हैं। यदि उसमें विशुद्धता है, शुद्धता है, यज्ञमान का हृदय पवित्र है तो देखो, वह धाराएं संसार के अशुद्धवाद को समाप्त करके द्यौ लोक को प्राप्त होती रहती हैं, परन्तु रहा यह कि आगे चल करके हम पञ्चकोण में जाते हैं। मानो पञ्चकोण इसीलिए कि हम एक भाग तो जल का निहित कर लेते हैं जिसको हम वरुण कहते हैं और एक पृथ्वी का भाग स्थित कर देते हैं और तृतीय जो भाग है वह जल का स्थित कर देते है और तेजोमयी देखो, जल का पृथ्वी का अग्नि का और वायु का और मानो देखो, ईशाण कोण का तो इसका मिलान करके हम पञ्चम बन जाते है। तो यह पांच कोण का यज्ञ कहलाता है। इसमें जो धाराएं उत्पन्न होती हैं, क्योंकि अग्नि जो है यह आभा कहलाती है। इस अग्नि में अग्नि सप्तजिह्वा वाली कहलाती है एक धारा का नाम देखो, शावन्य नाम की की धारा है और एक अग्नि का नाम विषधारिणी आभा है और एक जिह्वा का नाम शक्तिशालिनी है और चतुर्थ आभा का नाम शुन्नधनेनु कहलाती है। परन्तु परन्तु यह देखो, पञ्चजिह्वा वाली अग्नि कहलाती है। ये पञ्चजिह्वा वाली जो अग्नि है यह मानो देखो, पञ्च जो महाभूत है। पञ्च महाभूत कौन से हैं, जैसे पृथ्वी है, जल है, अग्नि है, वायु है और अन्तरिक्ष है, ये पांच पञ्चमहाभूत कहलाते हैं। परन्तु इन भूतों को त्याग दिया जाए तो अब देखो, दिशाओं को लिया जाता है। इसमें चार दिशाएं हैं और पञ्चम ईशाण कोण को मिला करके यह पञ्चम धारा बन जाती हैं। पञ्चमधारा बन करके जब यज्ञमान

इसमें आहुति देता है। तो यज्ञमान की आहुति देते ही मानो यह पञ्चजिह्वाओं की जागरूकता हो जाती है। इस पञ्च जो जिह्वाएं हैं अग्नि की यह पञ्च जो मानो देखो, पञ्च जो दोष कहलाते हैं मानो देखो, उनको विशुद्ध करने लगती है और उसमें अग्नि प्रचण्ड और विशेष हो जाती है। वह अग्नि का सम्बन्ध सीधा द्यौ लोक से होता है। तो हमारे ऋषि मुनि जब बेटा! इस याग को करते थे तो तुम्हें प्रतीत है जब इस पञ्चम याग को ऋषि मुनि करते थे तो मानो देखो, उनकी जिह्वाओं का सम्बन्ध इस अन्तरिक्ष से हो करके वायु में गति करता हुआ, यह पञ्च जो प्राण शरीर में वास करते हैं, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान यह पांच जो प्राण है इन प्राणों को शोधन किया जाता है। प्राण जैसे यह मानव के शरीर में गति करता है। ऐसे ही यह बाह्य जगत् में भी गति करता है, बाह्य जगत जो है यह भी पांचों ही प्राणों से सुगठित हो रहा है अथवा दसां प्राणों से भी सुगठित हो रहा है। गठित होता हुआ इनका अपना अपना विशेष गुण है। इन गुणां की चर्चा तो अब नहीं कर पाऊगा परन्तु विचार केवल इतना है कि यह जो पञ्चमकोण की यज्ञशाला है, इस यज्ञशाला में याग करने से अग्नि की सप्त जिह्वाओं को जानना है।

सप्तजिह्वा क्या है? मुनिवरों! देखो, जैसे एक शालिनी जिह्वा कहलाती है। शालिनी उसे कहते हैं जो मानव के और बाह्य जगत दोनों में तीक्ष्ण कार्य होता है और देखो, एक शक्तिशालिनी होती है, एक वह जिह्वा है जो शक्ति देती है। तृतीय जिह्वा का नाम त्रिवारीणी कहलाता है। वह त्रिदोषों को समाप्त करने वाली है। इसी प्रकार सिन्धवी मानो जो जिह्वा कहलाती है, वह नाना दिशाओं से और सिद्धाओं से मानो देखो, सिद्धियों को प्राप्त कराती है। इसी प्रकार जो पांचवीं धारा है, जिह्वा है वह हमें द्यौ लोक में ले जाती है। तो परिणाम क्या है पुत्रो! इनका? क्या मानो देखो, यह अग्नि है। अग्नि की जिह्वाओं को जानना और दिशाओं का सम्बन्ध क्या है? जैसे प्राचीदिग् है, दक्षिणी दिग् है, उदीचिदिग है मानो देखो, इसी प्रकार ईषाण कोण कहलाती है। ईषाण कोण से यह चारों दिशा कटिबद्ध हो रही हैं। इसीलिए इस दिशा में कलश का उत्थान होता है।

कलश को धारण किया जाता है।

पूज्य महानन्द जीः क्या भगवन! आधुनिक काल में चार कलश को यज्ञशाला के चारों भागों में परिणित किया जाता है क्या यह अशुद्ध है?

पूज्यपाद गुरुदेवः हाँ! असम्बन्दी ग्रतं ब्रहा असवे ये पुत्रो! मैं तो इस कर्म काण्ड को इतना नहीं जानता, परन्तु इतना जानता हूँ, जो कर्म काण्ड की पद्धति कहती है, एक कलश होता है, क्योंकि वरुण केवल एक ही दिशा में रहता है। वरुण केवल एक ही तत्त्व माना गया है। तो वरुण जो होता है। वह ईषाण कोण में, उस कलश की स्थापना होती है। परन्तु यह जो नाना कलशों की प्रथा है, यह किसी वैज्ञानिक रूप से हो सकती है। परन्तु कर्मकाण्ड की धाराओं में कहीं नहीं होती। एक ही कलश होता है। जो ईषाण कोण में रहता है। वह पश्चम अग्नि व्रात कहलाता है। परन्तु देखो, ऐसा मुझे कर्म काण्ड का प्रतीत है।

पूज्य महानन्द जीः तो क्या प्रभु! ये जो आधुनिक जगत में प्रायः ऐसा हो रहा है ईषाणाय, त्रिणाय, त्रिषाण, स्वस्ति जो यह जो चारों कोणों में कलश की स्थापना है, क्या यह होनी नहीं चाहिए।

पूज्यपाद गुरुदेवः नहीं, यह तो नही देखो, जल तो जितना भी परोक्षण जल जितना यज्ञशाला के समीप हो जाएं, उसमें कोई अशुद्धियाँ नहीं हैं। परन्तु मैं कर्म काण्ड की पद्धति से, कर्म काण्ड की आभा से प्रगट कर रहा था कि कर्म काण्ड ऐसा कहता है। रहा यह कि जल किसी भी कोण में जल की स्थापना हो सकती है। इसमें ऐसी कोई मानो वार्त्ता नहीं है। परन्तु रहा मैं उसको अशुद्ध क्यो कहूँ जो देवता है। देवता सर्वत्र विद्यमान होता है। परन्तु देखो, जहाँ याग जैसे जो परमपिता परमात्मा ने जल की स्थापना की है सृष्टि के प्रारम्भ में। वह ईषाण कोण का उन्होंने निर्धारित किया है। क्योंकि ईषाण कोण से दक्षिणाय को गति करती हैं उसकी धाराएं। तो समुद्र की ईषाण कोण है और देखो, द्वितीय उसकी जो कोण है वह मानो देखो, तवि अस्वाण कोण कहलाती है। परन्तु देखो, ईषाण कोण में देखो, जल का महत्व विशेष माना गया है। क्योंकि यज्ञमान पूर्वामुख होकर के जब यज्ञ करता है और अग्नि की जो तरंग हैं वह

सीधी देखो, अग्नि की जो धाराएं आती है वह पूर्व से आती है, पूर्व से जैसे अग्नि की धारा आई तो वह जल को ईषाण कोण से जल को स्पर्श करके यज्ञमान के मुखारबिन्दु पर उसकी धाराएं, धाराओं का समन्वय रहता है। उसकी धराओं का जो समन्वय है, परन्तु देखो, वह उसके मस्तिष्क को शीतल बनाती हैं। उसके मस्तिष्क में जो ग्रन्थियाँ मानो देखो, स्पष्ट नहीं हुई हैं, वह भी हो सकती हैं। जैसे जल का मन्त्र उच्चारण करते हैं। वरुणश्चम ब्रह्माः वरुणो ब्रहे व्रताम्, वरुणो दिव्याम् गतप्रह्वाः वरुण प्रह्वेः अस्वातमं ब्रह्मेः यज्ञाः मानो देखो, ये वेदमन्त्र का उच्चारण किया जाता है और वरुण को पुकारा जाता है। कलश की स्थापना करने से उसकी तरंगें सीधी मानव के मस्तिष्क को जाती हैं। प्राण से उसका समन्वय रहता है। जब प्राण से समन्वय रहता है तो उससे उसकी आभा भिन्न भिन्न प्रकार की तरंगें यज्ञमान के शरीर और उसकी जो धाराएं हैं मानो दक्षिणाय, उत्तरायण सबको प्राप्त होती हैं। इसीलिए देखो, हमारे यहाँ यह जो पश्चिम दिशा है, पूर्वामुख है यह प्रकाश में रमण कराता है।

पूज्य महानन्द जीः तो क्या भगवन! क्या पश्चिम में मुखारबिन्द किया जाए तो प्रकाश नहीं आता?

पूज्यपाद गुरुदेवः ऐसा क्यों? क्योंकि सृष्टि का विधान जैसा है, सृष्टि का जैसा चक्र है मैं उसके आधार पर तुम्हें उच्चारण करा रहा हूँ। परन्तु जैसे हम पश्चिम दिशा को मुखारबिन्द करते हैं। परन्तु जब करते है तो उसमें वहाँ वरुण रहता है। वहाँ अस्वातम् रहता है, और वहाँ कुबेर रहता है। कुबेर का अभिप्रायः यह कि जितना द्रव्य है, जितना धन है वह सब पश्चिम दिशा में वास करता है। वह पश्चिमाय कहलाता है, परन्तु उस को मुखारबिन्द करने से नहीं यह उदासीनता नहीं होती। इसमें कर्म काण्डी ऋषि मुनियों ने यह कहा है, कि पश्चिम दिशा जो कुबेर का भण्डार है। वह मानो पिछले विभाग में हो और देखो, दोनों भुजों से हम याग जैसे कर्मों में उसकी आभा प्रकाश में देते रहें। क्योंकि यदि द्रव्य का जीवन प्रकाशमय नहीं होगा तो यह प्रकाश यज्ञमान की मृत्यु कर सकता है। मृत्यु क्या है? क्या द्रव्य की लोलुपता में यह द्रव्य के अन्धकार में अविश्वसनीय

कार्य भी कर सकता है। तो इसमें यह भाव ऋषि मुनियों ने प्रगट किए हैं।

पूज्य महानन्द जीः तो क्या भगवन! उत्तरायण और दक्षिणायण में मुख करने से क्या हाँ दक्षिणाय में मुखारबिन्द करने से सोम की प्राप्ति होती है।

पूज्यपाद गुरुदेवः यह तो मैने पूर्व काल में कहा है। उस समय ब्रह्मा उसमें विद्यमान होता है, ब्रह्मा का वह स्थान है वह जो शब्द है, वह यज्ञमान को छूता हुआ मानो देखो, वह उत्तरायण को प्राप्त हो करके प्रकाश को होता हुआ वह दक्षिणाय को प्राप्त होता है। परन्तु कहीं शब्द दक्षिणाय को चलता है, कहीं उत्तरायण से दक्षिणायण को गति करता है। तो शब्दों की भिन्न भिन्न प्रकार की गतियाँ होती हैं। इसीलिए भिन्न भिन्न प्रकार के यागों का चयन ऋषि मुनियों ने किया है। परन्तु याग का जो मैं कर्म काण्ड उच्चारण कर रहा हूँ, बहुत पुरातन काल में इसका अध्ययन किया था। आज तो इतना समय नहीं जो पूर्ण रूपेण इन वाक्यों को प्रगट कर सकूँ। परन्तु केवल उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः हमारा यह है कि हम यह तुम्हें उच्चारण कर रहें है कि यह जो याग है, इस याग में बहुत प्रकार के भेद माने गए हैं नाना भेदन हैं। आज उन भेदनों में हम जाना नहीं चाहते हैं। विचार केवल यह, कि जैसे पञ्चकोण हैं, चतुषकोण है, पञ्चम है, सप्तकोण कहलाता है। ये जो इस मानव शरीर की जब प्रभु ने रचना की थी, तो इस शरीर रूपी यज्ञशाला में प्रभु ने सात ऋषियों का निर्माण किया। वह सप्त ऋषि कहलाता है। तो सप्तऋषि कौन से है? दो नेत्रों में विद्यमान हैं और दो नासिका के छिद्रों पर और दो श्रोत्रों पर, एक अत्रि कहलाता है जो वाणी कहलाता है। यह इसीलिए अत्रि कहलाती है क्योंकि अति आहार करती है। परन्तु इसमें कश्यप है जमदग्नि है और भी नाना प्रकार के भेदन हैं। परन्तु यह सप्तम् कहलाता है। सप्तकोण वाला जो ऋषि विराजमान हुए, सातों उनके स्थान हैं। परन्तु वह सप्तकोण जैसा मानो आकार बना हुआ है और वह सप्त कोण जो याग है जैसे इस ब्रह्माण्ड में मानो देखो, सप्त तरंगें गति करती रहती हैं। सप्तजिह्वा वाली जो अग्नि है यह सात जिह्वा वाली अग्नि है जो पूर्ण रूपेण अग्नि की सप्त जिह्वा कहलाती है और वह सातों जिह्वाएं अपने अपने तेजों को प्राप्त होती हैं, ऋषित्व को प्राप्त होती रहती हैं। मानो कहीं कोई सूर्य को जा रही है धारा, कोई चन्द्रमा को

जा रही है, कोई धारा बृहस्पति को जा रही है कोई धारा ध्रुव को जा रही है कोई धारा मानो रेणकेतु को जा रही है। तो यह सात प्रकार की तरंगें मानो अपने अपने मार्ग को प्राप्त होती रहती हैं। इसी प्रकार यह जो यज्ञ है यज्ञ सप्तकोण वाला भी कहलाता है और इसका सम्बन्ध शरीर से विशेषकर रहता है। यह मानव शरीर सप्त ऋषि, सातों देवता ऊँचे स्वरूप से याग हो सके ऐसा विधान प्रायः दर्शन शास्त्रों में आता रहता है। कर्म काण्ड की पद्धितियों में आता रहता है।

आज मैं इस कर्म काण्ड की पद्धति में विशेष नहीं जाँऊगा। विचार क्या? मानो देखो, सप्तजिह्वा वाली अग्नियों का सम्बन्ध समुद्रों से होता है। इसीलिए समुद्रों में से जब जलां का उत्थान होता है और वह अग्नि मानो सप्तजिह्वा वाली अग्नि इन्द्र बन करके इस वरुण को जल को अपने में धारण करती है, धीमी धीमी वृष्टियाँ प्रारम्भ होती हैं। मानो देखो, उससे यह नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है। वनस्पतियों के जन्म होने पर मानो देखा मानव का जीवन उद्बुद्ध हो जाता है।

सुगन्धपना आ जाता है। वायुमण्डल में रस परणित हो जाता है। इसी से इसका सम्बन्ध रहता है। परन्तु भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान इसमें दोनों प्रकार की धाराएं होती हैं और दोनों प्रकार की धाराओं के द्वारा ही मानव के जीवन की उद्बुद्धता आती है। परिणाम क्या कि सप्तजिह्वा वाला याग का मैंने तुम्हें वर्णन किया है। क्योंकि अग्नि की सबसे प्रथम तीन जिह्वा होती हैं इसीलिए त्रिकोण होता है। वह अग्नि की जिह्वाएं क्या हैं? सबसे प्रथम आरण्य नाम की अग्नि, गृहस्पत्य अग्नि, वैश्वानर नाम की अग्नि, इसी प्रकार जब तीन धारा बन करके वायुमण्डल में तीन धारा बनी, परन्तु देखो, इसी प्रकार यह जब चतुर्थ घारा बनती है तीन धारा बन करके जब एक धारा को यह दक्षिणाय को अपना लेती है तो यह चतुष बन जाती है परन्तु यही चतुष कोण ले करके इस ईषाण अग्नि को मिला करके जब यह गति करती है तो पञ्चम बन जाती है। परन्तु इसी प्रकार जब यह सप्त ऋषियों को ले करके सातों अश्विनियों को ले करके यह सप्तजिह्वा बन करके मानो इस लोक में, बाह्य लोक में दोनों में गति करके इस संसार

को महान बना देती हैं।
तो विचार क्या है? क्या यज्ञमान जब याग करना चाहता है, परन्तु देखो, साकल्य, समिधा, नाना प्रकार की आभाओं को एकत्रित करने लगता है। वह द्रव्य की आभा को वायुमण्डल में प्रसारित कर देता है। परन्तु ये विशेषकर होता है यह यज्ञ उस काल में मानव के मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं जबकि आहार और व्यवहार परन्तु देखो, उसी प्रकार का हो जैसा हम याग करना चाहते हैं। परन्तु यदि आचरण और विचारधारा इसके विपरीत होती हैं तो गृह में शान्ति और सुख की स्थापना नहीं होती। ऐसा मुझे बहुत परम्परागतों से स्मरण है। एक वार्त्ता मैं तुम्हें प्रगट करा रहा हूँ। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज जब याग करने लगे तो यागों के विपरीत, उनका आचरण बन गया था प्रारम्भ में। परन्तु आचरण विपरीत क्या बना क्या वह राजा से सहायता तो ले आए। परन्तु देखो, जब वह याग करने लगे तो एक श्वेनकेतु ऋषि महाराज की कन्या शकुन्तकेतु उनके द्वार पर आईं और आ जाने के पश्चात परन्तु देखो, उन्होंने ऋषि से कुछ प्रश्न किया। वह प्रश्नों का उत्तर देते रहे परन्तु उन्होंने ब्रह्मवर्चोसि का एक प्रश्न किया। परन्तु ब्रह्मवर्चोसि प्रश्न का उत्तर देते देते उनकी प्रवृत्ति चंचल बन गयी। जब चंचल बन गई तो ऋषि कन्या ने कहा, ऋषिवर! आपकी प्रवृत्तियाँ मेरे अन्तःकरण को नहीं छू रही हैं अब भारद्वाज मुनि महाराज मौन हो गए। वह बोले, अवश्य नहीं छू रही, क्योंकि मेरी प्रवृत्तियों में चंचल भाव आ गया है। परन्तु ऋषि कन्या ने वहाँ से प्रस्थान किया। ऋषि कन्या ने तो जब प्रस्थान किया तो भारद्वाज मुनि के हृदय में वह चंचल रूपी अग्नि बलवती हो गयी। बलवती हो जाने के पश्चात् वह ऋषि के द्वार पर पहुंचे और कन्या के दर्शनार्थी कृतं मानो कन्या के दर्शन किए। और दर्शन करके वह विशाल अग्नि कुछ शान्त हुई परन्तु देखो, जब वह विशाल अग्नि शान्त हुई उसके पश्चात देखो, वह भ्रमण करते हुए हम उस काल में विभाण्डक मुनि महाराज के यहाँ तपस्या कर रहे थे। और पुत्रेष्टियाग के कर्म काण्ड को वेदों से जान रहे थे, परन्तु देखो, जब वह भारद्वाज पहुंचे। तो भारद्वाज का आचार्य विभाण्डक से उनका मिलान हुआ तो विभाण्डक को उन्होंने अपनी गाथा प्रगट करायी। गाथा प्रगट करने के पश्चात् उन्होंने कहा, श्रृङ्गी जी विद्यमान

हैं, तुम उनके द्वार पर जाओ। परन्तु उस काल में यज्ञों का हम एक आचरण कर रहे थे। क्योंकि याग का करना बहुत आसान कहलाता है परन्तु उस याग के अनुकूल अपने विचारों को बनाना, प्रवृत्तियों को बनाना, उसी प्रकार की हृदय में अग्नि को जागरूक करना यह तपस्या का कार्य बन जाता है। उस समय वह तप कर रहे थे। जब वह पुत्रेष्टि याग करने का तप कर रहे थे क्योंकि आचार्य ने यह कहा था, क्या देखो, अब तुम लगभग चौदह वर्ष का तप करो। और चौदह वर्ष का तप करने के लिए अन्न भी बहुत सूक्ष्म प्राप्त होता था। क्योंकि हृदय की अग्नियां को जागरूक करना था इस हृदय में पञ्चम रूप नाम की अग्नि प्रदीप्त रहती है, सप्तम अग्नि जागरूक रहती है। यह इन अग्नियों को जागरूक करना है तो करने के पश्चात् पुत्रेष्टि याग उस काल में सिद्ध होता है। सिद्ध होने के पश्चात परन्तु जब महर्षि भारद्वाज पहुंचे तो भारद्वाज यज्ञशाला के ईषाण कोण में विद्यमान हो गए। परन्तु देखो, वह ईषाण कोण में विद्यमान हो गएं तो उस समय एक प्रश्न किया गया और कहा हे भारद्वाज! तुम ईषाण कोण में क्यों विद्यमान हो गए हो? ईषाण कोण में तो तमोगुणी प्राणी रहता है। तो उस समय भारद्वाज ने कहा कि महाराज! मेरी प्रवृत्ति वास्तव में तमोगुणी हो रही है। क्योंकि जहाँ जैसे नाना प्रकार के वस्त्र होते हैं और वस्त्रों के पांच प्रकार के उसके चित्रण होते हैं तमोगुणी जो रंग का चित्रण होता है वह भिन्न होता है। सतोगुण का श्वेत होता है। इसी प्रकार यज्ञशाला में जो अपनी ही प्रेरणा से वह स्थान को ग्रहण करता है तो उसकी आन्तरिक प्रवृत्ति का प्रतीत होता है क्या इसकी प्रवृत्ति सात्विक है। राजसिक है, तामसिक है अथवा इसकी प्रवृत्ति कौन से विधान की है? तो उस समय जब भारद्वाज मुनि ईषाण कोण में विद्यमान हुए तो ईषाण कोण तमोगुणी स्थान कहलाता है। परन्तु देखो, उससे यह प्रश्न किया गया कि भई! तुम ईषाण कोण में विद्यमान हो गये? हो उन्होंने कहा कि महाराज! मेरी तमोगुणी प्रवृत्ति बन गई है रजोगुण वाला मानो देखो, दक्षिणाय में विद्यमान होता है। इसी प्रकार जब ऋषि को यह कहा गया, उन्होंने कहा प्रभु! आप तपस्वी हैं। आप मेरे आश्रम में चलें और मैं इस समय मानो देखो, चौबीस कोणों वाले याग का अवधान कर रहा हूँ। उसको मैंने प्रारम्भ किया है। परन्तु मुझे उसके कर्म

काण्ड की क्रिया को व्यक्त करें। उस समय कहा गया कि हम तुम्हारे आश्रम में नहीं जा सकते। क्योंकि यहाँ हम तपस्या कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि तपं श्वञ्जनं में वाचा वर्णा स्वस्ति सुप्रजा क्योंकि देखो, हम यहाँ तपस्या कर रहे है तुम्हारे आश्रम में हम नहीं प्रवेश कर सकते जब हम नहीं प्रवेश कर सकते श्वञ्जनं ब्रीहि व्रतां तो देखो, उन्होंने प्रार्थना की तो विभाण्डक से यह प्रार्थना की गई। तो महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज ने मानो देखो, वहाँ से हमारा प्रस्थान हुआ और भारद्वाज मुनि के आश्रम में प्रवेश किया। चतुष्कोणों वाले जो याग का विधान है यह जो ब्रह्माण्ड है, यह जो ब्रह्मचक्र है यह चौबीस खम्बों वाला है। मानव का शरीर भी चौबीस खम्बों वाला है। गायत्री छन्द में भी चौबीस ही अक्षर कहलाते हैं। मानो ब्रह्माण्ड की भी चौबीस ही धारा कहलाती हैं। इसी प्रकार यह चौबीस खम्बों वाला याग जो ऋषि ने प्रारम्भ किया था तो उसका हम कर्म काण्ड नियुक्त करा करके परन्तु देखो, जब पुनः आश्रम में प्रवेश किया उनकी सतोगुणी प्रवृत्ति बारह वर्ष पर्यन्त अन्न को त्यागने, जल और औषधियों के ऊपर नियुक्त करा करके सात्विक प्रवृत्ति हो गयी।

तो मूल परिणाम यह है यह जो याग का कर्मकाण्ड है, आन्तरिक अग्नि को जागरूक करना, बाह्य अग्नि को जागरूक करना, दोनों को समन्वय करना, यह देखो, प्रवृत्तियों से विशेष सम्बन्ध होता है। परन्तु देखो, यदि तुमने मुझे कर्मकाण्ड में बाध्य किया है। तो बेटा! मैं भिन्न भिन्न प्रकार के यागों के कर्मकाण्ड का चयन कराता रहूँगा। परिणाम क्या है भारद्वाज मुनि महाराज अपनी प्रवृत्तियों से महान् बने। इसके पश्चात् वह वैज्ञानिक बने। पहले याज्ञिक बने। याज्ञिक से वह वैज्ञानिक बने। क्योंकि याग और विज्ञान दोनों का जो सम्बन्ध है यह जो देवताओं को सूक्ष्म रूप को जानता है और उनके प्रभाव को जानता है, उनका आकार बनाता है, यन्त्र बनाता है तो वह वैज्ञानिक नास्तिक नहीं होता। वह वैज्ञानिक प्रभु का भक्त बन करके प्रभु के विज्ञान में रमण करता है और रमण करके दोनों प्रकार के विज्ञानवेत्ता को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए याग और याग के पश्चात् विज्ञान और विज्ञान के पश्चात् आध्यात्मिक वेदना और आध्यात्मिक वेदना के पश्चात् प्रभु को प्राप्त होना। तो यह पुत्रो! मैंने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर, तुम्हारे विचारों में

यह प्रश्न कैसे आया यह तो मुझे प्रतीत नहीं परन्तु अपने क्रिया कलापों में हम यह प्रायः करते रहे हैं उसका प्रायः यह उत्तर हमने तुम्हें प्रगट किया है। अब समय बहुत चला गया है। समय अब समाप्त होने वाला है।

पूज्य महानन्द जी : क्या भगवन! यह और जानना चाहता हूँ, सम्भवति अन्वेषणां सवेति भूषणां मृतिका अन्भाषणां, क्या प्रभु! यह जो याज्ञिक पुरुष होते हैं, क्या यह इस प्रकार के यागों को करने का अभिप्रायः तो यह है कि अपने जीवन में जैसे जन्म लिया और उस कार्य को हम इसी में परिणित कर दें। यही हुआ, कि संसार का जो प्रपञ्च है, संसार का जो यह मायावाद है, इससे तो कोई समन्वय नहीं रहा?

पूज्यपाद गुरुदेव : नहीं पुत्र! यह नहीं। विचार यह है कि इस मायावाद को जानना है। जिस मायावाद में हम आ गए हैं। हम द्रव्यवाद में आ गएं हैं मानो देखो, यह जो मानव को मोहने वाली ममतव है इसके जब आँगन में आ गए हैं, तो इस ममतव को जानना कि यह वस्तु है क्या? तो इसके जानने के लिए हम याग, शुद्ध हृदय, शुद्द अन्तःकरण को बनाने के लिए हम सर्वत्र प्रयत्नशील रहते हैं। इसका उत्तर तो यह है परन्तु रहा यह कि इस मायावाद में हम रमण करते चले जाएं, नहीं पुत्रो! जैसे एक यज्ञमान ने यह विचारा। यज्ञमान ने एक मन्त्र का उच्चारण किया और वह मन्त्र क्या आया याग में पुत्रों! भवस्वाणां ब्रहे वर्णप्रव्हा वस्तुतं बहुधा रतो अस्तुति सुप्रजा तो मानो देखो, उसने इस मन्त्र का उच्चारण किया कि हम पुत्रों! आभा वृणप्रति स्वाहाः हम, पुत्र! एक से बहुत हों जाएं, यह कामना जागी है। परन्तु देखो, जब इसके अनुकूल हम अपने को बनाते हैं तो हमें पुत्रेष्टि याग करना है। पति पत्नी दोनों याग कर रहे हैं और याग के पश्चात् पुत्रेष्टि याग की इच्छा हुई। तो उन्होंने पुत्रेष्टि याग किया। क्योंकि वह जो वनस्पतियों का रस है मानव के शरीर में जो गतियाँ कर रहा है उस रस को हम रज में मिलान करते और रज में दोनो मिलान करते हुए करके परमपिता परमात्मा की दिव्य जो यज्ञशाला है उसमें याग किया, तो उससे पुत्र की उत्पत्ति हुई। तो केवल हम इतना ही इस सम्बन्ध में अपना निर्णय दे सकते हैं। क्या वह क्या हुआ कि जैसे वेदमन्त्र में ज्ञान विज्ञान आया पुत्रों! एको बहुधा ब्रह्मेः करोति अस्ताः हम संसार में आए हैं तो हम बहुत हो जाएं। तो

बहुत होने से पत्नी बनी। पत्नी से मानो पुत्रोः यागाम् ब्रह्मे उन्होंने पुत्रेष्टि याग किया। क्योंकि वह भी याग है वह भी वनस्पतियों का याग है जो वनस्पतियां के रस का याग है दोनों का याग करने से संसार के जिस क्षेत्र में हम आए हैं उनमें हमने पुत्रेष्टि याग किया और उसका परिणाम हुआ, पुत्र हुआ, संकल्प हुआ। संकल्प से ही पुत्र है। संकल्प से ही इस शरीर के द्वारा हमारा उससे समन्वय है और उसको हमें सुयोग्य बनाना है। क्योंकि जैसे सतोयुग के काल में सोमकेतु नाम के राजा हुए थे। सोमकेतु राजा के राष्ट्र में एक ददेतकेतु नाम के ऋषि हुए, जो अंगीरस गोत्रीय कहलाते थे। परन्तु वह महान् तपस्वी थे। उनको लगभग पिच्चासी वर्ष तपस्या करते हो गएं थे। तो एक समय वह वेद का अध्ययन कर रहे थे। वेदमन्त्र यह था, एको बहुधा ब्रह्मणां सुस्ति ब्रह्मणा अस्सुते मानो देखो, वेदमन्त्र यह था, इच्छा बनी कि एक से दो हो जाएं। तो वे राजा के समीप पहुंचे। राजा ने अपने स्थान को त्यागा। आइए भगवन! वह तपस्वी थे क्योंकि राज्य का जो अन्नवत् होता है, निचोड़ होता है, वह तपस्वी होते हैं। तो उन्होंने कहा, कहिए भगवन! आज कैसे गमन किया? उन्होंने कहा, हे राजन्! तुम्हारे यहाँ एक कन्या है उसका संस्कार करो। उन्होंने कहा बहुत प्रिय और कन्या के द्वार पर पहुंचे। कन्या ने कहा, कहिए पिता! आज कैसे? शान्तम् मंगलम् वृत्ति आप मग्न हो रहे हैं। उन्होंने कहा, पुत्री! आज मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ। एक महान् तपस्वी जिसको पिच्चासी वर्ष तपस्या करते हो गए हैं। अखण्ड ब्रह्मचारी है, वह प्राणायाम करता है। प्राणों की आभा में रमण करता है आज वह चाहते हैं कि मेरा राज कन्या से संस्कार हो जाए। राज कन्या मग्न हो गई। उसने कहा प्रभु! इससे और मेरा सौभाग्य क्या होगा। तो राजा ने उसका संस्कार कर दिया। अब ऋषिवर और देवी भयंकर वनों में चले गए। तपस्या करते रहे। इसके पश्चात भी मानो वह देवी भी तपस्या करने लगी। और ऋषि भी तपस्या करने लगा क्योंकि एक से बहुत की इच्छा की थी। उस समय कुछ काल के पश्चात् मानो देखो, जब देवी को लगभग 31 वर्ष तपस्या करते हो गए तो ऋषि को एक समय वेद का अध्ययन करते हुए आया पुत्रों! ब्रह्मणा कृतो भवतां गच्छतं मेघा वर्णा सुत्पव्हा वरुणो वर्णातं देवं प्रव्हा स्वस्ति देवा में जन्म बुद्धिकाम् तो यह वेद का मन्त्र उन्हें स्मरण आया

और वेद का मन्त्र यह कह रहा था कि पुत्र भूषां ब्रहेः हम पुत्र याग करें। तो उस समय ऋषि ने देवी से कहा देवी! अब हमें पुत्र याग करना चाहिए। 31 वर्ष हो गए तपस्या करते हुए। उन्होंने कहा प्रभु! ये वेद का मन्त्र भी आपको प्रतीत है यह वेदमन्त्र क्या कहता है? क्या देवी कौन सा यह वेदमन्त्र है सुभणोति मंगलम् मंगलम् भूषणम् प्रत्येवस्ताम राजां नमः ब्रह्मणेः कन्या द्रव्याणि गच्छतम् वेद का मन्त्र कहता है कि गृह आश्रम में जाना है द्रव्य भी होना चाहिए। ऊँचे ऊँचे स्वस्ति गृह होने चाहिए जिससे हम याग करें तो देवताओं की छाया भी परोक्ष रूप से जाए प्रत्यक्ष रूप से न जाए। तो ऋषि ने जब यह मन्त्र अध्ययन किया तो पुनः तपस्या करने लगे। तपस्या करते करते बहुत समय हो गया तो वेद का अध्ययन करके, राजा के द्वार पर पहुंचे। राजा ने पुनः आसन को त्याग दिया और राजा ने कहा कहो ऋषिवर! कैसे आगमन? उन्होंने कहा मेरा एक गृह का निर्माण कराओ। अब मैं पुत्रां ब्रह्मणे पुत्र गति अप्रणाः दिव्या गतं ब्रह्मा मैं पुत्र याग करूंगा। तो उस समय मानो देखो, मुझे स्मरण है उन्होंने गृह का निर्माण कर दिया। द्रव्य की बहुतायत हो गयी, और दोनों ने पुत्रेष्टि याग किया, जब पुत्रेष्टि याग किया तो पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषि और ऋषि पत्नी ने कहा चलो देवी! अब भयंकर वन को चलें। दोनों उसके निर्माण में लग गए। उस पुत्र का निर्माण किया। कैसे पुत्र का निर्माण किया? शिक्षा देते रहे, मुझे स्मरण है बेटा! वही प्रकहणां ब्रहे अस्ताः मानो वही ऋषि गाड़ीवान रेवक बनकर रहा।

तो परिणाम क्या? वह रेवक मुनि की उपाधि को प्राप्त करने वाला, सबसे प्रथम रेवक मुनि उत्पन्न हुआ। उसका नामोकरण दर्शन शास्त्रों की विज्ञान की धारा में विद्यमान है। तो बेटा! यह मैं इसीलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि यह बहुत विशाल एक विज्ञान है। मैं इसकी धाराओं को वर्णन करता पर बहुत समय की आवश्यकता है। मैं इसके कर्म काण्ड की शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूंगा।

आज का वाक् अब समाप्त हो गया है। तुम प्रश्न करते रहोगे, मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देता जाऊगा। क्योंकि प्रभु! की अनुपम कृपा है। प्रभु! के ज्ञान विज्ञान की कोई सीमा नहीं हैं ज्ञान की भ कोई सीमा नहीं है प्राणी के द्वारा। तो यह वाक्य अब समाप्त अब

वेदों का पठन पाठन होगा। स्थान : 38, जोर बाग समयः प्रातः 9 बजे। दिनांक 13 05 1982।